वर्ष: 47, अंक:1-2 जनवरी–अप्रैल 2024

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

वैश्विक संस्कृति के नायक: श्रीराम

छत्रपति शिवाजी जयंती की शुभकामनाएं

19 फरवरी 2024

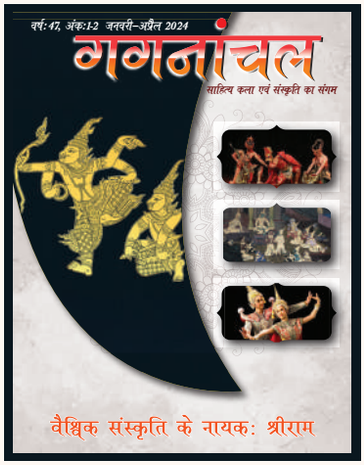

प्रकाशक

कुमार तुहिन

महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संपादक

रवि शंकर

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002
ईमेल:
spd-hindi@iccr.gov.in
pohindi.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध
http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal
पर क्लिक करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक
₹ 500, यूएस $ 100
त्रैवार्षिक
₹ 1200, यूएस $ 250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रण: सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि.

ISSN: 0971-1430

वर्ष: 47, अंक: 1-2 • जनवरी-अप्रैल 2024

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

अनुक्रम

प्रकाशकीय

5 **श्रीराम के आदर्श से बनेगा आदर्श विश्व**
कुमार तुहिन

संपादकीय

6 **विश्वव्यापी हैं श्रीराम**
रवि शंकर

आवरण कथा

7 **भारतीय समाज के जीवन में श्रीराम**
प्रियंका

12 **तुलसी की राम भक्ति**
डॉ. श्रुति रंजना मिश्रा

16 **कुटुंब प्रबोधन का प्रेरक श्रीराम परिवार**
शिवेश प्रताप

20 **आवश्यक है जीवन में रामत्व लाना**
ऋचा सिंह

24 **वैश्विक भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और श्रीराम**
डॉ. महेन्द्र प्रजापति

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अत: प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

अनुक्रम

गगनांचल
साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम
वर्ष: 47, अंक: 1-2, जनवरी-अप्रैल 2024

रामायण विमर्श

28 **कृत्रिम बुद्धिमत्ता और रामचरित मानस**
प्रो. सत्यकेतु सांकृत

34 **फादर डॉ. कामिल बुल्के की दृष्टि में रामचरित मानस की सार्वकालिकता**
डॉ. राजेन्द्र कुमार सिंघवी

39 **तुलसीदासी भाषा की विशेषताएं**
कृष्ण बिहारी पाठक

45 **आचार्य रामचंद्र शुक्ल और राम**
डॉ. दीपक जायसवाल

51 **विदेशी भाषाओं में प्रचलित रामकथाएं**
दीपेंद्र कुमार

लोक साहित्य

62 **भारतीय लोक दृष्टि और पर्यावरण**
सोमदत्त शर्मा

71 **अवधी लोकोक्तियों एवं लोकगीतों में ज्ञानविज्ञान**
अखिलेश आर्येंदु

78 **वाचिक परंपरा में विज्ञान के विविध आयाम**
डॉ. शैलेश शुक्ला

86 **मालवी लोकगीतों में कृषि विज्ञान**
डॉ. प्रीति पांडे

91 **भारतीय ज्ञान परंपरा में कृषि: कल, आज और कल**
डॉ. अरविंद कुमार पाल

98 **संगीत आधारित लोक कथा बाँसगीत**
कुमुद रंजन मिश्र

105 **जनजीवन में लोक देवता की परंपरा**
डॉ. मयंक मुरारी

114 **भारतीय संस्कृति और पेड़ पौधे**
डॉ. शशि गोयल

118 **अंगिका लोकगीतों में सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना**
प्रमोद झा

साहित्य

123 **व्यंग्य और हास्य : एक विवेचन**
प्रो. मंगला रानी

127 **अमेरिकी प्रवासी हिन्दी काव्य: परंपरा एवं विकास**
प्रो. नवीनचंद्र लोहानी

137 **महुआ माजी की लेखनी : विस्तृत फलक का कथा साहित्य**
डॉ. कुमारी उर्वशी

142 **हिन्दी पत्रकारिता पर भूमंडलीकरण का प्रभाव**
कुमारी मनीषा

148 **काव्य में अध्यात्म-तत्व का निरूपण**
राकेश भारतीय

विश्ववारा संस्कृति

151 **चीन में योग के प्रसारक सोहन सिंह**
सुरेंद्र अग्निहोत्री

154 **उज्बेकिस्तान और भारत : साहित्यिक सांस्कृतिक संबंधों का फलक**
डॉ. मनीष कुमार मिश्रा

पुस्तक समीक्षा

162 **प्राकृत भाषा में राम कथा**
डॉ. ममता जैन

163 **सुंदर जागा स्वप्न से**
डॉ. अनुपम

यात्रा संस्मरण

166 **मेरी पेरिस यात्रा इतिहास से साक्षात्कार**
प्रो. शिवशंकर अवस्थी

यात्रा संस्मरण

181 **वैश्विक संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा का उद्देश्य और प्रासंगिकता**
डॉ. अनुपमा तिवारी

स्थाई स्तंभ

186 **गतिविधियां**

प्रकाशकीय

श्रीराम के आदर्श से बनेगा आदर्श विश्व

प्रस्तुत अंक में दो विषयों पर विशेष सामग्री प्रकाशित की जा रही है। पहला विषय है साहित्य, संस्कृति और श्रीराम तथा दूसरा विषय है भारत के लोकसाहित्य में बिखरा विज्ञान। ये दोनों ही विषय भारत की आत्मा से जुड़े हैं और साथ ही वे संपूर्ण विश्व के लिए उपयोगी हैं।

श्रीराम पूरे विश्व के लिए आदर्शपुरुष हैं और महर्षि वाल्मिकी ने उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कह कर संबोधित किया। विश्व के कई देशों में रामकथाओं का भव्य आयोजन होता है। आज के विश्व की अनेक समस्याओं का समाधान उनके जीवन से प्राप्त होता है। श्रीराम एक आदर्श पुत्र हैं, आदर्श भाई हैं, आदर्श पति हैं और आदर्श राजा हैं। आज विश्व जिस सांस्कृतिक ह्रास से जूझ रहा है, उसमें श्रीराम का जीवन एक ज्योतिपुंज की भांति हमारे समक्ष आता है। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हमारे देशवासी जब गिरमिटिया मजदूरों के रूप में विश्व के अनेक भागों में जबरन ले जाए गए तो उनके उस त्रासदायक जीवन में जीने के लिए आशा की किरण भगवान श्रीराम का जीवन चरित यानी रामचरित मानस ही था। रामचरित मानस ने ही उनको जीने की शक्ति दी, संघर्ष करने का सामर्थ्य दिया और आज वे उन देशों में सम्मानजनक स्थिति में खड़े हैं। श्रीराम संपूर्ण मानवता की धरोहर हैं। इस अंक में हम श्रीराम के इन्हीं गुणों और उनकी आज के समय प्रासंगिकता पर कुछ सामग्री प्रकाशित कर रहे हैं।

दूसरा विषय लोक साहित्य में विज्ञान का है। यह विषय भी भारत की श्रेष्ठतम परंपराओं को अभिव्यक्त करता है। यह बताता है कि कैसे भारत ने विज्ञान को आत्मसात किया हुआ था और कैसे भारत का हरेक व्यक्ति चाहे वह कोई विद्वान हो या फिर कोई अनपढ़ मजदूर, विज्ञान के इन सूत्रों को सरलता से प्रयोग करता था। घाघ वड्डरी जैसे लोककवियों के दोहों में वर्णित मौसम विज्ञान आज भी उतना ही सटीक है। हमारे लोकगीतों में समाज का जो विज्ञान और शास्त्र अंतर्निहित है, वह आज के सामाजिक बिखराव के काल में अत्यधिक उपयोगी है।

हमारे लोक साहित्य में पर्यावरण की चिंता से लेकर खगोलविज्ञान और आत्मा-परमात्मा के विज्ञान तक की सूक्ष्म जानकारियां अंतर्गुंफित हैं। गीत गाते हुए हम उन्हें सहजता से न केवल स्मरण कर लेते हैं, बल्कि उन्हें स्मरण करने से हमारा मानसिक तथा सामाजिक विकास भी होता है। यदि भारत का समाज हजारों वर्षों से निरंतर बना हुआ है, तो उसमें लोक साहित्य की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसलिए आज आवश्यकता है कि हम अपने लोक साहित्य का फिर से पारायण प्रारंभ करें और उससे शिक्षा ग्रहण करें।

भारत का लोक साहित्य इतना अधिक विशाल है कि इस पर अनेक अंक निकाले जा सकते हैं। हमारा प्रयास होगा कि हम इस पर अधिकाधिक सामग्री आगे के अंकों में भी प्रकाशित करते रहें।

कुमार तुहिन
महानिदेशक

संपादकीय

विश्वव्यापी हैं श्रीराम

वर्ष 2024 का प्रारंभ एक ऐतिहासिक घटना से हुआ है। भारतीय संस्कृति की आत्मा, महर्षि वशिष्ठ और वाल्मिकी जैसे ऋषि-मुनियों से लेकर कालीदास, तुलसी, कबीर, रहीम और महात्मा गाँधी तक के आराध्य श्रीराम के बालरूप की उनकी जन्मस्थली में प्राणप्रतिष्ठा हुई। यह केवल एक मंदिर का निर्माण नहीं था, यह भारतीय इतिहास के साथ किये गए अन्याय का भी एक समाधान था। यह विश्व के सांस्कृतिक नायक मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की पुनर्स्थापना थी। यह देखना रोचक हो सकता है कि श्रीराम और उनकी कथा रामायण केवल भारतवर्ष की धरोहर नहीं रहे हैं, बल्कि संपूर्ण विश्व ने उनकी थाती को संभाल रखा है। विश्वभर में मिलने वाले नवीनतम पुरातात्त्विक प्रमाण यह स्थापित कर रहे हैं कि श्रीराम और उनकी कथा कभी विश्वव्यापी रही है।

स्वाभाविक भी है मानवीय भूमिकाओं के आदर्श के रूप में श्रीराम का संपूर्ण जीवनचरित आज के विषम काल में काफी प्रेरणादायक हो सकता है और समाधानकारक भी। यदि इतिहास देखें तो चाहे कालखंड कोई सा भी रहा हो, तत्कालीन सामाजिक विषमताओं के समाधान हेतु संतों, कवियों और कथाकारों ने श्रीराम के जीवन को ही सामने रखा। अंग्रेजों के विरुद्ध चलाए गए स्वाधीनता संग्राम में भी रामराज्य का ही आदर्श समक्ष रखा गया था। यही कारण भी है कि भारत के साहित्य में श्रीराम छाये हुए हैं। यही कारण है कि इस अंक में श्रीराम के आदर्श और उन पर रचित साहित्य पर कुछ सामग्री प्रस्तुत किया जा रहा है।

भारत की संस्कृति को हमेशा त्याग की संस्कृति कहा जाता है, परंतु यह कहते समय हम यह भूल जाते हैं कि त्यागता वही है, जिसके पास बहुत कुछ होता है। भारत ने भौतिक समृद्धि का चरम प्राप्त किया था और इसलिए वह भोगों को त्यागने की बात करता था। भौतिक समृद्धि प्राप्त करने के लिए विज्ञान और तकनीक अनिवार्य हैं। भारत में इन दोनों का ही ऐसा विकास हुआ कि वह पुस्तकों तक सीमित नहीं रह कर लोक में व्याप्त हो गया था। भले ही साहित्य को आज विज्ञान से अलग रखा जाता हो, परंतु भारत में साहित्य और विज्ञान कभी भिन्न नहीं रहे। यही कारण है कि लोक कहावतों में भी मौसम का विज्ञान भरा होता था और लोकगीतों में भी कृषि की तकनीकें बता दी जाती थीं। विविध अवसरों पर गाए जाने वाले लोकगीतों में पर्यावरण की जो समझ प्राप्त होती है, वह आज के वैज्ञानिक चिंतन में भी दुर्लभ है।

भारत में लोक साहित्य पर जो भी काम हुआ है, वह उनको सुरक्षित रखने की दृष्टि से हुआ है। भारत के लोक साहित्य में व्याप्त विज्ञान को जानने और समझने की दृष्टि से विपुल कार्य किये जाने की आवश्यकता है। भारत के विज्ञान शिक्षण की एक बड़ी कमी यह है कि लोक से इसका कोई जुड़ाव ही नहीं है। लोक साहित्य का विज्ञानपरक अध्ययन करने से इस कमी को दूर किया जा सकता है। तभी शिक्षा में लोक साहित्य को शामिल करने के प्रयास भी किये जा सकेंगे। लोक साहित्य केवल कथा-कविता मात्र नहीं है, बल्कि इसमें प्रकृति, मानव मन और समाज का विज्ञान भी भरा हुआ है, इस दृष्टि से लोक साहित्य के अनुशीलन की आवश्यकता है।

रवि शंकर
मोबाइल : +91-8076624400
ईमेल : editor-iccr@govcontractor.in

भारतीय समाज के जीवन में श्रीराम

– प्रियंका

भगवान श्रीराम भारतीय संस्कृति के ऐसे वटवृक्ष हैं, जिनकी पावन छाया में मानव युग-युग तक जीवन की प्रेरणा और उपदेश लेता रहेगा। जब तक श्रीराम जन-जन के हृदय में जीवित हैं, तब तक भारतीय संस्कृति के मूल तत्व अजर-अमर रहेंगे। श्रीराम भारतीय जन-जीवन में धर्म भावना के प्रतीक हैं, श्रीराम धर्म के साक्षात् स्वरूप हैं, धर्म के किसी अंग को देखना है, तो राम का जीवन देखिये, आपको धर्म की असली पहचान हो जायेगी। वास्तव में हमें जब भी कोई काम करना हो तो हम भगवान राम की ओर देखते हैं। भगवान राम की जय बोलते हैं। राम हमारे मन में बसे हैं। राम हमारी संस्कृति के आधार हैं। देश के लब्धप्रसिद्ध युवा दोहाकार डॉ. सत्यवान सौरभ ने अपने दोहा संग्रह 'तितली है खामोश' में श्री राम के बारे बड़ी गहराई से लिखा है—"राम नाम है हर जगह, राम जाप चहुं ओर। चाहे जाकर देख लो, नभ तल के हर छोर।।" राम हमारे मन में बसे, श्रीराम हमारी संस्कृति है, हमारी बोलचाल, प्यार, उलाहनों और कहावतों में सदियों से रचे बसे है श्रीराम।

राम राम जी। हरियाणा में किसी राह चलते अनजान को भी ये 'देसी नमस्ते' करने का चलन है। यह दिखाता है कि गीता और महाभारत की धरती माने जाने वाले हरियाणा के जनमानस में श्रीकृष्ण से ज्यादा श्रीराम रचे-बसे हैं। हरियाणवियों में रामफल, रामभज, रामप्यारी, रामभतेरी जैसे कितने ही नाम सुनने को मिल जाएंगे। लोकजीवन में, साहित्य में, इतिहास में, भूगोल में, हमारी प्रदर्शनकलाओं में उनकी उपस्थिति बताती है; राम किस तरह इस देश का जीवन हैं। राम का होना मर्यादाओं का होना है, रिश्तों का होना है, संवेदना का होना है, सामाजिक न्याय का होना है, करुणा का होना है। वे सही मायनों में भारतीयता के उच्चादर्शों को स्थापित करने वाले नायक हैं। लोकमन में व्याप्त इस नायक को सबने अपना आदर्श

हरियाणा का लोक गायन राम संस्कृति से ओत-प्रोत है। राम को हरियाणा में गीत संगीत का प्रणेता माना जाता है। एक अन्य कार्तिक गीत में राम, सीता और लक्ष्मण की आराधना इस प्रकार की जाती है- राम और लक्ष्मण दशरथ के बेटे, दोनों बण खंड जाए, ऐजी कोए राम मिले भगवान। एक बण चाले दो बण चाले, तीजे में लग आई प्यास, एजी कोए राम मिले भगवान। कार्तिक न्हाण के समय सुबह सवेरे जोहड़ के कंठारे पर गाया जाने वाला कार्तिक गीत इस प्रकार है—आई छोरियां की डार, सुत्या जल जागियो हो राम। उर्लै पर्लै घाट खड़ी, तेरी लाडली हो राम। इनकी भी सुनिए हो राम।

माना। राम सबके हैं। वे कबीर के भी हैं, रहीम के भी हैं, वे गांधी के भी हैं, लोहिया के भी हैं। राम का चरित्र सबको बांधता है। अनेक रामायण और रामचरित पर लिखे गए महाकाव्य इसके उदाहरण हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त स्वयं लिखते हैं—राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है, कोई कवि बन जाए, सहज संभाव्य है।

हरियाणा के कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के पूर्व प्रोफेसर डॉ.हिम्मत सिंह के अनुसार हरियाणा के आम जनमानस में बरसात होने पर रामजी खूब बरस्या या बरसात न होने पर रामजी बरस्या कोनी का उलाहना सुनने को मिलेगा। किसी से अच्छा प्यार-पहचान जताने के लिए उस गेल्यो बढ़िया राम-राम है या अनजानापन जताने के लिए उसतै तो मेरी रामराम बी कौना, कहवात का इस्तेमाल करते हैं। यहां सांग में राम के प्रसंग जुड़े हैं तो भजनों में भी राम का जिक्र मिलता है। 'लाड्डू राम नाम का खाले नै हो ज्यागा कल्याण'.. या 'मनै इब कै पिलशन मिल जा मैं तो ल्याऊ राम की माला'... जैसे हरियाणवी भजन हिट रहे हैं।

किसी को सांत्वना देने के लिए 'राम भली करैगा या आंधे की माक्खी राम उड़ावै' जैसी कहावतें हैं। परसां चढ़ता मेरा बाबुल बुझ्या, कहो तो कातिक नाल्हू हो राम। कार्तिक न्हाणा बड़ा दुहेला, खुशी तैं कार्तिक न्हाले बेटी कहै सै योह राम। यह हरियाणा का एक लोकगीत है। इसमें नवबाला अपने परिवार से कार्तिक नहाने की अनुमति मांगने के लिए अनुनय विनय कर रही है। जवाब में उनके परिजन राम के नाम पर कार्तिक नहाने की अनुमति दे रहे हैं। यह लोकगीत अपने आप में बताने के लिए पर्याप्त है कि हरि की धरती हरियाणा के लोकगीत, लोक रागनी और लोक भजन में भी प्रभु राम रचे-बसे हैं। यहां राम के बिना कहीं भी सार्थकता दिखाई नहीं देती। कार्तिक मास के लोकगीत व लोक भजन तो राम की स्तुति में ही गाए जाते हैं। हरियाणा में राम के नाम पर कई गीत गाए जाते हैं। हरियाणा का लोकगायन राम से शुरू होता है और राम के जयकारे के बाद ही खत्म होता आया है।

हरियाणा का लोक गायन राम संस्कृति से ओत-प्रोत है। राम को हरियाणा में गीत संगीत का प्रणेता माना जाता है। एक अन्य कार्तिक गीत में राम, सीता और लक्ष्मण की आराधना इस प्रकार की जाती है- राम और लक्ष्मण दशरथ के बेटे, दोनों बण खंड जाए, ऐजी कोए राम मिले भगवान। एक बण चाले दो बण चाले, तीजे में लग आई प्यास, एजी कोए राम मिले भगवान। कार्तिक न्हाण के समय सुबह सवेरे जोहड़ के कंठारे पर गाया जाने वाला कार्तिक गीत इस प्रकार है—आई छोरियां की डार, सुत्या जल जागियो हो राम। उलैं पलैं घाट खड़ी, तेरी लाडली हो राम। इनकी भी सुनिए हो राम। इसी तरह एक अन्य कार्तिक मास का राम भजन इस प्रकार है—राम को बुलाओ, मेरे लक्ष्मण को बुलाओ, दोनों को ढूंढ के लाओ, कहां गए लछमण और राम। एक अन्य भजन में कार्तिक न्हाण का

किसी को सांत्वना देने के लिए 'राम भली करैगा या आंधे की माक्खी राम उड़ावै' जैसी कहावतें हैं। परसां चढ़ता मेरा बाबुल बुझ्या, कहो तो कातिक नाल्हू हो राम। कार्तिक न्हाणा बड़ा दुहेला, खुशी तैं कार्तिक न्हाले बेटी कहै सै योह राम। यह हरियाणा का एक लोकगीत है। इसमें नवबाला अपने परिवार से कार्तिक नहाने की अनुमति मांगने के लिए अनुनय विनय कर रही है।

लोकजीवन में, साहित्य में, इतिहास में, भूगोल में, हमारी प्रदर्शनकलाओं में उनकी उपस्थिति बताती है; राम किस तरह इस देश का जीवन हैं। राम का होना मर्यादाओं का होना है, रिश्तों का होना है, संवेदना का होना है, सामाजिक न्याय का होना है, करुणा का होना है। वे सही मायनों में भारतीयता के उच्चादर्शों को स्थापित करने वाले नायक हैं। लोकमन में व्याप्त इस नायक को सबने अपना आदर्श माना। राम सबके हैं। वे कबीर के भी हैं, रहीम के भी हैं, वे गांधी के भी हैं, लोहिया के भी हैं।

वर्णन इस प्रकार है—चलो सखी न्हाण चलां, कार्तिक आई हो राम। इस प्रकार पूरे लोकगीत में राम की आराधना की जाती है। हरियाणवी लोकगीत में कैकेयी को इस प्रकार कोसा जाता है—कैकेयी तैनै जुल्म गुजारे, वन में भेज दिए राम। राम कड़ी बेल का कड़ा तूंबड़ा, सब तीरथ कर आई। घाट-घाट का जल भरले फिर भी ना मिले राम। आगे राम चलत है, पीछे लक्ष्मण भाई, राम बीच बिचालै चलै जानकी, देखो जनक की जाई। वहीं सावन के महीने में राम नाम की टेर से इस प्रकार मल्हार गाया जाता है—कड़वी कचरी है मां मेरी बाग में, क्यूं कर खाल्यूं हो राम।

हरियाणा के भजनी व सांगी जब गांव में आते थे तो वह भजनों की शुरुआत राम को समर के इस प्रकार करते थे। राम नाम सबतैं बड़ा, इससे बड़ा न कोये। जो सुमिरन करें राम का, तो बंदे शुद्ध आत्मा होये। पंडित लख्मीचंद, मांगेराम, दयाचंद, जगन्नाथ समचानिया, मास्टर सतबीर सिंह, हरदेवा अली बख्स भी राम से अपने कार्यक्रम की शुरुआत करते थे। जाट मेहर सिंह ने अपनी शहादत के समय जो चिट्ठी लिखी थी तो उसकी शुरुआत भी राम के नाम से की थी। लिखा था साथ रहणिये संग के साथी, दया मेरे पै फेर दियो। देश कै ऊपर जान झोकदी, लिख चिट्ठी में गेर दियो। पहले तो मेरे मात-पिता के चरणों में प्रणाम लिखूं। काका ताऊ बड़े-बड़ों को मेरी राम राम लिखूं। एक रागिनी में कीचक और सुदेशना के महाभारत किस्से में राम का इस प्रकार उद्धरण किया गया है। वो हे उसका राम, जिसमें मन बस ज्या। घाल दे दासी ने, मेरा घर बसज्या। एक अन्य रागिनी में राम का वर्णन अपनी पत्नी को समझाते हुए दूल्हा इस प्रकार करता है। जहाज कै में बैठ, गोरी राम रट कै। ओढना संगवाले, तेरा पल्ला लटके।

रामायण पर चार पीएचडी करवा चुके 90 वर्षीय डॉ. हिम्मत सिंह सिन्हा कहते हैं कि सन् 1999 तक हिंदी भाषी क्षेत्रों में राम व रामायण पर 150 से ज्यादा शोध थे। अब इनकी संख्या 250 से ज्यादा होगी। गैर हिंदी प्रदेशों में भी काफी शोध हुए हैं। हरियाणा व हिंदी

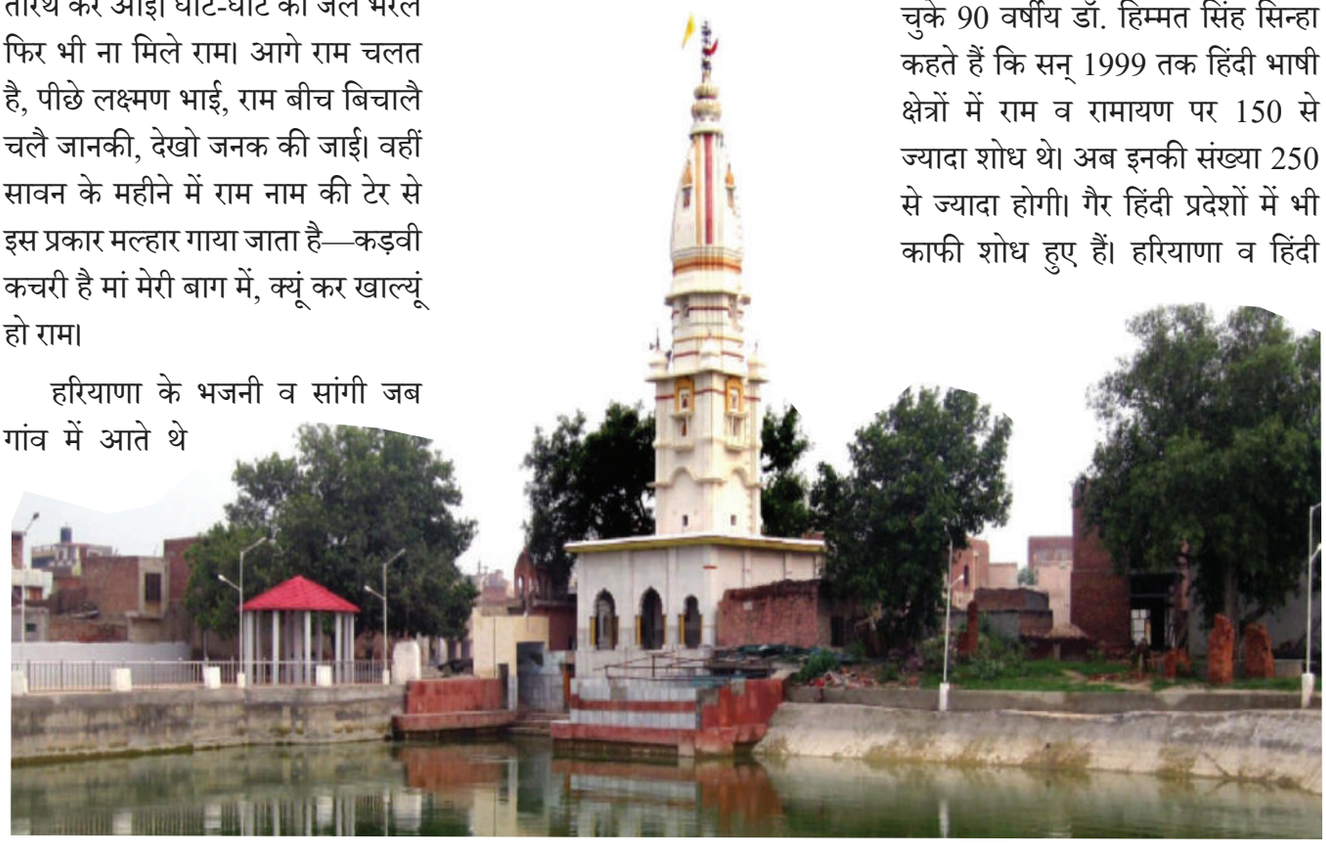

हरियाणा के गांव मुंदडी में लव-कुश ने रामायण कंठस्थ की थी और सीवन गांव में माता सीता समाई थीं। कैथल दडी में भगवान राम व सीता के पुत्रों लव-कुश ने महर्षि वाल्मीकि से इसी तीर्थ पर रामायण को कंठस्थ कर दिया था, जिसके बाद महर्षि वाल्मीकि ने मौन धारण कर दिया था। इससे ही गांव का नाम मुंदडी हो गया। इस तीर्थ पर शिव, हनुमान व लव-कुश के मंदिर हैं। मंदिर के गर्भगृह की भित्तियों पर राम, लक्ष्मण को कंधे पर बैठाए हुए हनुमान, गोपियों के साथ कृष्ण, रासलीला व गणेश इत्यादि के चित्र बने हुए हैं। नारद पुराण के अनुसार चैत्र मास की चतुर्दशी को इस तीर्थ में स्नान करने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है।

भाषी क्षेत्र में राम के लोकजीवन में रचने बसने का श्रेय कई संतों व कवियों और आर्य समाज को जाता है। कबीर को निम्न जाति का मानते हुए उस काल में मंदिरों में नहीं जाने देते थे। तब कबीर ने राम को निर्गुण मानते हुए प्रचार किया। पहले आदि कवि वाल्मीकि, संत रविदास, नामदेव ने निर्गुण रूप का प्रचार किया।

हरियाणा में आर्य समाज का काफी प्रभाव रहा है और आर्य समाज ने राम को आदर्श पुरुष माना है। प्रदेश में कबीरपंथ का प्रचार करने के लिए डेरे भी हैं। कबीर के दोहों में रा को छत्र और म को माथे की बिंदी माना है। यानी सभी को रक्षा व सम्मान का प्रतीक माना है। हरियाणा के पुराने सांगों में राम के प्रसंगों का खूब जिक्र होता रहा है, इस वजह से भी पीढ़ी दर पीढ़ी राम की असर जनमानस है, जबकि कुरुक्षेत्र जैसी धर्मनगरी समेत प्रदेश में कहीं भी श्रीराम के प्राचीन मंदिर नहीं हैं। रामराज्य की कल्पना में ही नैतिक मूल्य व राजनीतिक दर्शन है। राजनीति में सबसे ज्यादा इस्तेमाल होने वाली आया राम-गया राम की कहावत भी हरियाणवी राजनीति से निकली है। जब 1967 में एक विधायक ने एक ही दिन में 3 बार में दल-बदल किया था।

हरियाणा के गांव मुंदडी में लव-कुश ने रामायण कंठस्थ की थी और सीवन गांव में माता सीता समाई थी। कैथल दडी में भगवान राम व सीता के पुत्रों लव-कुश ने महर्षि वाल्मीकि से इसी तीर्थ पर रामायण को कंठस्थ कर दिया था, जिसके बाद महर्षि वाल्मीकि ने मौन धारण कर दिया था। इससे ही गांव का नाम मुंदडी हो गया। इस तीर्थ पर शिव, हनुमान व लव-कुश के मंदिर हैं। मंदिर के गर्भगृह की भित्तियों पर राम, लक्ष्मण को कंधे पर बैठाए हुए हनुमान, गोपियों के साथ कृष्ण, रासलीला व गणेश इत्यादि के चित्र बने हुए हैं। नारद पुराण के अनुसार चैत्र मास की चतुर्दशी को इस तीर्थ में स्नान करने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है।

मंदिर के सरोवर की खुदाई से कुषाणकाल (प्रथम-द्वितीय शती ई.) से लेकर मध्यकाल 9-10वी शती ई. के मृदपात्र एवं अन्य पुरावशेष मिले थे। जिससे इस तीर्थ की प्राचीनता सिद्ध होती है। यहां महर्षि वाल्मीकि संस्कृत यूनिवर्सिटी भी बनाई जा रही है। वहीं, कैथल के गांव सीवन या शीतवन को जनमानसे जनकनंदिनी सीता जी से संबंधित मानती है। प्रचलित विश्वास के अनुसार सीता इसी स्थान पर धरती में समा गई थीं। इसीलिए इस तीर्थ को स्वर्गद्वार के नाम से भी जाना जाता है। इस तीर्थ का उल्लेख महाभारत एवं वामन पुराण के अतिरिक्त पद्म पुराण, ब्रह्म पुराण, कूर्म पराण, नारद पुराण तथा अग्नि पुराण में भी पाया जाता है। ऐसा भी माना जाता है कि यही शीतवन अपभ्रंश हो कर परवर्ती काल में सीतवन के नाम से विख्यात हो गया। वामन पुराण में इस तीर्थ को मातृतीर्थ के पश्चात् रखा गया है।

वास्तव में हमें जब भी कोई काम करना हो तो हम भगवान राम की ओर देखते हैं। भगवान राम की जय बोलते हैं। राम हमारे मन में बसे हैं। राम हमारी संस्कृति के आधार हैं। वनवास से लेकर रामराज्य की स्थापना तक का श्री राम का संघर्षमय जीवन भारतवर्ष को बहुत कुछ सिखाता है। वे समाज में लोकप्रिय हैं ही, साथ ही एक कुशल योजक, संगठक के रूप में दिखाई देते हैं। श्री राम का हृदय करुणा सागर है। धीर-गम्भीर और वीरता से युक्त उनका तेजस्वी व्यक्तित्व है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के जीवन के अनेक पहलू हैं। श्री राम ने जहाँ एक ओर केवट, शबरी और

श्री राम भारतीय जनमानस में आराध्य देव के रूप में स्थापित हैं और भारत के प्रत्येक जाति, मत, सम्प्रदाय के लोग श्री राम की पूजा-आराधना करते हैं। कोई भी घर ऐसा नहीं होगा, जिसमें रामकथा से सम्बन्धित किसी न किसी प्रकार का साहित्य न हो क्योंकि भारत की प्रत्येक भाषा में रामकथा पर आधारित साहित्य उपलब्ध है। भारत के बाहर, विश्व के अनेक देश ऐसे हैं जहाँ के लोक-जीवन और संस्कृति में श्री राम इस तरह समाहित हो गए हैं कि वे अपनी मातृभूमि को श्रीराम की लीला भूमि एवं अपने को उनका वंशज मानने लगे हैं।

जटायु को आत्मीयता से स्वीकार किया, उनपर स्नेह की वर्षा की; वहीं दूसरी ओर उन्होंने वानरों, भालुओं तथा वनवासियों को एकत्रित किया। उन्होंने वानर सेना को अधर्म के विनाश के लिए तैयार किया। उन्होंने रावण सहित समस्त असुरों को समाप्त कर धर्म की पताका को अभ्रस्पर्शी बनाया। इतना ही नहीं तो श्री राम का जीवन तप, क्षमा,शील, नीति, मान, सेवा, भक्ति, मर्यादा, वीरता और न जाने कितने महान गुणों से युक्त था। इसलिए वे भारतीय समाज के जीवन में बड़ी गहराई से बस गए हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने "गोस्वामी तुलसी दास" नामक अपनी पुस्तक में कहा है, "राम के बिना हिन्दू जीवन नीरस है; फीका है। यही रामरस उसका स्वाद बनाए रहा और बनाए रहेगा। राम ही का मुख देख हिन्दू जनता का इतना बड़ा भाग अपने धर्म और जाति के घेरे में पड़ा रहा। न उसे तलवार काट सकी, न धनमान का लोभ, न उपदेशों की तड़क-भड़क।" स्वामी विवेकानन्द ने 31 जनवरी, सन 1900 को, अमेरिका के पैसाडेना (कैलिफोर्निया) में 'रामायण' विषय पर बोलते हुए अपने व्याख्यान में कहा था, "राम ईश्वर के अवतार थे, अन्यथा वे ये सब दुष्कर कार्य कैसे कर सकते थे? हिन्दू उन्हें भगवान अवतार मानकर पूजते हैं। भारतीयों के मतानुसार वे ईश्वर के सातवे अवतार हैं। राम भारतीय राष्ट्र के आदर्श हैं।" स्वामी जी इसी व्याख्यान में रामायण को भारत का आदि काव्य कहकर उसकी प्रशंसा करते हैं।

श्री राम भारतीय जनमानस में आराध्य देव के रूप में स्थापित हैं और भारत के प्रत्येक जाति, मत, सम्प्रदाय के लोग श्री राम की पूजा-आराधना करते हैं। कोई भी घर ऐसा नहीं होगा, जिसमें रामकथा से सम्बन्धित किसी न किसी प्रकार का साहित्य न हो क्योंकि भारत की प्रत्येक भाषा में रामकथा पर आधारित साहित्य उपलब्ध है। भारत के बाहर, विश्व के अनेक देश ऐसे हैं जहाँ के लोक-जीवन और संस्कृति में श्री राम इस तरह समाहित हो गए हैं कि वे अपनी मातृभूमि को श्रीराम की लीला भूमि एवं अपने को उनका वंशज मानने लगे हैं। हम श्री राम को पढ़ते हैं, पूजते हैं। उनके जीवन, विचार, संवाद और प्रसंगों को पढ़ते-पढ़ते भाव विभोर हो जाते हैं। उनका नाम लेते ही हमारा हृदय श्रद्धा और भक्ति भाव से सराबोर हो जाता है। यहाँ तक कि भारत के करोड़ों लोग अपने नाम के आगे अथवा पीछे 'राम' शब्द का प्रयोग बड़े गर्व से करते हैं; जैसे –रामलाल, रामप्रकाश, सीता राम, रामप्रसाद, गंगा राम, संतराम, सुखराम आदि। विवाह-गीत, सो हर, लोकगीत, होली गीत, लोकोक्तियां आदि सभी लोक संस्कृति में श्री राम और माता जानकी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। इस तरह लोकजीवन में राम दिखाई देते हैं।

सन्दर्भ-

1. जन-जन में बसे हमारे राम, डॉ. सत्यवान सौरभ, हस्तक्षेप, दैनिक राष्ट्रीय सहारा, 6 जनवरी, 2024
2. "गोस्वामी तुलसीदास" पुस्तक, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, अध्याय 4
3. https://www.amarujala.com/haryana/rohtak/ram-is-present-in-the-folk-raginis-and-bhajans-of-haryana-rohtak-news-c-17-1-rtk1042-337654-2024-01-14
4. राम नाम है हर जगह डॉ. सत्यवान सौरभ, दैनिक पाठक पक्ष, 5 जनवरी, 2024
5. "साकेत" में मैथिलीशरण गुप्त, https://wr.indianrail-ways. gov.in/cris/uploads/files/1485247768692-43-48%20Vividha-LOW.pdf
6. सदियों से रचे बसे है श्रीराम, डॉ. सत्यवान सौरभ, सत्यचक्र, साप्ताहिक, ग़ाज़ियाबाद, 15 जनवरी, 2024
7. श्रीराम हमारे मन में बसे, डॉ. सत्यवान सौरभ, दैनिक संस्कार न्यूज़, अजमेर, 3 जनवरी, 2024

रिसर्च स्कॉलर इन पोलिटिकल साइंस,
कवयित्री, स्वतंत्र पत्रकार एवं स्तंभकार

तुलसी की राम भक्ति

— डॉ. श्रुति रंजना मिश्रा

भारतीय जनमानस राम के चरित्र एवं रामकथा से सभ्यता के आदिकालसे ही परिचित रहा है तथा भारतीय साहित्य विशेषकर संस्कृत साहित्य को राम के व्यापक जीवन ने महाकाव्य और नाटकों के रूप में शाश्वत ग्रंथ प्रदान किए हैं। हिन्दी में भी राम के चरित्र का ग्रहण हिन्दी के आदिकाव्य पृथ्वीराज रासो से ही है पर राम को जन-जन का उपास्य एवं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रेरणास्रोत के रूप में प्रतिष्ठित करने का सर्वाधिक श्रेय हिन्दी के अमर साहित्यकार एवं विश्व साहित्य के प्रमुख कथाकार गोस्वामी तुलसीदास को ही दिया जा सकता है। तुलसी ने दशरथ सुत राम को भारतीय जनता के प्राणों के प्रत्येक स्पंदन में ही नहीं रमा दिया अपितु संपूर्ण भारतीय संस्कृति को राम के जीवन में केंद्रित करके अपने साहित्य द्वारा प्रस्तुत कर दिखाया है। तुलसी की राम भक्ति का विश्लेषण करते समय यहाँ यह भी देखना आवश्यक है कि वे कौन सी परिस्थितियाँ थी जिनके बीच तुलसी का मानस निर्मित हुआ था, जिसने रामचरित मानस के रूप में तुलसी को वो अभिव्यक्ति प्रदान की जिसने रामबोला को तुलसी बना दिया और उस महात्मा को ऐसी दिव्य दृष्टि मिल गई कि समस्त सृष्टि ही 'सियाराम मय' दिखाई पड़ने लगी।तुलसी के व्यक्तिगत जीवन का व्यापक प्रभाव तुलसी के काव्य में है, तुलसी युग दृष्टा और सृष्टा थे। उन्होंने अपनी व्यक्तिगत कुठाओं एवं समष्टिगत अनीतियों का यथार्थ रूप से अनुभव कर और पूर्ण रूप से उसे आत्मसात कर एक ऐसी निर्मल दृष्टि का सृजन किया की वह भक्ति और काव्य के पर्याय हो गए।

स्वामी रामानन्द ने भक्ति को परिभाषित करते हुए कहा की विविध रूप में परमात्मा का स्मरण ही भक्ति है किंतु उसमें किसी प्रकार का छल, प्रपंच और कपट नहीं होना चाहिए। अनन्य

भाव से की गई सेवा जिसमे मानस को संयत कर लिया गया हो भक्ति कहलाने की अधिकारिणी है। संक्षेप में कहें तो परमात्मा से अनन्य प्रेम करना ही भक्ति है। उसे प्रेम, श्रद्धा और विश्वास से युक्त होना चाहिए। भक्ति के लिये आधार का होना अर्थात परमात्मा का एक साकार प्रत्यक्ष रूप होना आवश्यक है। उसे साधक सर्वप्रथम पहचानने की चेष्टा करता है, फिर उस पर विश्वास व्यक्त करता है, पुनः श्रद्धा उत्पन्न कर उससे प्रेम करने लगता है और उसकी यह प्रीति भक्ति का रूप ग्रहण कर लेती है। गोस्वामी तुसलीदास जी ने भक्ति के क्रम को व्यक्त करते हुए कहा है—

जानें बिनु न होइ परतीती ।
बिनु परतीति होइ नहि प्रीती ।[1]

भक्ति के लिए परमात्मा का सगुण रूप अपेक्षित होता है। तुलसीदास ने यद्यपि निर्गुण और सगुन ब्रम्ह में तात्विक भेद नहीं माना है। 'निगुनही सगुनही नही कछु भेदा' कह कर दोनों रूपों की अभिन्नता कि घोषणा कर दी है, फिर भी उनके विचार से निर्गुण ब्रम्ह जब सगुन रूप धारण कर लेता है, तोसगुन की अन्य समस्त विशेषताओं से युक्त हो जाता है। इसीलिए उस रूप में संशय का अवकाश अधिक रहता है। मानस में सती, पार्वती, भरद्वाज, गरुण, कागभुशुण्डि आदि का इसीसर्गुण रूप पर समय-समय पर भ्रम हुआ है, जिसके निराकरण हेतु ही तुलसी के मानस की राम कथा प्रस्तुत है। तुलसी इसी कारण सगुन को निर्गुण से अधिक जटिल मानते हैं—

निर्गुण रूप सुलभ अति
सर्गुण जानी नहि कोई ।
सुगम अगम नाना चरित सुनी
मुनि मन भ्रम होई ।।[2]

जब निराकार-निर्गुण ब्रम्ह भक्तों के आनंद हेतु अवतार धारण करता है और जीव पूर्ण समर्पण की भावना से परमात्मा के उस अवतारी रूप के प्रति प्रेम करने लगता है, तब वह भक्ति का अधिकारी हो जाता है—

जानें बिनु न होइ परतीती।
बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।।
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई।
जिमि खगपति जल कै चिकनाई।।[3]

तुलसी ने अपने राम से सेवक-सेव्य संबंध स्थापित किया है। स्वयं को राम का सेवक मान कर राम के समक्ष पूर्ण रूप से आत्म समर्पण कर दिया है। इसी संबंध को तुलसी ने भक्ति में श्रेष्ठ मार्ग बताया है—

सेवक सेब्य भाव बिनु
भव न तरिअ उरगारि।[4]

स्वयं अपने राम के मुख से भी तुलसी ने इसी प्रकार का भाव व्यक्त कराया है। राम की घोषणा है—

पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं।
मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं।।[5]

रामचरित मानस के सभी पात्र राम के भक्त है। अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार सभी राम को ब्रम्ह मानकर उनसे भक्ति की आकांक्षा रखते है। यहाँ तक कि शत्रु पक्ष के पात्र तथा रावण, कुंभकर्ण आदि भी राम को ब्रम्ह मानकर ही अपने उद्धार हेतु युद्ध की योजना बनाते हैं।

भक्ति के क्षेत्र में अहं का विनाश प्रथम सोपान है जब तक व्यक्ति अपनी सत्ता का आभास पाता रहता है, राम की कृपा का अधिकारी नहीं बन पता। विनय पत्रिका में तुलसी इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं—

तुलसिदास मैं-मोर गये बिनु
जिउ सुख कबहुँ न पावै ।।[6]

यही कारण है कि तुलसी दास सदैव अपने को पतितो का पतित, अधमों का अधम मानकर चलते हैं। अपनी मूल्य हीनता और राम की कृपा का औदार्य दिखाते हुए कवितावली में यहाँ तक कह दिया है—

राम नाम ललित ललाम कियो लानि को,
बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आध को।।[7]

आधी कौड़ी का व्यक्ति भी राम नाम के सहारे लाखों का हो जाता है। किंतु सच्ची भक्ति में किसी प्रकार की कामना या अवकाश नहीं होता। तुलसी की भक्ति कामना रहित ही है। भक्त का साध्य भक्ति के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। तुलसी ने चारों पुरुषार्थों से बढ़कर भक्ति को स्थान दिया है। वे राम से स्वर्ग या मुक्ति कभी नहीं चाहते। उनकी तो एक मात्र याचना है—

मोको अगम, सुगम तुमको प्रभु,
तउ फल चारि न चहिहौं ।
खेलिबेको खग-मृग, तरु-कंकर है
रावरो राम हौं रहिहौं।[8]

भक्ति के बिना स्वर्ग भी व्यर्थ है और राम की भक्ति प्राप्त हो जाये तो नरक में भी सुख की अनुभूति होगी।

यही नाते नरकहुँसचुया
बिनु परमपदहुँ दुख दहिहौं ।।[9]

तुलसीदास ने परम्परा से चले आने वाले भक्ति के साधनों में भी आवश्यक परिवर्तन कर नवीनता और मौलिकता का समावेश किया है। अवध वासियों को भक्ति का स्वरूप बताते हुए मानस के राम, नरदेह, हरिकृपा, गुरु अनुकंपा और सत्संगति की अनिवार्यता बताते हुए भी एक गुप्त मत प्रगट करते है –

औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।।[10]

इसके पीछे यह उद्देश्य दिया है कि भक्ति में किसी प्रकार की ईर्ष्या या इष्ट विभाजन आदि के लिए अवकाश नहीं है, दूसरे राम के भक्त उनके अन्य भक्तों पर पहले अपनी भक्ति व्यक्त करें, तभी वह राम की भक्ति प्राप्त कर सकेगा। वहाँ समन्वय की उदार भावना के दर्शन होते हैं। नवधा भक्ति के विषय में भी तुलसी का वर्गीकरण पूर्ण प्रचलित प्रकारों से कुछ भिन्न है। शबरी से नवधा भक्ति के विषय में समझते हुये राम भक्ति का निरूपण इन शब्दों में करते हैं –

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं……
…मम भरोस हिय हरख ना दीना।।[11]

राम का यह वर्णन भागवत और पद्म पुराण आदि में वर्णित नवधा भक्ति से कुछ पृथक है। इसमें एक वैशिष्ट्य और है। परम्परा प्राप्त नवधा भक्ति में तो भक्ति के सभी साधन क्रम से अपेक्षित है पर राम द्वारा प्रतिपादित मार्गों में कोई एक ही उनको प्रसन्न करने के लिए पर्याप्त है—

नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई।
नारि पुरुष सचराचर कोई।
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि
मोरे……..।।[12]

तुलसी की भक्ति आडंबर हीनहै और सहज प्राप्य है। राम का स्वभाव ही है कि वे भक्ति से शीघ्र प्रभावित हो जाते हैं -

जाते वेगि द्रवहुँ मैं भाई।
सो मम भगती भगत सुखदायी।[13]

तुलसीदास ने सांसारिक क्लेश हरण के मार्गों में भक्ति के अतिरिक्त ज्ञान को भी स्वीकार किया है, किंतु ज्ञान और भक्ति में समान क्षमता होते हुये भी ज्ञान का मार्ग अपेक्षाकृत कठिन है तथा उसमें अंत तक मार्ग से च्युत होने का या फिसल जाने का भय बना रहता है, जब कि भक्ति सहज प्राप्त होने के साथ-साथ राम का समर्थन भी प्राप्त कर लेती है। समान परिस्थितियों के रहने पर राम अपने भक्त का ही पक्ष ग्रहण करते हैं। सुग्रीव और बाली के प्रसंग में इस तथ्य को स्पष्ट किया गया है। जिस प्रकार बच्चे पर माँ का अनन्य प्रेम होता है, उसी प्रकार भक्त पर राम की कृपा रहती ही है। गोस्वामी जी के मत से ज्ञानी प्रौढ़-पुत्र और भक्त शिशु-पुत्र की भाँति है। राम को तो ज्ञान भी बिना प्रेम के अच्छा नहीं प्रतीत होता। वह तो बिना नाविक जलयान की भाँति है। वह योग-कुयोग और वह ज्ञान-अज्ञान माना जाएगा जिसे राम का प्रेम प्रधान रूप मिला न हो।

सोह न राम पेम बिनु ग्यानू।
करनधार बिनु जिमि जलजानू।[14]
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू।
जहँ नहिं राम प्रेम परधानू।[15]

तुलसीदास ने मन को पुरुष और भक्ति को नारी माना है। "ज्ञान शील पद वेद बनाता" कह कर कवि के द्वारा यदयपि उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई गई है, पर ज्ञान को 'कृपान की धारा' कह कर उसकीक्लिष्टता की ओर भी संकेत किया गया है। प्रथम तो उसकी साधना कठिन है, फिर यदि साधना प्रारंभ भी कर दी जाये तो अनेक विघ्नों कि आशंका रहती है। भक्ति में ये सभी बाधायें आती ही नहीं। पुरुष और नारी के प्रतीक द्वारा तुलसीदास ने ज्ञान और भक्ति की अत्यंत गूढ और विशद विवेचना प्रस्तुत की है। मूलतः ज्ञान, वैराग्य और योग पुरुष वर्ग में आते हैं एवं माया और भक्ति नारी वर्ग में है। पुरुष नारी की ओर आकृष्ट हो सकता है पर नारी-नारी पर क्यों मुग्ध होगी अर्थात ज्ञान की साधना में माया रूपी नारी का व्यवधान स्वाभाविक है पर भक्ति तो स्वतः नारी है फिर उसे राम की अनुकूलता भी प्राप्त है। अतः भक्ति को माया से कोई भय नहीं है अपितु स्वतः माया भक्ति से भयभीत रहती है। तुलसी रामचरित मानस में कहते हैं –

भगतिहि सानुकूल रघुराया।
ताते तेहि डरपति अति माया ।[16]

भक्ति सहज प्राप्त ऐसा मार्ग है जिसके द्वारा भक्त भगवान की कृपा का अधिकारी हो जाता है। तुलसीदास ने भक्ति के लिए कुछ दशाएँ निश्चित की है। प्रत्येक व्यक्ति भक्ति का अधिकारी नहीं हो सकता। रामचरित मानस में इस संबंध में कहा गया है—

राम कथा के तेइ अधिकारी।
जिन्ह कें सतसंगति अति प्यारी।।
गुर पद प्रीति नीति रत जेई।
द्विज सेवक अधिकारी तेई।

ता कहँ यह बिसेष सुखदाई
जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई।।[17]

तुलसी दास मूलतः भक्त है, उनका सारा काव्य भक्ति रस से ओत-प्रोत है। विनय पत्रिका तो भक्ति रस का संपूर्ण विश्व साहित्य में एक मात्र अपने ढंग का अनूठा ग्रंथ है, जहां कवि ने आत्म-निवेदन के रूप में पूरे ग्रंथ को पत्रिका बना कर राम के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है और राम की स्वीकृति भी प्राप्त कर ली है। इसके अतिरिक्त मानस में भक्ति का विशद विवेचन है। तुलसी दास अपनी भक्ति के प्रतिपादन में भागवत एवं गीता से विशेष प्रभावित प्रतीत होते हैं। उनकी मधुर रागात्मिका वृत्ति राम पर इतनी मुग्ध है कि सारा संसार उन्हें राम मय ही दिखाई देता है। उनके राम को केवल प्रेम ही प्रिय है—

रामहि केवल प्रेम पियारा।
जानि लेहु जो जाननि हारा ।[18]

इस प्रकार तुलसीदास ने राम भक्ति के रूप में भक्ति का एक व्यवहारिक स्वरूप समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है, जहां ना वर्ग-भेद है, ना जाति-भेद। भक्ति के कारण गुरु को राम गले लगाते हैं, शबरी के झूठे बेरों में असीम माधुर्य का अनुभव करते हैं और मानवेतर प्राणियों तथा रीछ, बानर आदि को अपना सेनापति और मित्र बनाते हैं। इस प्रकार तुलसी अपनी भक्ति के माध्यम से इस उक्ति को सच्चे अर्थों में चरितार्थ कर देते हैं—

"जाती पांति पूछे नहीं कोय,
हरि को भजै सो हरि को होय"

तुलसी ने राम की भक्ति दो रूपों में की है— दिव्य-अवतारी राम के रूप में और मानव-राम के रूप में। तुलसी के राम अपने अवतारी रूप में सभी विशेषताओं से युक्त दिखाई देते हैं। तुलसी ने उन्हें एक ओर सिंधु सुता प्रिय वक्ता तो दूसरी ओर विधि, हरि, शंभु नचावन हारे के रूप में उपस्थित होते हैं। इतना ही नहीं वे विष्णु के रूप में निज आयुध भुजचारी के साथ प्रगट होते हैं। तुलसी ने राम के इन सभी रूपों को एक ही माना है उन्हें अलग-अलग देखने की चेष्टा नहीं की है। तुलसी के राम कभी देव कार्य करने हेतु विष्णु की प्रतिमूर्ति हो जाते हैं। विष्णु के रूप में राम का प्रमुख कार्य देवताओं का हित साधन करना है। तुलसी के अनुसार राम का जन्म विप्र, देव, गो और संतों की रक्षा के लिए ही हुआ है। "विप्र धेनु सुर संत हित लीन मनुज अवतार"। कभी वे ही राम ब्रह्माण्ड नियंता ब्रम्ह के रूप में प्रगट हो जाते हैं। तुलसी के राम एक ऐसे रूप में प्रगट हुए हैं जहां ना निर्गुण-सगुण का भेद है और ना ही सगुण परमात्मा के विविध अवतारों में। शिव और वैष्णवों के भी संकीर्ण भाव को दूर करने हेतु तुलसी के राम की अपने भक्तों से यह अपेक्षा है की उसे शिव के प्रति निष्ठावान हो चाहिए।

सिव द्रोही मम भगत कहावा।
सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा ।[19]

तुलसीदास ने राम को ही अपनी भक्ति का आधार बनाया है। उनके राम व्यापक, ब्रम्ह, परेश और पुराण आदि उपाधियों से विभूषित हैं। वस्तुतः वे राम के प्रत्येक रूप की वंदना करते हैं-

ब्यापक अकल अनीह अज
निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि
करत चरित्र अनूप ।।[20]

भक्त तुलसी के मानस में निवास करने वाले राम विष्णु के अवतार मात्र नहीं है। लोकभावना की अपेक्षा, आवश्यकता और भक्ति के अनुरूप राम का ऐसा व्यापक और सर्वकालिक रूप तुलसी ने खड़ा किया है, जिसके चरित्र रूपी पयोधि में सभी मत-मतांतर डूब कर एकाकार हो जाते हैं। इसी कारण तुलसी के राम को शिव मस्तक झुका कर नमन करते हैं, ब्रम्हा स्तुति करते हैं, विष्णु और इंद्र उनकी वंदना करते हैं। तुलसी के राम सभी देवताओं में श्रेष्ठ हैं। वे विष्णु हो कर भी विष्णु से श्रेष्ठ हैं, वे जगतनियंता हैं। वेद भी जिनका आदि-अंत नहीं जानते, वे पूर्ण परात्पर ब्रह्म हैं।

संदर्भ

1. रामचरितमानस उत्तर कांड 89क
2. रामचरितमानस उत्तर कांड 73
3. रामचरितमानस उत्तर कांड 89क
4. रामचरितमानस उत्तर कांड 119क
5. रामचरितमानस उत्तर कांड 86
6. विनय पत्रिका पद 120
7. कवितावली/उत्तर कांड 68
8. विनय पत्रिका पद 231
9. विनय पत्रिका पद 231
10. रामचरितमानस उत्तर कांड 45
11. रामचरितमानस 5/35-36
12. रामचरितमानस अरण्य कांड 36
13. रामचरितमानस अरण्य कांड 16
14. रामचरितमानस अयोध्या कांड 2/277
15. रामचरितमानस अयोध्या कांड 2/991
16. रामचरितमानस उत्तर कांड 116
17. रामचरितमानस उत्तर कांड 128
18. रामचरित मानस अयोध्या कांड 137
19 रामचरित मानस लंका कांड 2
20. रामचरित मानस बाल कांड 203

———•••———

सुपरिचित लेखिका एवं अनुवादक, दिल्ली विश्विद्यालय के पी.जी.डी.ए.वी कॉलेज के हिन्दी विभाग में सहायक प्राध्यापक

कुटुंब प्रबोधन का प्रेरक श्रीराम परिवार

—शिवेश प्रताप

रामचरितमानस एक ओर राम का जीवन चरित्र व मनुष्य जाति के अनुभवों का उत्कट निचोड़ है तो दूसरी ओर यह 'नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्' होकर सनातन धर्म के सभी मानक ग्रंथों के अर्क स्वरुप भी है, जिसे मानस के अंत में 'छहों शास्त्र सब ग्रन्थन को रस' कह कर दोबारा पुष्ट कर दिया गया है। मनुष्य से पुरुषोत्तम बनकर यानि मृत्यु से अमरत्व की ओर बढ़ने की यात्रा के पथ प्रदर्शक श्रीराम हैं। अपने भीतर छिपी संभावना और सुख-शांति की अभीप्सा को पूरा कर सकने की आकांक्षा के बीच, रामचरितमानस में राम इस मार्ग का संकेत हैं कि मनुष्य के स्वरूप को चरितार्थ करने और उससे ऊपर उठने और अपने भीतर निहित संभावनाओं को साकार करने का कोई लघुमार्ग (शॉर्टकट) नहीं हैं।

पारिवारिक, सामाजिक और लौकिक जीवन के कर्तव्य परायणता में राम ने अपने आचरण और व्यवहार से जो मानक स्थापित किए, उन मानकों में यह संभावना हमेशा निहित रही कि व्यक्ति का व्यवहार, परिस्थिति के अनुसार भले बदलता रहे, लेकिन उसका अंतरंग स्थिर रहे। मानव उन्हीं मूल्यों का प्रतिनिधित्व करे जो शाश्वत हो, जो मनुष्य और समाज के लिए हमेशा उपयोगी और ऊंचा उठाने वाले हों। उदाहरण के लिए परिवार को ही लें, राम में परिवार के अनुशासन, सबके प्रति विश्वास, एक-दूसरे के सुखों और इच्छाओं का निर्वाह और उनके लिए त्याग की भावना का महत्व रहा है। इन मूल्यों का निर्वाह रामचरित के हर प्रसंग में होता दिखाई देता है।

पारिवारिक, सामाजिक और लौकिक जीवन के कर्तव्य परायणता में राम ने अपने आचरण और व्यवहार से जो मानक स्थापित किए, उन मानकों में यह संभावना हमेशा निहित रही कि व्यक्ति का व्यवहार, परिस्थिति के अनुसार भले बदलता रहे, लेकिन उसका अंतरंग स्थिर रहे। मानव उन्हीं मूल्यों का प्रतिनिधित्व करे जो शाश्वत हो, जो मनुष्य और समाज के लिए हमेशा उपयोगी और ऊंचा उठाने वाले हों। उदाहरण के लिए परिवार को ही लें, राम में परिवार के अनुशासन, सबके प्रति विश्वास, एक-दूसरे के सुखों और इच्छाओं का निर्वाह और उनके लिए त्याग की भावना का महत्व रहा है। इन मूल्यों का निर्वाह रामचरित के हर प्रसंग में होता दिखाई देता है। क्षण भर में राजमुकुट धारण कर राजा राम बनने वाले बनवासी राम बनने हेतु बल्कल वस्त्र पहन लेते हैं और पिता के वचनों एवं माता कैकेयी के प्राप्त वरदान हेतु वन जाने हेतु निकल जाते हैं।

व्यक्तिगत जीवन में राम ने एक ओर मर्यादाओं की प्रतिष्ठा की तो दूसरी ओर उन्होंने जहां जरूरी समझा, वहां मान्यताओं में दखल भी दिया। शूर्पणखा का अंग-भंग, अहिल्या को पुनर्जीवन और प्रतिष्ठा, एक पत्नीव्रत, बाली उद्धार, शबरी उद्धार, विभीषण को लंका का राज दे देना आदि कई प्रसंग हैं, जिनमें वह परंपरा से हटकर काम करते हैं। यह सब करते हुए वह धर्म-मर्यादा की स्थापना ही कर रहे होते हैं क्योंकि मर्यादा की स्थापना ही धर्म की शाश्वतता को बनाये रखती है। यदि यज्ञाग्नि भी मर्यादा का उल्लंघन करे तो उसे जल के द्वारा नियंत्रित करने का विधान धर्म का ही है। यदि इन कामों को पारिवारिक और सांस्थानिक रचनाओं के भरोसे छोड़ा जाता तो संभवतः पंचायतें, न्यायालय, दंडाधिकारी और समितियों को उन नतीजों पर पहुंचने में वर्षों लग जाते और न्याय की प्रक्रिया संपन्न होते-होते वह अर्थहीनव अनुपयोगी हो जाते।

टूटते परिवारों का सहारा है राम परिवार

इन दिनों परिवार का ढांचा बदल रहा है, संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। कई जगह तो नौकरी के कारण पति-पत्नी और बच्चों के लिए भी अलग तरह से सोचना और व्यवस्था बनानी पड़ रही है। ऐसे में जब कि ज्ञान परम्परा का एक पीढ़ी से दूसरी में प्रवाह बाधित हो गया है तो राम का चरित्र, मूल्य, व्यवहार औरआदर्शों की यशोगाथा को समेटे श्री रामचरितमानस / रामायण जीवन का संविधान बन सकता है। आज के बड़े-बड़े फैमिली सलाहकार अपनी सलाह में परिवारों में यही अंतिम सत्य बताते हैं कि परिवार वह इकाई है जहाँ आप तर्कों और जय-पराजय से समाधान नहीं पा सकते अपितु त्याग के द्वारा कर्तव्य पालन करके ही सुख शांति प्राप्त करेंगे। यह मान्यता भारत में त्रेतायुग में ही प्रभु राम के जीवन से स्थापित हो चुकी थी।

राम परिवार के आदर्श-स्नेह, सहयोग, सद्भाव और विश्वास को आधार बनाकर आपसी संबंधों, कर्तव्यों और दायित्वों को समझा और निबाहा जा सकता है। जब राम, लक्ष्मण और सीता वनवास संपन्न कर अयोध्याजी वापस आते हैं तो माता कौशल्या ने मिलते ही सबसे पहले लक्ष्मण से आकुल होकर पूछा कि मुझे दिखाओ तुम्हें शक्ति कहाँ

लगी थी, पुत्र तुम्हें कितनी वेदना से गुजरना पड़ा ! लक्ष्मण जी ने इसका उत्तर दिया, 'वेदना राघवेन्द्रस्य केवलं व्रणिनो वयम' (वाल्मीकि रामायण) अर्थात हमें तो केवल घाव हुआ था, वेदना तो बड़े भाई राम को हुई थी। बस यही राम का सार है की सभी एक-दूसरे के भाव, प्रेम, हर्ष और विषाद में एकरस हो जाएँ।

राम जी के छोटे भाई भरत जी का चरित्र तो ऐसा है की कहीं-कहीं उनकी श्रद्धा, समर्पण और मर्यादा रुपी हिमालय के आगे रामजी लघु प्रतीत होते हैं। भाई की चरण पादुका से राज चलाना और स्वयं नंदीग्राम में भूमि पर सोना और पर्णकुटी में रहना। राम जी अपने भाई भरत को राजधर्म की सीख देते हुए कहते हैं की, 'मुखिआ मुखु सो चाहिए' यानि मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो स्वयं के पोषण या सुख में अकेला है, परन्तु विवेक पूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है। राम और भरत का चरित्र भरत-मिलाप प्रसंग में एक दूसरे के सामने ऐसे अडिग हैं की तुलसीदास जी को लिखना पड़ता है 'धीर धुरंधर धीरजु त्यागा' यानि भरत जी के असीम त्याग और मर्यादा के समक्ष धैर्य की धुरी धारण करने वाले श्रीराम को भी अपना धीरज प्रेमाश्रुओं के सामने तोड़ देना पड़ता है।

अयोध्या के एक राजकुमार श्री राम द्वारा सुदूर वन में हनुमान को आभार व्यक्त करने के क्रम में कहा जाता है,

मय्येव जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं हरे।
नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तिमनुकाङ्क्षति॥

(हे कपिकुलनन्दन।) आपने जो मेरे साथ उपकार किया है वह मेरे में ही जीर्ण हो जाय (मुझमें पच जाय), बाहर अभिव्यक्ति का कोई अवसर ही न आवे, क्योंकि प्रत्युपकार करने वाला व्यक्ति अपने उपकारी के लिये विपत्ति की कामना करता है, जिससे उसे अपने प्रत्युपकार के लिए उचित अवसर मिले (वा. रामायण)।

भगवान राम के समय में सनातन संस्कृति के वैचारिक मानदंडों पर विचार करें और उस काल खंड में संसार की अन्य संस्कृतियों के विकास से तुलना करें तो सहज ही आपको यह अनुभव होगा कि राम और अयोध्या के समाज का उत्कृष्ट सामाजिक एवं पारिवारिक मूल्य कितना ऊँचा था और संसार भर में क्यों प्रासंगिक हुआ।

आज पश्चिमी मनोविज्ञान इस स्थिति में पहुंचा जहाँ दबे स्वर में स्वीकारा जा रहा कि सुख-दुःख वास्तव में भौतिक संसाधनों पर निर्भर नहीं करते। सुख-दुःख मनुष्य की अनुभूति के ही परिणाम हैं, उसकी मान्यता, कल्पना एवं अनुभूति विशेष के ही रूप में सुख-दुख का स्वरूप बनता है। जैसा मनुष्य का भावना स्तर होगा उसी के रूप में सुख-दुःख की अनुभूति होगी। एक ओर जहाँ पश्चिमी संसार सुख को परिभाषित करने में भौतिक संसाधनों के अंतहीन दौड़ में लगा है वहीं सनातन धर्म में सुख-दुःख

आज पश्चिमी मनोविज्ञान में जहाँ दबे स्वर में स्वीकारा जा रहा कि सुख-दुःख वास्तव में भौतिक संसाधनों पर निर्भर नहीं करते। सुख-दुःख मनुष्य की अनुभूति के ही परिणाम हैं, उसकी मान्यता, कल्पना एवं अनुभूति विशेष के ही रूप में सुख-दुख का स्वरूप बनता है। एक ओर जहाँ पश्चिमी संसार सुख को परिभाषित करने में भौतिक संसाधनों के अंतहीन दौड़ में लगा है वहीं सनातन धर्म में सुख-दुःख का विमर्श एक साथ त्रेतायुग से होता आया है।

का विमर्श एक साथ त्रेतायुग से होता आया है। हम मानते हैं कि सुख और दुःख दो भिन्न अवस्थाएं होते हुए भी एक-दूसरे के पूरक हैं। मृत्युशैय्या पर पड़े हुए दशरथ से मंत्री सुमंत्र कहते हैं;

जनम मरन सब दुख सुख भोगा।
हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा॥
काल करम बस होहि गोसाई।
बरबस रात्रि दिवस की नाई।
सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं।
दोड सम धीर धरहिं मन माहीं॥

अर्थात जन्म-मरण, सुख-दुःख के भोग, हानि-लाभ, प्यारों का मिलना-बिछुड़ना, ये सब हे स्वामी, काल और कर्म के अधीन रात और दिन की तरह बरबस होते रहते हैं। मूर्ख लोग सुख में हर्षित होते और दुःख में रोते हैं, पर धीर पुरुष अपने मन में दोनों को समान समझते हैं। (मानस)

कुटुंब प्रबोधन की आवश्यकता

भगवान श्रीराम एवं उनके समाज का चिंतन केवल रावण को मारकर सीता माता की प्राप्ति तक सीमित कर देना उचित नहीं है, जैसा कि आज के डिजिटल विमर्श में चहुंओर दिखाई दे रहा है। आज जब की भारतीय समाज एकजुट होकर श्री अयोध्या जी में प्रभु राम का भव्य मंदिर बना रहा है तो ऐसे में हम सभी को समाज की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी यानि अपने परिवार के प्रबोधन पर विशेष बल देना चाहिए। ऐसे में राम के सामाजिक, पारिवारिक एवं कर्त्तव्य आधारित चिंतन का परिवार के साथ प्रतिदिन 10 मिनट बैठकर विमर्श अवश्य करना चाहिए। बच्चों को अगले दिन राम के ऊपर बोलने का चिंतन बिंदु दें जिससे उनके भीतर भी संस्कार की ज्योति जल सके। घर में एक रामचरितमानस रखें और सप्ताह में एक बार पूरा परिवार एक साथ बैठकर उसका पाठ अवश्य करे।

———•••———

लेखक धर्म-संस्कृति के अध्येता हैं तथा प्रभुराम के डिजिटल विश्वकोश RamCharit.in के फाउंडर हैं।

रचनाकारों से अनुरोध

- गगनांचल हेतु भेजे जाने वाले आलेख मौलिक, अप्रकाशित तथा अप्रसारित होने चाहिए। इसकी उद्घोषणा आलेख के प्रारंभ में होनी चाहिए।
- कृपया अपनी रचना यूनीकोड फॉन्ट में ही टाइप कराकर भेजें। रचना यदि कृतिदेव या किसी अन्य फॉन्ट में हो तो साथ में फॉन्ट भी अवश्य भेजें।
- यदि रचना हस्तलिखित है, तो वह सुस्पष्ट अक्षरों में लिखी होनी चाहिए। ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।
- रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अतः उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- आलेख की शब्द-सीमा न्यूनतम 1500 तथा अधिकतम 3000 शब्दों की है।
- रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त परिचय भी प्रेषित करें।
- रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियां (हाई रेज्योलेशन फोटो) अवश्य भेजें।
- रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें। यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति जांच लें।
- स्वीकृत रचनाएं यथा समय प्रकाशित की जाएंगी।
- रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- आप अपने सुझाव व आलोचनाएं कृपया editor-iccr@govcontractor.in पर संपादक को प्रेषित कर सकते हैं।

आवश्यक है जीवन में रामत्व लाना

—ऋचा सिंह

श्री राम को सनातन धर्म में विष्णु का अवतार माना गया है। लोग उनको भगवान और आराध्य मान कर पूजार्चन करते हैं।लेकिन जब हम राम के सम्पूर्ण जीवन का अवलोकन करते हैं तो पाते हैं कि राम केवल पूजा के विषय नहीं हैं वह अनुकरणीय हैं हर स्थिति काल में जीवन को दिशा प्रदान करने वाले प्रेरणा पुंज हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि राम ने स्वयं को एक राजा और भगवान के अवतार के रूप में नहीं अपितु जननायक के रूप में स्थापित किया। हम उनके संपूर्ण जीवन में देखते हैं कि कैसे उन्होने कठिन स्थितियों में भी मर्यादा के नूतन आयाम स्थापित किए। राजकुल में जन्म लेने के बाद भी राम ने अपना जीवन राजसी वैभव में नहीं बिताया। उनका बाल्यकाल आश्रम में व्यतीत हुआ, गुरुकुल में वह राजकुमारों की भांति नहीं अपितु समान्य बालकों की भांति अपने और आश्रम के सारे कार्य करते थे। जब वह युवा हुए और राज्याभिषेक का समय आया तो उन्हे पिता के वचन के लिए वनगमन करना पड़ा। राम का जीवन मानवीय संबंधों के मार्गदर्शन में प्रेरणा देता आया है जिसके कारण वह लोक चेतना और परम्परा में सदैव जीवंत रहते हैं।

ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तम राम जो लोक के मन में हैं जो जन-जन के हृदय में बसते हैं। देखें तो राम ही त्यौहार हैं, उल्लास हैं, उत्सव हैं, भक्ति हैं, शक्ति हैं, पूजा हैं, ज्ञान हैं, प्रेरणा हैं और जीवन के प्रकाश स्तम्भ हैं। राम केवल जन-जन की भावना नहीं या सनातन धर्म को मानने वालों की आस्था का केंद्र नहीं बल्कि भगवान राम तो जीवन जीने का तरीका है। फिर चाहे वह संबंध मूल्यों को निभाना हो धर्म के मार्ग पर चलना हो या फिर अपने दिए हुए वचन को पूर्ण करने के साथ कर्त्तव्य निर्वहन हो। राम सिर्फ कहने में ही मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं है बल्कि हर मायने में वह एक उत्तम और आदर्श पुरुष हैं वह जीवन के मार्ग को प्रशस्त करने वाले प्रकाश हैं।

जो लोक में व्याप्त है वह कालजयी है, वही सर्वमान्य है, वही अनुकरणीय है, वही वंदनीय है। लोक परंपरा में भी हम पाते हैं कि जन्मोत्सव, विवाह, हवन, कीर्तन, मांगलिक अयोजन आदि में महिलाएं जो मंगल गीत गाती हैं उसमें भी राम का नाम और उनका संबंध मूल्य ही समाहित है। ऐसे मर्यादा पुरुषोत्तम राम जो लोक के मन में हैं जो जन-जन के हृदय में बसते हैं। देखें तो राम ही त्यौहार हैं, उल्लास हैं, उत्सव हैं, भक्ति हैं, शक्ति हैं, पूजा हैं, ज्ञान हैं, प्रेरणा हैं और जीवन के

प्रकाश स्तम्भ हैं। राम केवल जन-जन की भावना नहीं या सनातन धर्म को मानने वालों की आस्था का केंद्र नहीं बल्कि भगवान राम तो जीवन जीने का तरीका है। फिर चाहे वह संबंध मूल्यों को निभाना हो धर्म के मार्ग पर चलना हो या फिर अपने दिए हुए वचन को पूर्ण करने के साथ कर्त्तव्य निर्वहन हो। राम सिर्फ कहने में ही मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं है बल्कि हर मायने में वह एक उत्तम और आदर्श पुरुष है वह जीवन के मार्ग को प्रशस्त करने वाले प्रकाश हैं।

राम के जीवन आदर्शों को अनुकूल स्थिति में अपने आचरण में लाना जीवन को सरल और सहज बनाता है। राम का जीवन आदर्श, नैतिकता और व्यवहार का उच्चतम मापदंड है जो हर स्थिती में प्रासंगिक हैं। गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा, स्वामी-सेवक, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-भाई, मित्र-मित्र के आदर्शों के साथ धर्म नीति, राजनीतिक, अर्थनीति के साथ सत्य, त्याग, सेवा, प्रेम, क्षमा, शौर्य, परोपकार, दान आदि मूल्यों का सुंदर, समन्वित आदर्श रूप राम के संपूर्ण जीवन में समय-समय पर देखने को मिलता है। राम के जीवन के पुरुषोत्तम होने की विशेषताओं का संदर्भ रामायण में अनेक स्थानों पर देखने को मिलता है जिसका जीवन में अनुकरण करने पर समरसता पूर्ण समन्वित और खुशहाल व्यक्तित्व का निर्माण होता है।राम का जीवन इतना अदभुत और विशाल है कि उनके जीवन के प्रसंगों को बार-बार देखने और सुनने से भी मन नहीं भरता।

आज ज्ञान, विज्ञान, तकनीकी ने कितनी भी प्रगति करली हो लेकिन जब व्यक्ति भावनात्मक रूप से खुद को कमजोर पाता है तब वह श्रीराम के जीवन आदर्शों में ही समाधान ढूंढने का प्रयास करता है। राम तो प्रभु का अवतार थे लेकिन जब उन्होंने भी मानव शरीर में धरती पर जन्म लिया तब उन्हे भी सामाजिक, पारिवारिक, सांसारिक बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ा, लेकिन राम ने हर स्थिति में स्थित प्रज्ञ होकर कभी मर्यादा का उलंघन नहीं किया उनके जीवन में यह विशेष और अनुकरणीय है। राम का जीवन हर मानव के हृदय में मन मस्तिष्क में इसलिए बसा हुआ है क्योंकिउनकी कथाएं लोक में व्याप्त हैं। हजारों वर्षों से राम कथा का जतन एवं संवर्धन कलाओं के माध्यम से, गीतों के माध्यम से, मंचन के माध्यम से आम जनमानस के बीच होता रहा है।

देखा जाए तो लोक संस्कृति के विभिन्न प्रकारों में रामायण प्रदर्शित होता है जिसमें अपनी भिन्न-भिन्न परंपराएं, अपनी विशिष्ठ वेशभूषा, भाषा के साथ जन जीवन के कई आयाम देखने को मिलते हैं। जिससे जनमानस अपने आप को समृद्ध करता आया है। लोकमंगल की भावना में भी राम के जीवन की अनंत कहानियों द्वारा बच्चों में मूल्यों को रोपित करने की परम्परा चली आर ही हैं। राम के नाम के सहारे अनंत गीतों, कहानियों, मनोभावो की जनमानस भावाभिव्यक्ति करता आया है। राम केवल लोगों की भावनाओं में समाए हुए देव नहीं है जिनके प्रति सिर्फ आस्था रखकर पूजा किया जाय बल्कि राम सही मायने में उत्तम पुरुष हैं जो हमें जीवन जीना सिखाते हैं। राम का चरित्र, आदर्श, धर्म पालन, नैतिकता और मानवीय संबंधों के मार्गदर्शन हमें सदैव प्रेरणा प्रदान करता आया है, इसीलिए जनजीवन हर आयाम में हर कलाओं में राम के जीवन को उनके आदर्शों को प्रकट करता रहा है। हम देखे तो राम का जीवन ही ऐसा है जो जनमानस से रिश्ता जोड़कर रखता है।

श्रीराम के लिए समाज के सभी वर्ग समान थे, उनके लिए कोई छोटा या बड़ा नहीं था। जैसा कि हम उनके जीवन में

पाते हैं कि निषाद राज, केवट, शबरी माता, जटायु, वानर सेना इसके उदाहरण हैं। उनके राज्य में सभी वर्गों में समानता और समान अवसर प्राप्त थे सभी को अपने विचार अभिव्यक्त की स्वतंत्रता प्राप्त थी। राम ने समाज के प्रत्येक वर्ग को आपस में जोड़कर रखने का संदेश दिया उन्होंने प्रेम, भाईचारे का संदेश दिया। राम का व्यक्तित्व ऐसा था जहां प्रेम और विश्वास में भी माता शबरी अपने राम के लिए चख कर मीठे बेर एकत्र करती थीं इस आस में की भक्ति और प्रेम के भूखे उनके राजा राम एक दिन उनकी कुटिया में अवश्य आयेंगे। राम प्रेम के जूठे बेर ग्रहण कर ऐसे नैतिकता के सुकृत संदेश प्रेषित करते हैं जो लोक चेतना में आज भी जीवंत होकर व्यक्ति को नर से नारायण बनने की प्रेरणा देते हैं।

श्रीराम का जीवन सामाजिक चेतना, समृद्धि, सद्गुण और सहानुभुति के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा स्रोत है। राम को पिता के वचन के लिए वैभवशाली जीवन त्याग करने में एक क्षण नहीं लगा। आज के युग में अपने छोटे से अधिकार को लोग त्यागना नहीं चाहते लेकिन राम ने समाज, परिवार में पुत्र और भाईके रूप में एक आदर्श प्रस्तुत किया। राज्य छोटे भाई को सौंप कर राम ने भरत से न ही कभी ईर्ष्या की ओर न ही द्वेष बल्कि हमेशा भरत के प्रति प्रेम रखा और उन्हें राज संभालने के लिए प्रेरणा देते रहे।

राम का व्यक्तित्व इतना विराट था कि उनमें संपूर्ण प्राणियों के लिए स्नेह और सम्मान का भाव था। राम मनुष्य से ही नहीं पशु, पक्षियों और प्राकृति के प्रति भी स्नेह और लगाव रखते थे। कुछ प्रसंगो द्वारा हमें यह ज्ञात होता है कि माता सीता का हरण होने के बाद राम पशु पक्षियों और प्रकृति से भी संवाद कर रहे हैं और माता सीता के बारे में पूछ रहे हैं, राम सेतु निर्माण में गिलहरी से संबंधित एक अत्यंत रोचक प्रसंग है, ऐसे अनगिनत प्रसंग हमे राम के जीवन से जुड़े हुए दिखाई और सुनाई पड़ते हैं जो समरसता, स्नेह और प्रेम के पर्याय हैं।

राम लोकनायक थे बानरो की छोटी सी सेना पर अटूट प्रेम, श्रद्धा और विश्वास के बल पर ही राम ने लंका पर विजय प्राप्त की जो असत्य पर सत्य की जीत का राम के जीवन से मानव जाति को सबसे बड़ा संदेश है। राम को अपनी जन्मभूमि से बहुत प्रेम था लंका विजय के बाद राम ने कहा

अपि स्वर्णमयी लंका
न में लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च
स्वर्गादपि गरीयसी।।

अर्थात लंका स्वर्ण से निर्मित है, फिर भी मुझे इसमें कोई रुचि नहीं है, जननी और जन्मभूमि तो स्वर्ग से भी बढ़कर है।

राज कुल में पैदा होने के बाद भी राम ने कभी राजसी वैभव का सुख भोग नहीं किया, वनवास की समय अवधि में अनेकों कष्ट का सामना किया। वह चाहते तो चक्रवर्ती राजा की तरह स्वतंत्र निर्णय ले सकते थे परंतु उन्होंने लोकनायक के रूप में आदर्श स्थापित किया। उनके राज्य में सबको अपनी बात कहने का अधिकार था। जब प्रजा के एक व्यक्ति ने माता सीता पर प्रश्न चिन्ह लगाया और माता सीता एक बार पुनः वनवास के लिए प्रस्थान कर गईं तब राम ने भी राजसी जीवन त्याग दिया और वनवासी की भांति जीवन व्यतीत करने लगे। एक राजा के रूप में भी राम ने स्वयं को लोकनायक ही सिद्ध किया और उसी रूप में प्रजा की देखभाल कि और उनके मनोभाव अनुसार कार्य किया।

वर्तमान में युवा और बच्चों को राम के जीवन से सीख लेनी चाहिए कि हमें स्वयं के जीवन, दूसरों के जीवन एवं समाज के लिए अच्छा करने के लिए नियम, धैर्य और अनुशासन के सदमार्ग का चयन करना चाहिए। आज युवाओं और बच्चों में धैर्य की कमी है, क्षणिक परिवर्तन से वह चिंता में आ जाते हैं, मनवांछित कार्य न होने पर कुंठा और तनाव का शिकार हो जाते हैं। यदि हम राम के जीवन से सीखें तो पाएंगे कि राम का राज्याभिषेक होने वाला था और जब पिता के वचन के लिए उन्हें वनवास जाना पड़ा उस स्थिति में भी वह स्थिति प्रज्ञ रहे।

वर्तमान में युवा और बच्चों को राम के जीवन से सीख लेनी चाहिए कि हमें स्वयं के जीवन, दूसरों के जीवन एवं समाज के लिए अच्छा करने के लिए नियम, धैर्य और अनुशासन के सदमार्ग का चयन करना चाहिए। आज युवाओं और बच्चों में धैर्य की कमी है, क्षणिक परिवर्तन से वह चिंता में आ जाते हैं, मनवांछित कार्य न होने पर कुंठा और तनाव का शिकार हो जाते हैं। यदि हम राम के जीवन से सीखें तो पाएंगे कि राम का राज्याभिषेक होने वाला था और जब पिता के वचन के लिए उन्हें वनवास जाना पड़ा उस स्थिति में भी वह स्थिति प्रज्ञ रहे। इससे आजकी पीढ़ी को सीख लेना चाहिए कि कैसे जीवन में आने वाली चुनौतियों का सामना धैर्य के साथ करें।

आज बहुत सारी सामाजिक, नैतिक, मानसिक समस्याओं से युवा और बच्चे भी ग्रसित हैं ऐसे में आवश्यकता है कि वह राम के जीवन आदर्शों को अपने जीवन में उतारें। आज जहां कई देश अपना क्षेत्रीय विस्तार करना चाहते है, पिता -पुत्र, भाई-भाई में संपत्ति को लेकर बंटवारे हो रहे हैं, आपसी तनाव बढ़ रहे हैं वहीं जब मर्यादा पुरूषोत्तम राम के आदर्शों को देखते हैं जहां राम लंका पर विजय प्राप्त करने के बाद रावण के भाई विभीषण को राजा बना कर राज लौटा देते हैं हम ऐसी भारत भूमि के हिस्सा हैं। राम का जीवन आम जनमानस के समक्ष ऐसे आदर्श के छाप, संदेश और उदाहरण से भरा हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि राम सिर्फ पूजनीय नहीं होने चाहिए, जीवन में हमें रामत्व को धारण करते हुए धर्म के पथ का अनुगामी होना चाहीए। धर्म वही है जो सत्य के मार्ग का अनुसरण करते हुए उचित अनुचित का ध्यान रखकर अपने कर्तव्यों का मर्यादा के साथ निर्वहन करें जिसका राम ने अपने संपूर्ण जीवन में निर्वाह किया।

आज जब 500 वर्षों बाद रामलला भव्य, दिव्य, नव्य मंदिर में विराजमान हुए हैं ऐसे में हर व्यक्ति जो राम में आस्था रखता है और राम उसके प्रेरणा के प्रतीक हैं उसे अपने जीवन में रामराज की परिकल्पना और मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन आदर्शों का पालन करना चहिए। रामराज की स्थापना से आशय किसी धर्म, जाति या फिर विशेष समुदाय के राज करने से नहीं है बल्कि इसका आशय सबको एक सूत्र में पिरोकर ऐसे राज की स्थापना करना है जहां हर ओर प्रेम, शांति, सुख, भाईचारा स्थापित हो। श्री राम को भगवान के रूप में पूजते हुए यदि हम उनके आदर्शों को जीवन में उतार लें तो सही मायने में यही राम की भक्ति और पूजा होगी।

आज जब 500 वर्षों बाद रामलला भव्य, दिव्य, नव्य मंदिर में विराजमान हुए हैं ऐसे में हर व्यक्ति जो राम में आस्था रखता है और राम उसके प्रेरणा के प्रतीक हैं उसे अपने जीवन में रामराज की परिकल्पना और मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन आदर्शों का पालन करना चहिए। रामराज की स्थापना से आशय किसी धर्म, जाति या फिर विशेष समुदाय के राज करने से नहीं है बल्कि इसका आशय सबको एक सूत्र में पिरोकर ऐसे राज की स्थापना करना है जहां हर और प्रेम, शांति, सुख, भाईचारा स्थापित हो। श्री राम को भगवान के रूप में पूजते हुए यदि हम उनके आदर्शों को जीवन में उतार लें तो सही मायने में यही राम की भक्ति और पूजा होगी। राम जहां संबंध मूल्य, समरसता, और आदर्श के पर्याय थे वही वह वचन निभाने धर्म पालन करने से लेकर शत्रु से भी सीखने का भाव रखने वाले, जात-पात से ऊपर उठकर समाज को सीख देने वाले उत्तम पुरुष थे।

बच्चों को राम के जीवन से राम के आदर्शों से प्रेरणा दें जिससे वो भारतीय होने पर गर्व कर सकें और विश्व बंधुत्व का भाव रखकर अपने जीवन में रामत्व के मानवीय गुणों को धारण करे। रामत्व की प्राणप्रतिष्ठा अपने मन रूपी मंदिर और जीवन में करें साथ ही राम के जीवन मूल्यों को स्वयं के जीवन में जीकर प्रमाणित करें, यही श्री राम की सच्ची पूजा और यही जीवन में रामत्व के भाव की प्रमाणिकता होगी।

———•••———

लेखिका बेसिक शिक्षा परिषद
उत्तर प्रदेश में शिक्षिका है।

वैश्विक भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और श्रीराम

—डॉ. महेन्द्र प्रजापति

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा में 'राष्ट्रवाद' किसी जाति, धर्म, वर्ग या संप्रदाय के बंधन में नहीं है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद व्यक्ति और समाज के बीच पुल का काम करता है। भारत में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति जिसे अपनी संस्कृति में आस्था है वह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का हिस्सा है। भारत में ऐतिहासिक, सामाजिक और अध्यात्मिक नायकों की एक लम्बी सूची है। राम इन सभी नायकों के कारक है। 'राम' इतिहास पुरुष भी हैं और पौराणिक भी। उन्हें देव और साधारण मनुष्य दोनों रूपों में देखा जा सकता है। तुलसी ने कहा भी है-

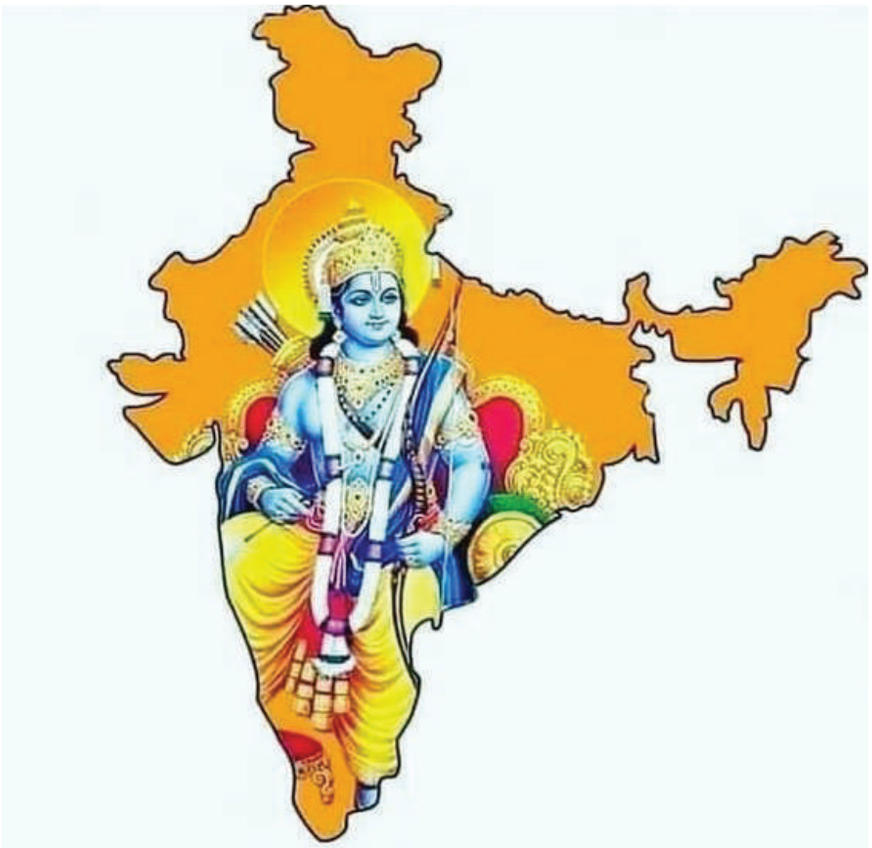

'जाकी रही भावना जैसी,
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी'

यह समझना बहुत आवश्यक है कि 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' भारतीय एकता, संप्रभुता और संगठन का विस्तार रूप है। पूरी दुनिया में भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ जितनी स्वतंत्रता राम पर बात करने की है उतनी ही रहीम पर भी है। तमाम धर्मों और संस्कृतियों को मिलकार जो बनता है वही भारत का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद है जिसमें राष्ट्र मुख्य है बाकि सब गौण हैं। भारत में रहने वाले प्रत्येक आत्मा के नायक राम हैं। किसी राजनीतिक पार्टी या संगठन से इसका कोई लेना देना नहीं है- राम हमारा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद किसी नेता या पार्टी ने नही दिया, स्वयं प्रभु राम ने इसकी घोषणा की थी।"

रावण का वध और लंका जीतने के बाद जब राम अयोध्या आने की तैयारी कर रहे थे, तब लक्षमण ने कहा था- भईया यह सोने की लंका है, यहीं रहकर राज्य करते हैं। वाल्मीकि रामायण के अनुसार तब प्रभु राम ने कहा था, लंका सोने की है, परन्तु जननी जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ होती है। उन्होंने कहा कि यही भारत का राष्ट्रवाद है, जो उस समय प्रभु राम ने दिया था।"[1]

यह ध्रुव सत्य है कि भारत की सांस्कृतिक चेतना को राम के बिना समझना संभव ही नहीं है। भारत का प्रतीक चिह्न (सिंबल) राम हैं। एक खास विचारधारा द्वारा राम के मर्यादित रूप को धूमिल करने की कोशिश की कई कि गई। विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चों को यही समझाया गया कि, चौदह वर्ष तक साथ में बनवास में रहने वाली गर्भवती पत्नी को राम ने किसी के कहने पर त्याग दिया, उनकी अग्नि परीक्षा ली। इन घटनाओं का उचित सन्दर्भ समझाए बिना ही राम के चरित्र को कलंकित करने का प्रयास चलता रहा। वर्तमान सत्ता ने राम की खोयी हुई प्रतिष्ठा को वापस ला दिया है। अब राम सबकी आत्मा के निवासी हैं। उनके बारे में भ्रम फैलाने वाले अब हाशिए पर हैं। अब यह बात सबको समझ आ चुकी है कि राम के बिना भारत अपूर्ण है और अलक्षित भी-"भारत से राम और राम से भारत को विलग करने के भले कितने कुचक्र-कलंक रचे जाएँ, भले कितनी वामी-विदेशी चालें चली जायँ, यह संभव होता नहीं दिखता| क्योंकि राम भारत की आत्मा हैं| राम भारत के पर्याय हैं| राम निर्विकल्प हैं, उनका कोई विकल्प नहीं| जिस प्रकार आत्मा को शरीर से और शरीर को आत्मा से कोई विलग नहीं कर सकता, उसी प्रकार राम को भारत से विलग नहीं किया जा सकता| राम के सुख में भारत के जन-जन का सुख आश्रय पाता है, उनके दुःख में भारत का कोटि-कोटि जन आँसुओं के सागर में डूबने लगता है और वे अश्रु-धार भी ऐसे परम-पुनीत हैं कि तन-मन को निर्मल बना जाते हैं।"[2]

भारतीय संस्कृति में 'धैर्य' की बड़ी महिमा है। पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक संकट के समय में समन्वय बनाने के लिए अपने हिस्से संघर्ष चुन लेना भारतीय जनमानस ने अपने राम से ही सीखा है। मनुष्य रूप में राम विषम परिस्थिति में भी अपनी मर्यादा नहीं

भूलते। ईश्वर होकर भी नियति में उनकी आस्था है। विपरीत धारा में भी उनका मानसिक और व्यवहारिक संतुलन नहीं डगमगाता क्योंकि सूर्यवंश की 'प्राण जाए पर वचन न जाई' की परम्परा और भारतीय संस्कृति का 'संतोषम परम सुखम' उनके आदर्श शब्द हैं। राम मनुष्य होकर भी सामान्य लोगों की तरह व्यवहार नहीं करते इसलिए वह 'मर्यादापुरुषोत्तम' हैं- "कठिन समय में प्रभु श्रीराम ने हर जगह पर संयम, संकल्प, धैर्य और साहस से जीवन जीने का उदाहरण प्रस्तुत किया। विपरीत परिस्थियों में उन्होंने की भी धैर्य और संयम नहीं खोया और न ही उन्होंने कभी क्रोध कोई भी निर्णय नहीं लिया।"[3]

यह सच है कि व्यक्ति गुण और कर्म से महान बनता है। भगवान राम के अन्दर असीम धैर्य है। माता कैकेयी द्वारा वन भेजे जाने से से भी वह विचलित नहीं हुए। उन्होंने उसको माता का आदेश माना और बड़े धैर्य से वनगमन को तैयार हो गए। आज एक दिन भी किसी को घर से निकाल दिया जाए ति उसका जीवन अंधकारमय हो जाता है लेकिन चौदह वर्ष के वनबास के लिए भी राम कोई भय या दुःख नहीं हुआ क्योंकि उनके अन्दर का व्यक्तित्व भारतीय आस्था से पगा हुआ था। भारतीयता बोध राम की शक्ति है। समाज के हित में परिवार का त्याग महापुरुषों ने हमेशा किया है। राम ने भी किया। राम धर्म से विमुख नहीं हो सकते थे न क्योंकि धर्म का मान रघुकुल में प्राणों से अधिक है-"श्रीराम हमारे लिए एक ऐसा व्यक्तित्व हैं जिन्हें हम भारतवासियों ने बहुत समय से भगवान के रूप में माना और समझा है। उनके दिव्याचरण, धर्मानुकूल मर्यादित व्यवहार और चरित्र के दिव्य गुणों के कारण हमने उन्हें इस प्रकार का सम्मान प्रदान किया है।"

अयोध्या में श्रीराम मंदिर की स्थापना से नए तरह का राष्ट्रवाद सामने आया है। पहले राष्ट्रवाद में धार्मिक मान्यताओं को प्रमुखता नहीं मिलती थी। ऐसा माना जाता था कि किसी धर्म को विशेष सम्मान ने देखें से अन्य धर्मों को ठेस पहुंचेगी लेकिन इस बार यह परिभाषा बदल गई। वर्तमान व्यवस्था विश्वभर में यह सन्देश देने में सफल रही कि राम मंदिर वास्तव में राष्ट्र मन्दिर है। इसमें राम भारतीय नायक हैं। भारत में उनकी प्रतिष्ठा ऐसे नायक के रूप में हैं जिन्हें हम आदर्श मानते हैं। राम में वह सब है जो किसी भी धर्म के लिए अस्वीकृत नहीं है। इस मंदिर निर्माण को आंदोलन के रूप में देखा गया। एक ऐसा आन्दोलन जिसमें आम जनता लेकर राज्य के वरिष्ठ पदों पर बैठे लोगों ने अपना सहयोग दिया। भारत एक ऐसी संस्कृति है जिसमें किसी के लिए विरोध नहीं है। सबको अपने साथ जोड़कर चलने की प्रेरणा देने वाला केवल भारत ही है।

भारत के साथ विश्वभर में राम मंदिर की स्थापना या उनके लिए विशेष अनुष्ठान यह बताता है कि राम सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सबसे बड़े प्रतीक हैं। मॉरीशस भारत का ही एक प्रतिरुप है। राम मंदिर की स्थापना की तिथि घोषित होते ही वहां के मंदिरों में रामायण का पाठ आरंभ हो गया। वहां की सरकार ने रामोत्सव को उसी दिव्यता और भव्यता से मनाया जैसे भारत में मनाया गया। श्रीरामलला की प्राण प्रतिष्ठा भारत की

भारत के साथ विश्वभर में राम मंदिर की स्थापना या उनके लिए विशेष अनुष्ठान यह बताता है कि राम सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सबसे बड़े प्रतीक हैं। मॉरीशस भारत का ही एक प्रतिरुप है। राम मंदिर की स्थापना की तिथि घोषित होते ही वहां के मंदिरों में रामायण का पाठ आरंभ हो गया। वहां की सरकार ने रामोत्सव को उसी दिव्यता और भव्यता से मनाया जैसे भारत में मनाया गया। श्रीरामलला की प्राण प्रतिष्ठा भारत की सांस्कृतिक विरासत की सबसे मजबूत कड़ी है। मॉरीशस, फीजी, गयाना के साथ ब्रिटेन में भी राम उत्सव को व्यापक स्तर पर मनाया गया। समाचार के अनुसार एक रैली का आयोजन किया गया जिसमें जनता ने पश्चिम लंदन के कोलियर रोड पर द सिटी पैविलियन से यात्रा शुरू करते हुए पूर्वी लंदन तक यात्रा की।

राम के बिना भारत अपूर्ण है और अलक्षित भी-"भारत से राम और राम से भारत को विलग करने के भले कितने कुचक्र-कलंक रचे जाएँ, भले कितनी वामी-विदेशी चालें चली जायँ, यह संभव होता नहीं दिखता। क्योंकि राम भारत की आत्मा हैं। राम भारत के पर्याय हैं। राम निर्विकल्प हैं, उनका कोई विकल्प नहीं। जिस प्रकार आत्मा को शरीर से और शरीर को आत्मा से कोई विलग नहीं कर सकता, उसी प्रकार राम को भारत से विलग नहीं किया जा सकता।

सांस्कृतिक विरासत की सबसे मजबूत कड़ी है। मॉरीशस, फीजी, गयाना के साथ ब्रिटेन में भी राम उत्सव को व्यापक स्तर पर मनाया गया। समाचार के अनुसार एक रैली का आयोजन किया गया जिसमें जनता पश्चिम लंदन के कोलियर रोड पर द सिटी पैविलियन से शुरू हुई व पूर्वी लंदन तक यात्रा की। यह भारत की बढ़ती वैश्विक शक्ति का सबसे बड़ा उदाहरण है। रैली में उपस्थित हजारों लोगों ने जय श्रीराम के नारे लगाकर पूरे उस लन्दन को अपनी शक्ति दिखा दी जिसमें कभी हमें गुलाम बनाया था। आज से पहले किसी सरकार में यह शक्ति नहीं थी कि वह लन्दन में भारत के किसी भी ऐसे गतिविधि को संचालित कर सकें जिससे भारत की राजनीतिक या धार्मिक शक्ति का पता चल सके।

कनाडा में 'अयोध्या राम मंदिर दिवस' का आयोजन किया गया। वहां 22 जनवरी 2024 को 'अयोध्या राम मंदिर दिवस' के रूप में मनाने की घोषणा हुई। यह सामान्य घटना नहीं है बल्कि भारत की बढ़ती वैश्विक पहचान की एक ऐसी मिशाल है जिसे आने वाली पीढ़िया हजारों वर्षों तक याद रखेंगी। भारत का शक्तिशाली नेतृत्व ने विकसित देशों की सत्ताओं में बैठे लोगों को विवश किया कि वह भारत को सम्मान की नज़र से देखें। कनाडा में ब्रैम्पटन के मेयर पैट्रिक ब्राउन व ओकविले के मेयर रॉब बर्टन ने अपने वक्तव्य में कहा कि-"अयोध्या में श्रीराम मंदिर' का उद्घाटन दुनियाभर के हिंदुओं के लिए सांस्कृतिक, धार्मिक व ऐतिहासिक महत्व रखता है। यह सदियों पुराने सपने का सच होना है। दोनों मेयरों ने लोगों से इसे ऐतिहासिक बताया।" डेनमार्क भी रामभक्ति ने डूबा हुआ नज़र आया। यहाँ के हिन्दू स्वयंसेवक संघ ने 22 जनवरी को महोत्सव के रूप में मनाया जिसमें डेनमार्क की राजदूत पूजा कपूर ने राम के व्यक्तित्व और विचार के संबंध में निर्णायक बाते कहीं। इसके साथ ही न्यूजीलैंड में राम की शक्ति में रम गया। विश्व का प्रतिष्ठित एफिल टॉवर भी सजाया गया और रथयात्रा का आयोजन भी किया गया। थाईलैंड, बैंकॉक सहित अन्य तमाम देशों में इस महोत्सव को मनाया गया। राम की ससुराल कहे जाने वाले नेपाल में लोग भावविभोर दिखे। जनकपुर सीता का मंदिर सजाया गया।

वास्तव में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का नया रूप सामने आया है। इस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से ही भारत पुनः विश्गुरु बनेगा। राम इसके गुरूकुल में महनीय आचार्य होंगे। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कोई राजनीतिक मुद्दा नहीं है बल्कि देश की पहचान और अस्मिता का ऐसा सिंबल है जिससे भारतीयता का चेहरा झलकता है। एक ऐसा चेहरा जिसमें करुणा है, दया है, समनव्य का भाव है। प्रेम और स्नेह की धार है।

संदर्भ

1. बालकाण्ड, रामचरित मानस, तुलसी, गीता प्रेस, गोरखपुर
2. हिन्दुस्थान, भगवान राम: भारत सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के जनक,शान्ता कुमार,2 जनवरी 2024
3. हिन्दुस्थान, भगवान राम: भारत सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के जनक, शान्ता कुमार,2 जनवरी 2024
4. ऑनलाइन, पंजाब केसरी, 8 मई 2020
5. ऑनलाइन, अमर उजाला, 21 जनवरी 2024
6. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के पुरोधा भगवान श्रीराम, डॉ. राकेश कुमार आर्य, डायमंड बुक प्रकाशन, दिल्ली, भूमिका से
7. ऑनलाइन, अमर उजाला, 22 जनवरी 2024

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
डॉ. बीआर अम्बेडकर विश्वविद्यालय दिल्ली

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और रामचरित मानस

—प्रो. सत्यकेतु सांकृत

इन दिनों अकादमिक जगत के साथ-साथ सभी बुद्धिजीवी वर्ग के बीच 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता' जिसे अंग्रेजी में' आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस' के नाम से जाना जाता है कि धूम मची हुई है। 1955 में 'जॉन मैकार्थी' ने कम्प्यूटर विज्ञान की शाखा के रूप में विकसित इस विधि को कृत्रिम बुद्धिमत्ता का नाम दिया और इसके पक्ष में यह तर्क प्रस्तुत किया कि यह एक तरह से मानवीय बुद्धि की जगह मानव निर्मित मशीनों द्वारा प्रदर्शित कृत्रिम बुद्धि है। 21वीं सदी के आरम्भिक दशकों में जिस तरह से अत्यधिक गणितीय और सांख्यिकीय मशीन लर्निंग ने अपना दबदबा बनाया उसमें यह तकनीक अपेक्षाकृत अधिक सफल साबित हुई और इसने विशेषकर औद्योगिक और शिक्षा जगत में कई चुनौतीपूर्ण समस्याओं को हल करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अब इसे लेकर सभी प्रमुख शिक्षण संस्थानों में इसके व्यापक प्रयोग पर विचार विमर्श चल रहे है।अपने आरंभिक रूप में कंप्यूटर विज्ञान की शाखा के रूप में गणितीय और सांख्यिकीय गणना को सरल और सहज तरीके से अत्यंत अल्प समय में अत्यंत सटीक रुप में पूर्ण करने की इस विधि को किस तरह अन्य क्षेत्रों में भी समाजोपयोगी बनाया जाये इसके सन्दर्भ में विचार मंथन चालू है। इस परिप्रेक्ष्य में यह ध्यातव्य है कि इस अत्याधुनिक विधि को इस तरह से पेश करने की कोशिश की जा रही है मानों

साहित्य और विज्ञान का सबंध जुगुप्सापूर्ण है। साहित्य जिसकी कल्पना करता है उसे ही विज्ञान पूर्णता प्रदान करता है। आज हम आर्टिफीसियल इन्टेलिजेंस के युग में जिस तरह से मानव निर्देशित विमान को साकार होते हुये देख रहे हैं उसकी चर्चा बाबा तुलसीदास ने, 'चलत विमान कोलाहल होई, जै रघुबीर कहै सब कोई' कहकर पुष्पक विमान के रूप में रामचरित मानस में लगभग 500 वर्ष पूर्व ही कर दी थी। साहित्य और विज्ञान का यह सम्बन्ध अनायास नहीं है बल्कि सही अर्थों में कल्पना से यथार्थ की यात्रा ही साहित्य की विज्ञान में परिणति है।

यह कोई ऐसी जादू की छड़ी हमें मिल गई है जो हमारी हर समस्या का समाधान पलक झपकते ही कर देगी। अभी हाल ही में एक प्रमुख दैनिक अंग्रेजी अखबार में एक खबर छपी थी कि इस विधि के उपयोग से समाज में बढ़ती आपराधिक घटनाओं पर क्षण में ही नकेल कसी जा सकती है। इसकी परिकल्पना के अनुसार अगर कोई अपराधी किसी व्यक्ति का मोबाइल फ़ोन छीन रहा होगा तो उस अपराध को अंजाम देते ही पुलिस वहाँ पहुँच जायेगी और 'चट मंगनी पट ब्याह' वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए उस अपराधी को पकड़ लेगी। हालाकि भारतीय पुलिस, जिसके कि किसी घटना के घटित होने के घंटों बाद घटना स्थल पर पहुँचने का सर्वविदित इतिहास रहा है, के सन्दर्भ में इस विधि की सफलता संदेह से परे नहीं है। फिर भी विज्ञान नेप्रायःहर असम्भव दिखने वाली चीजको संभव कर दिखाया है फिर कोई कारण नहीं कि इस अजीबोगरीब संस्थाको अत्याधुनिक तरीकों से लैस करउसमेंआमूलचूल परिवर्तन करते हुए उसके समाजोपयोगी बना दिए जाने की विधि को जुगुप्सापूर्ण नजरियेसे निहारा जाए।लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि अगर यह अपनी इस कार्यविधि को सुचारू रूप से संपन्न करभारतीय पुलिस की परम्परावादी सिनेमाई छवि को सुधारने में सफल हो जाती है तो निश्चित ही इसकी'जादू की छड़ी' वाली अर्थवत्ता रूपाइत हो जायेगी।

बीसवीं सदी के मध्य में बुद्धिजीवी मानसिकता से निसृत 'कृत्रिमबौद्धिकता' की जो अनुगूँज सुनाई पडती है उसके सन्दर्भ में प्रमाण सहित यह बात कही जा सकती है कि यह बिजली की चमक के समान अचानक से कोई दिखने वाली चीज न होकरमानव जीवन के सतत चिंतन की एक सहज विकास यात्रा थी। जहाँ तक इस कृत्रिम बुधिमत्ता का प्रश्न है यह निश्चित ही मानवीय सोंच और सतत चिंतन का एक मुकम्मल प्रयास सा दिखाई पड़ता है। इस सन्दर्भ में भारतीय चिंतन परम्परा इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। 'रामचरित मानस' के कुछेक प्रसगों को इस कृत्रिम बुधिमत्ता के सन्दर्भ में देखना काफी दिलचस्प होगा। वैसे तो बाबा तुलसी दास की इस अमर कृति में इस तरह के प्रसंगों की भरमार है पर मैं विशेष रूप से दो प्रसंगों के माध्यम से अपनी बात स्पष्टकरना चाहूँगा। इसमें पहला प्रसंग रानी कैकेयी की चेरी मंथरा से सम्बंधित है और दूसरा सीता हरण से पूर्व वन में राम सीता संवाद के उस प्रसंग से सम्बद्ध है जिसमें प्रभु श्रीराम राक्षसों के नास किये जाने की अपनी रणनीति की चर्चा मातासीता से करते हैं।

भारतीय चिंतन धारा में प्रमुख स्थान पर विराजमान बाबा तुलसी दास ने अपनी अमर रचना में स्त्री पात्रों का किस तरह बचाव किया है वह न केवल न्यायोचित दृष्टि की मांग ही करता है बल्कि स्त्री पात्रों के सन्दर्भ में उनकी संवेदना की मटकी को भी उडेलता सा प्रतीत होता है। बस जरूरत है उस बारीक दृष्टि की जिसकी मांग'मानस' बड़ीसंजीदगी से करता प्रतीत होताहै। मानस में 'मंथरा प्रसंग' इसका ज्वलंत उदाहरण है। अपने प्रारम्भिक रूप में मंथरा प्रायः निकृष्टतम पात्र के रूप में दिखाई पडती है पर जब हम बारीक दृष्टि डालते हैं तब पाते हैं कि बाबा ने बड़ी चतुराई से अपनी अद्भुत बुद्धिमता का परिचय देते हुए न केवल उस का बचाव ही किया है बल्कि उसके सन्दर्भ में ऐसा प्रतीत होता है मानों उन्होंनें उसके प्रति अपनी संवेदना की कमंडली उड़ेल दी हो। ध्यातव्य है राम का राज्याभिषेक होने वाला है चारों तरफ बधावे बजाए जा रहे है तभी देवताओं को यह चिंता होती है कि अगर राम का राज्याभिषेक हो जाएगा तो उनका वन गमन कैसे होगा और वे

राक्षसों का सहार कैसे करेंगे? यहाँ वह एक रणनीति के तहत विद्या और बुद्धि की देवी सरस्वती जी के पास जाते है और विनती करते है कि अब आप ही हमारी सहायक हो सकती है। आप कुछ ऐसा कीजिए कि रामचन्द्र जी राज्य त्यागकर वन को चले जाएँ और पूरे वन प्रांत को आतताई असुरों से मुक्ति दिलाएं ताकि देवताओं के सब कार्य सिद्ध हों सकें। सरस्वती सुरों की स्वार्थमयी बात सुनकर बहुत निराश होती हैं और कहती हैं-

"ऊंच निवासु नीचि करतूती,

देखि न सकहिं पराई बिभूती।"[2]

पर समाज कल्याण हेतु ज्ञान की देवी माता सरस्वती अयोध्या जाने का निर्णय करती है और वहां पहुंचकर अपनी योजना केकृयांवयन हेतु मंथरा नामक एक मंदबुद्धि पात्र का चयन करतीहैं और उसे अपयश का हेतु बनाकर वहाँ से चली जाती है।बाबातुलसीदास इस स्थिति का वर्णन करते हए कहतेहैं-

"नाममंथरा मंदमतिचेरी कैकेयी केरि।

अजस पिटारी ताहि करी गई गिरा मति फेरि।।"[3]

ध्यातव्य है कि यहाँ से माता कैकेयी की प्रिय दासी जो स्वभाव से सीधी सादी और थोड़ी कम बुद्धिकी थी उसे समाज कल्याण हेतुंअपयश की पिटारी बनाकरज्ञान की देवी चलीगईं। बौद्धिकसंपदा की देवी एक भोली भाली मंथरा का ऐसा प्रतिरूप निर्मित करती है जोसवेदना शून्य होकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती है औरकृत्रिम बौद्धिकताकी राह पर चलती हुई प्रतीत होती है।उसपर कैकेयी कीडांट फटकार का भी कोई असर नहीं पड़ता है और वहज्ञान की देवी द्वारानियंत्रित होकर उनकी योजना अनुरूप माता कैकेयी से कुछ ऐसा कार्य करवा जाती है जिसकी माता कैकेयी ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी।कृत्रिम बौद्धिकता द्वारा अकल्पनीय कार्य योजना की क्रियान्विति किस तरह से भारतीय ज्ञान परंपरा की थाती रही है इसका यह जीवंत नमूना है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के तहत मशीनीवृत्ति के अनुरूप जिस तरह संवेदनाशून्य होकर अपने निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति अल्प समय में पूर्ण करने की योजना की जाती है वह सब मंथरा के चरित परिवर्तन में सहज दीख पड़ता है। अपयश की पिटारी बनी मंथरा बुद्धी की देवी द्वारा इस तरह नियंत्रित होती है कि रात भर में ही सारी योजना धरी की धरी रह जाती है और प्रभु श्री रामराज्याभिषेक का त्याग कर समाज कल्याण हेतु माता सीता और अनुज लक्ष्मण जी के साथ वन को प्रस्थान कर जाते है। यह सब परिघटनाएं इतनी तेजी से घटती हैं कि किसी को कुछ समझने का मौक़ा ही नहीं मिलता है और विद्यादायनी माँ शारदे द्वारा नियंत्रित मंथरा बिलकुल सवेदनाशून्य होकर एक कृत्रिम माशीनी शिक्षण की तरह अत्यंत तीव्र गति से वह कार्य कर जाती है जिस की योजना देवताओं द्वारा बनाई गई थी। निश्चित रूप से इसके पीछे एक ऐसी प्रज्ञता क्रियाशील थी जिसे प्रज्ञा के समुच्चय की संज्ञा दी जा सकती है। तुलसी दास ने रामचरितमानस के इस प्रसंग की निर्मिती में बुद्धि की सामूहिकता के सन्दर्भ में अत्यंत समृद्ध बुद्धिमत्ता का परिचय देते हुए प्रभु श्री राम की कथा को अपने वैज्ञानिक दृष्टि कोण से परिपूर्ण कर नितांत समसामयिक बना दिया है।

बीसवीं सदी के मध्य में बुद्धिजीवी मानसिकता से निसृत 'कृत्रिम बौद्धिकता' की जो अनुगूँज सुनाई पडती है उसके सन्दर्भ में प्रमाण सहित यह बात कही जा सकती है कि यह बिजली की चमक के समान अचानक से कोई दिखने वाली चीज न होकर मानव जीवन के सतत चिंतन की एक सहज विकास यात्रा थी। जहाँ तक इस कृत्रिम बुधिमत्ता का प्रश्न है यह निश्चित ही मानवीय सोच और सतत चिंतन का एक मुकम्मल प्रयास सा दिखाई पड़ता है। इस संदर्भ में भारतीय चिंतन परम्परा इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। 'रामचरित मानस' के कुछेक प्रसगों को इस कृत्रिम बुधिमत्ता के संदर्भ में देखना काफी दिलचस्प होगा।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता यंत्र अधिगम की एक ऐसी विधि है जिसमेंमनुष्य की जगह उसका प्रतिरूप, चाहे वह ज्ञान के समागम से निर्मित कोई मशीन ही क्यों नहो, के माध्यम से किसी कार्य

व्यापार की योजनापूर्ण परिशुद्धता की साथ की जा सकतीहै।इस अवधारणा के परिप्रेक्ष्यमेंरामचरित मानस के प्रभु राम और माता सीता के बीच के उस सवादको देखना कम दिलचस्प नहीं होगा जिसमें प्रभु श्री राम सूर्पनखाप्रसंगोप्रांतसीताजी सेकहते हैंकिमैंअब कुछ मनुष्य लीला करूंगा और जब तक मैं राक्षसोंका समूल नाश ण कर दूँ तब तक आप अग्नि में निवास कीजिये अर्थात अग्नि देव के संरक्षण में सुरक्षित रहिये। प्रभु श्रीराम के बोल हैं-

"सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुशीला। मैं कुछ कर बिललित नरलीला ।।

तुम्ह पावक महुँ करहुँ निवासा। जौं लगि करौं निसाचर नासा।।[4]

"प्रभु श्रीराम के मंतव्यको समझते हुए तदनुरूप आचरण करती हुई सीता जी प्रभु के चरणों को ह्रदय में अंगीकार कर अपने आप को अग्निको समर्पित करती हुई उसी में समा जाती हैं।अब प्रश्न यह उठता है कि जब सीता जी अग्नि के सरक्षण में चली गईं तो कथा कैसे आगे बढ़ी और रावण ने सीता जी का हरण कैसे किया जो अंततः प्रभु श्री राम की अजेय अभिव्यक्ति के तहत दशानन और उसके कुनबे के नाश का कारण बना! यहाँ पर कवि ने पूरे तर्क के साथ एक ऐसा रहस्योद्घाटन किया है जो उसकी बौद्धिक प्रतिभा का सिंहावलोकन माना जा सकता है। सीता माता की जगह उनकी प्रतिबिम्बा भिव्यक्ति कीयोजना के क्रियान्वयन के सायेमेंइस प्रसंग का जैसा विषद और चमत्कृत कर देनेवाला चित्रणप्रभु श्रीराम के अनन्य भक्त गोस्वामी तुलसीदास ने किया है वहन केवल आश्चर्य चकित करने वाला है बल्कि भारतीय चिंतन धारा की उस ज्ञानात्मक परंपरा की विलक्षण अभिव्यक्ति भी है जिसमें कृत्रिम बौद्धिकता के तनिक विकसित रूप की स्पष्ट झलक परिलक्षित होती है। तनिक विकसित इस परिप्रेक्ष्य में कि आज के एआईमें जहां अनुभूति की सवेदना की अनुपस्थिति बुद्धिजीवियों के लिए चिंता का विषय बनी हुई है वहीं इस ज्ञानात्मक परंपरा में इसकी उपस्थिति अपने विकसित रूप में गोचर होती है।बौद्धिकता से लबरेज बाबा की यह अभिव्यक्ति साहित्य और विज्ञान के सामंजस्य की बेहतरीन प्रस्तुति मानी जा सकती है। बाबा के बोल द्रष्टव्य हैं-

जबहि राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरिहियँ अनल समानी।।

निज प्रतिबिम्ब राखी तहँ सीता। तैसेइ सीलरूप सुबिनीता।।[5]

सीताजी ने अग्निदेव के संरक्षण में जाने के पूर्व अपनी जगह अपनी ही छायामूर्ति वहां रख दी जोउनके जैसी ही शीलवान, रूपवान और विनम्रता की प्रतिमूर्ति थी।यह क्रिया व्यापार इतनी अगम्यता से संपन्न किया गया है कि इसकी भनक तक किसी को नहीं लगती है।गोस्वामी जी ने अपनी विलक्षण प्रतिभाका परिचय देते हुए सीता माता से उनकी छाया मूर्तिके बीच अवलोकन बिंदु का स्थानान्तारण इतनी सूक्ष्मता से किया है कि आगे की कथा कहीं बाधित भी नहीं होती है और इस परिघटना की रहस्यात्मकता भी बरकरार रहती है। अब कथा की बागडोर सीता जी से हटकर उनकी छायामूर्ति के हाथों में आ जाती है और इसके बाद जहां भी माता सीता की उपस्थिति दिखाई पडती है वह दरअसल उनकी वास्तविक मौजूदगी न होकर उनके प्रतिरूप की वह छवि होती है जो आभासित होते हुए भी वास्तविकता का भ्रम पैदा करने में अद्भुत रूप से सफल होती दिखाई पडती है और कृत्रिम बौद्धिकता के मूलाधार का आश्चर्य जनक उदाहरण पेश करती है। जिस तरह कृत्रिम बौद्धिकता के तहत एक ऐ से मशीन की निर्मिती की जाती है कि वह मूल की जगह उसके प्रतिरूप की तरह कई मस्तिष्कों की निसृती होकर कूछ ऐसे कार्य करे जो न केवल समाजोन्मुखही हो बल्कि अपेक्षा कृत कम समय में अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके की आश्चर्यजनक प्रस्तुति इस प्रसंग में दिखलाई पडती है। सीता के अपने प्रतिबिम्ब को अपनी जगह स्थापित कर अपने आपको अग्नि के संरक्षण में संरक्षित करने उपरान्त मान सकी कथा सीता के प्रतिरूप की माध्यम से आगे बढती है। सीता हरण से लेकर रावण वध के साथ ही समस्त पृथ्वी को राक्षस विहीन करने की अपनी प्रतिज्ञा को परिणति देने वाले प्रभु श्री राम द्वारा सीता माता की अग्नि परीक्षा का प्रसंग सीता के प्रतिबिम्ब के साथ आगे बढ़ता है। तथाकथित अग्नि परीक्षा के रूप में प्रभुश्री राम सीता के प्रतिरूप को अग्नि को समर्पित कर उन के संरक्षण में ही सुरक्षित अपनी सीता को प्राप्त कर लेते हैं। यह क्रिया विधि इतनी सूक्ष्मता से पूर्ण होती है कि इस का पता किसी को भी नहीं चलता है यहाँ तक कि सदा प्रभु श्रीराम के साथ साये के रूप में रहने वाले

'श्रीरामचरितमानस' में गोस्वामी जी ने एक ऐसे चालक रहित विमान की चर्चा की है जो केवल दिशा निर्देश का पालन करते हुए अविलम्ब अपने गंतव्य स्थान पर सुरक्षित पहुँच जाता है। ईश्वर प्रदत्त बुद्धि से निर्मित कृत्रिम बुद्धि का यह चमत्कृत कर देने वाला उदाहरण हमारी समृद्ध परम्परा का ही द्योतक है। परम्परा की यह परिपूर्णता ही आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता के रूप में दिखलाई दे रही है। आधुनिक अर्थ में कृत्रिम बुद्धिमत्ता मशीन लर्निंग की एक ऐसी विधि है जिसमें मशीनों की इस प्रकार से निर्मिति की जाती है कि वे मानव बुद्धि के समान काम करने लगे। इसके तहत उन्हें इस प्रकार की बुद्धि प्रदान की जा रही है कि वे इंसानों की तरह निर्णय लेने में तो सक्षम हों हीं साथ ही अपेक्षाकृत कम समय में अपने लक्ष्य को भी प्राप्त कर लें। यहाँ परम्परा और आधुनिकता के सामंजस्य के रूप में कृत्रिम बुद्धिमत्ता को देखना लाजिम होगा।

लक्ष्मण जी को भी इसका आभास तक नही होता है। बाबा कहते हैं-

"लछिमन हूँ यह मरमु न जाना।
जो कछु चरित रचा भगवाना।[6]

मानस का रसिक पाठक भी इस परिवर्तन को नहीं पकड़ पाता है और लगातार इसी भ्रम में पड़कर बहुत कुछ इस प्रश्न पर विचार करने को बाध्य होता दिखाई पड़ता है कि आखिर कर ऐसी क्या परिस्थिति आ गई थी कि उन के आराध्य को अपनी पतिव्रता पत्नी की अग्निपरीक्षा लेनी पड़ी जबकि यथार्थ में ऐसा कुछ हुआ ही नहीं था। यह तो प्रभु श्रीराम की वह नरलीला थी जिसके सहारे उन्होंने इस पृथ्वी को राक्षस विहीन करने की प्रतिज्ञाली थी। बाबा तुलसीदास ने इस कथा प्रसंग के माध्यम से उस अद्भुत भौतिक ज्ञानात्मक क्षमता का परिचय दिया है जो निश्चित ही कृत्रिमबुद्धिमता की इस जटिल संरचना को उस की परम्परागत परिणति की ओर ले जाता है। कृत्रिमबुद्धिमत्ता दरअसल एक ऐसी वैज्ञानिक तकनीक है जिसमें मशीनों को इस तरह विकसित करने की कोशिश की जा रही है कि वे इंसानों द्वारा किये जाने वाले कार्य व्यापार को अपेक्षाकृत कम समय में तनिक अधिक परफेक्शन के साथ संपन्न कर सके। इन मशीनों में ऐसे कृत्रिम इंसानी दिमाग विकसित करने की कोशिश की जा रही है जो इंसानों की तरह निर्णय ले सकें। इसी के तहत मानव रहित गाड़ीया मानव रहित विमान की चर्चा भी इन दिनों कौतुहल का कारण बनी हुई है। मैं यहाँ एकबार पुनः 'रामचरितमानस' के उस प्रसंग की चर्चा कर भारतीय ज्ञान परम्परा और विज्ञान के अत्याधुनिक स्वरूप यानी आर्टिफीसियल इंटेलिजेंस के जुगुप्सापूर्ण अन्तःसम्बन्ध को रेखांकित कर आप सुधी जनों का ध्यान उस तरफ आकृष्ट करना चाहूँगा जहाँ एक मानव रहित विमान की बखूबी चर्चा की गई है। जी हाँ, मैं उस पुष्पक विमान की बात करना चाहता हूँ जिसका बाबा तुलसीदास ने 'मानस' में विविध प्रसंगों के सन्दर्भ में अत्यंत सजीव चित्रण किया है। यह वही पुष्पक विमान है जिसे रावण ने कुबेर को परास्त कर अपने कब्जे में कर लिया था-

एक बार कुबेर पर धावा।
पुष्पक जान जीति लै आवा।।[7]

प्रभु की बात सुनते ही विभीषण ने वही पुष्पक विमान प्रभु को उपलब्धक राया जोलंका का राजसिंहासन प्राप्त करने के उपरान्त उनके नियंत्रण में आ गया था।

अयोध्या पहुँचकर प्रभु श्रीराम ने पुष्पक विमान से उतरकर उसे निर्देशित किया कि वह अपने स्वामी कुबेर के पास वापस लौट जाए। श्री राम की प्रेरणा से वह सहर्ष अपने स्वामी के पास लौट आया-

"उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सोहरषु बिरहुअति ताहु।।"[8]

इस तरह 'श्रीरामचरितमानस' में गोस्वामी जी ने एक ऐसे चालक रहित विमान की चर्चा की है जो केवल दिशा निर्देश का पालन करते हुए अविलम्ब अपने गंतव्यस्थान पर सुरक्षित पहुँच जाता है। ईश्वर प्रदत्त बुद्धि से निर्मित कृत्रिम बुद्धि का यह चमत्कृत कर देने वाला उदाहरण हमारी समृद्ध परम्परा का ही द्योतक है। परम्परा की यह परिपूर्णता ही आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता के रूप में दिखलाई दे रही है। आधुनिक अर्थ में कृत्रिम बुद्धिमत्ता मशीन लर्निंग की एक ऐसी विधि है जिसमें मशीनों की इस प्रकार से निर्मिती की जाती है कि वे मानव बुद्धि के समान काम करने लगे। इसके तहत उन्हें इस प्रकार की बुद्धि प्रदान की जा रही है कि वे इंसानों की तरह निर्णय लेने में तो सक्षम हों हीं साथ ही अपेक्षाकृत कम समय में अपने लक्ष्य को भी प्राप्त कर ले। यहाँ परम्परा और आधुनिकता के सामंजस्य के रूप में कृत्रिम बुद्धिमत्ता को देखना लाजिम होगा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने 'निबंध परम्परा और आधुनिकता' में कहा है- "परम्परा मनुष्य को उसके परिपूर्ण रूप में समझने में सहायता करती है। आधुनिकता उसके बिना संभवन हीं है। परम्परा आधुनिकता को आधार देती है, उसे शुष्क और नीरस बुद्धिविलास बनने से बचाती है, उसके प्रयासों को अर्थ देती है, उसे असंयत और विश्रृंखल और उन्माद से बचाती है। ये दोनों परस्पर- विरोधी नहीं परस्पर पूरक हैं। एक नीति वाक्य"[7] चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान" का सहारा लेते हुए द्विवेदी जी ने यह स्पष्ट किया है कि बुद्धिमान आदमी एक पैर से खड़ा रहता है, दूसरे से चलता है। यह केवल व्यक्ति सत्य नहीं है, सामाजिक सन्दर्भ में भी यही सत्य है।खड़ा पैर परम्परा है, चलता पैर आधुनिकता। दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध खोजना बहुत कठिन नहीं है। एक के बिना दूसरे की कल्पना ही नहीं की जा सकती।आज का 'ए आई'किस तरह अपनी परम्परा काआंचल थाम अपने को और भी उपयोगी एवं मानव समाज हेतु कल्याणकारी बना सकता है इसका स्पष्ट स्वरूप रामचरित मानस में उभरकर सामने आया है।

साहित्य और विज्ञान का सबंध जुगुप्सापूर्ण है। साहित्य जिसकी कल्पना करता है उसे ही विज्ञान पूर्णता प्रदान करता है। आज हम आर्टिफीसियल इन्टेलिजेंसके युग में जिस तरह से मानव निर्देशित विमान को साकार होते हुये देख रहे हैं उसकी चर्चा बाबा तुलसीदास ने, 'चलत विमान कोलाहल होई, जै रघुबीर कहै सब कोई'[9] कहकर पुष्पक विमान के रूप में रामचरित मानस में लगभग 500 वर्ष पूर्व ही कर दी थी। साहित्य और विज्ञान का यह सम्बन्ध अनायास नहीं है बल्कि सही अर्थों में कल्पना से यथार्थ की यात्रा ही साहित्य की विज्ञान में परिणति है। चाँद से तो हमारा कई तरह का रिश्ता रहा है। कभी वहमामा है तो कहीं किसी प्रेमिका का नयन तारा। बचपन में हमने एक कविता सुनी थी 'चन्दा मामा दूर के'। यह बाल कविता इस संभावना से लबरेज दिखलाई पडती है कि चाँदभले ही हमसे दूर हो पर हमारी पहुँच से बाहर नहीं है। आज विजान ने इस संभावना को यथार्थ में परिणत करदिया।हमारे प्रज्ञान ने चाँद के उस हिस्सेका स्पर्श कर लिया है जहांजीवन की संभावना दिख रही है। निश्चित ही वह दिन दूर नहीं है जब हमारे वैज्ञानिक मानव मात्र के चाँद पर सैर सपाटे और धमा चौकड़ी मचाने वाली महत्वाकांक्षा की संभावना को साकार करने में सफल होंगे और हम' चन्दामामा टूर पे' वाली कहावत को चरितार्थ होता देख पायेंगे।

संदर्भ

1. तुलसीदास, अयोध्या कांड, श्रीरामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर
2. तुलसीदास, अयोध्या कांड, श्रीरामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर
3. तुलसीदास, अरण्यकांड, श्रीरामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर
4. तुलसीदास, अरण्यकांड, श्रीरामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर
5. तुलसीदास, अरण्यकांड, श्रीरामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर
6. तुलसीदास, अरण्यकांड, श्रीरामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर
7. तुलसीदास, लंकाकांड,श्रीरामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर
8. परम्परा और आधुनिकता, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, खंड-3, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-42
9. तुलसीदास, लंकाकांड, श्रीरामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर

डीन अकादमिक एवं प्रॉक्टर
डॉ.बी.आर. अम्बेडक यूनिवर्सिटी दिल्ली।

फादर डॉ. कामिल बुल्केकी दृष्टि में रामचरित मानस की सार्वकालिकता

—डॉ. राजेन्द्र कुमार सिंघवी

यह एक विलक्षण संयोग है कि लॉर्ड मैकाले के भारत आने के ठीक एक सौ वर्ष बाद 1935 में फ़ादर डॉ. कामिल बुल्के मिशनरी काम से भारत आए और सनातन संस्कृति के प्रस्थान बिंदुओं की खोज करते-करते रामत्व के आकर्षण में बंध गए। लंबे समय तक फादर बुल्के के संपर्क में रहने वाले डॉ. दिनेश्वर प्रसाद के शब्दों में, "फादर बुल्के उन विदेशी संन्यासियों में थे, जो भारत आकर भारतीय से अधिक भारतीय हो गए थे. उन्होंने यहाँ की जनता के जीवन से अपने को एकाकार कर लिया था। उन्हें देखकर कोई भी व्यक्ति यह अनुभव कर सकता था कि संन्यास का अर्थ जीवन और जगत का निषेध न होकर स्वत्व का निषेध है और स्व का ऐसा विस्तार, जिसमें पूरी दुनिया के लिए ममत्व भरा हुआ है।"[1]

बुल्के का जन्म बेल्जियम के वेस्ट फ्लैंडर्स में नॉकके-हेइस्ट म्युनिसिपैलिटी के एक गाँव रम्सकपेल में 1909 में हुआ था। उन्होंने लूवेन विश्वविद्यालय, लिस्सेवेगेसे सिविल इंजीनियरिंग की डिग्री ली और उसके बाद 1930 में जेसुइट बन गए। बाद में जेसुइट सेमिनरी से लैटिन भाषा पढ़ने के बाद ब्रदर बने बुल्के ने अपना जीवन एक संन्यासी के रूप में बिताने का निश्चय किया और कई महत्त्वपूर्ण संस्थाओं में अध्ययन करने के बाद 1935 में भारत आ गए। यहाँ उन्होंने विज्ञान के अध्यापक के रूप में सेंट जोसेफ कॉलेज, दार्जीलिंग में और येसु संघियों के मुख्य निवास स्थान मनरेसा हाउस, रांची में अपना प्रवास किया। 1944 में उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. किया और उसके बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 1947 में हिन्दी में एम.ए. और 1950 में डॉक्टोरेट करने के उपरांत 1951 में उन्होंने भारत की नागरिकता ग्रहण की।

उनके द्वारा रचित पुस्तकों की संख्या 29 है। जिसमें प्रमुख हैं, 'रामकथा:

तुलसीदास कामिल बुल्के के सबसे प्रिय कवि और उनकी धर्म साधना के प्रेरक आदर्श थे। उनके निकटतम अधिकतर विद्वान लोगों को उनके जैसे प्रखर बुद्धि की धर्मनिष्ठा और एक विदेशी के हिंदी प्रेम की तरह समर्पित ईसाई सन्यासी की तुलसी भक्ति बहुत आश्चर्यजनक लगती थी। उनसे कई बार प्रश्न भी किया करते थे। उन्होंने इसका समाधान देते हुए कहा, "जब मैं अपने जीवन पर विचार करता हूँ तो मुझे लगता है कि ईसा,हिंदी और तुलसीदास यह वास्तव में मेरी साधना के तीन प्रमुख घटक हैं और मेरे लिए उन तीन तत्वों में कोई विरोध नहीं, बल्कि गहरा संबंध है।"

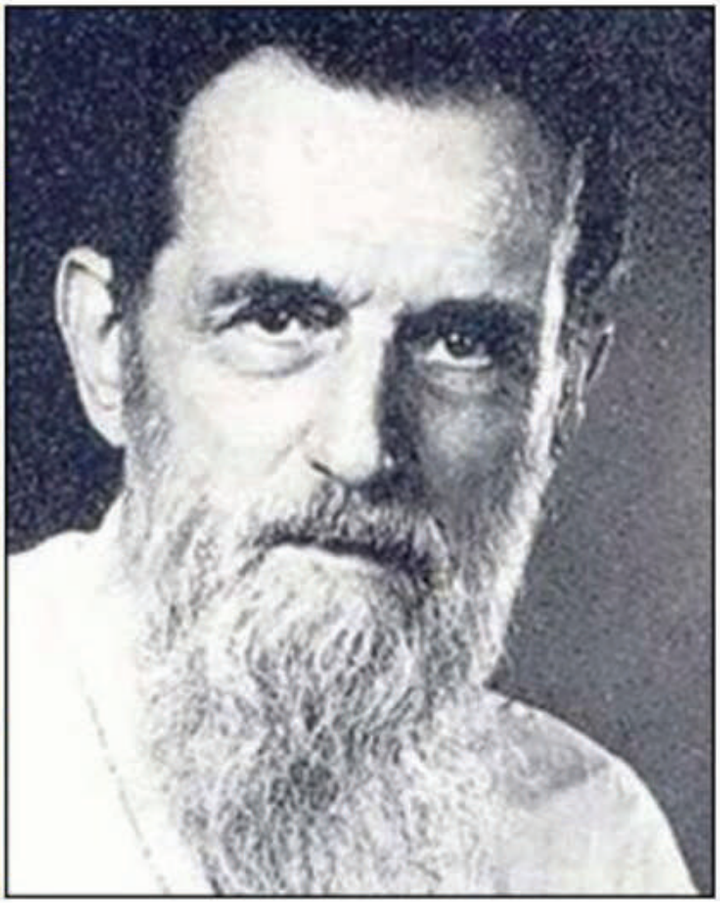

उत्पत्ति और विकास', 'हिंदी-अंगरेजी लघुकोश', 'अंगरेजी-हिंदी कोश', 'रामकथा और तुलसीदास', 'मानस–कौमुदी', 'ईसा जीवन और दर्शन', 'एक ईसाई की आस्था', 'मुक्तिदाता', 'नया विधान', 'नीलपक्षी' आदि। इसके अलावा भी उनके सैकड़ों शोध-निबंध विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। वे 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद', 'काशी नागरी प्रचिरिणी सभा' और 'बेल्जियन रॉएल अकादमी' के सम्मानित सदस्य थे। निस्संदेह डॉ. फादर कामिल बुल्के ने भारत और पश्चिमी जगत को भावात्मक रूप से जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। भारत सरकार ने साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में किए गए उनके योगदान के लिए उन्हें 1974 में पद्मभूषण से सम्मानित किया।

डॉ. फादर बुल्के का शोध-प्रबंध हिन्दी माध्यम में प्रस्तुत हिन्दी विषय का पहला शोध-प्रबंध भी है। जिस समय फादर बुल्के इलाहाबाद में शोध कर रहे थे, उस समय विश्वविद्यालय के सभी विषयों के शोध-प्रबंध केवल अंग्रेजी में ही प्रस्तुत करने का विधान था। फादर बुल्के के लिए अंग्रेजी में शोध-प्रबंध प्रस्तुत करना सरल भी था, किन्तु यह बात उनके हिन्दी स्वाभिमान के विपरीत थी। उन्होंने आग्रह किया कि उन्हे हिन्दी में शोध-प्रबंध प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की जाय। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डॉ. अमरनाथ झा ने उनके आग्रह पर शोध-संबंधी नियमावली में संशोधन कराया और उन्हें अनुमति दी। शोध-प्रबंध का शीर्षक था- 'रामकथा: उत्पति और विकास'। इसमें संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, बंगला, तमिल आदि सभी प्राचीन और आधुनिक भारतीय भाषाओं में उपलब्ध रामविषयक विपुल साहित्य का ही नहीं, वरन् तिब्बती, बर्मी, इंडोनेशियाई, थाई आदि भाषाओं में उपलब्ध समस्त राम साहित्य का अत्यंत वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन किया गया है। अपना शोध-प्रबंध जमा करने के बाद भी डॉ. बुल्के इसी विषय पर अगले 18 वर्ष तक काम करते रहे। उनकी इस कृति के बारे में उनके गुरु डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा कि

इसे रामकथा संबंधी समस्त सामग्री का विश्वकोश कहा जा सकता है। वास्तव में यह शोध-प्रबंध अपने ढंग की पहली रचना है। हिन्दी क्या, किसी भी यूरोपीय या भारतीय भाषा में इस प्रकार का दूसरा अध्ययन उपलब्ध नहीं है। हिन्दी परिषद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने स्वयं इसे प्रकाशित करके इसकी गुणवत्ता पर मुहर लगा दी।

फादर कामिल बुल्के के रचना क्षेत्रों को चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है—रामकथा कोश, अनुवाद और धर्म दर्शन। रामकथा उनकी कीर्ति का विशेष आधार रहा है। 'रामकथा: उत्पत्ति और विकास' नामक ग्रंथ के तीन संस्करण प्रकाशित हुए और उनके देहावसान पश्चात चौथे संस्करण की पांडुलिपि में कुछ प्रविष्टियाँ समाविष्ट हुई। रामकथा को भारत की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में रेखांकित करते हुए अखिल भारतीय साहित्यकार सम्मेलन, कानपुर 1967 का उद्घाटन भाषण में डॉ. बुल्के ने कहा, "वास्तव में रामकथा आदर्श जीवन का वह दर्पण है, जिसे भारतीय प्रतिभा शताब्दियों तक परिष्कृत करती रही। इस प्रकार रामकथा भारतीय आदर्शवाद का उज्ज्वलतम प्रतीक बन गई है। भारतीय संस्कृति में विचारों की उदारता, स्वतंत्रता, तथा निर्भीक जिज्ञासा के विशेष लक्षण हैं। इतिहास इसका साक्षी है कि भारत में नई धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधाराएं बराबर उत्पन्न होती रही और नए विचारों का स्वागत होता रहा। अतीत के भंडार से किसी कार्य विशेष के कुछ ही सिद्धांत निकाल कर उन्हें भारतीयता की एकमात्र प्रतिनिधिक उपलब्धि ठहराना, भारत की शताब्दियों तक निरंतर आगे बढ़ती हुई उदार संस्कृति के प्रति घोर अन्याय ही है। ....वाल्मीकि ने जिस भारत का चित्रण किया है वह अपना अतीत गौरव से मोहित होकर निष्क्रिय नहीं बन गया था, वरन हृदय में जीवन के प्रति उत्साह भरकर अग्रसर होता रहा था।"[2]

रामकथा उनके जीवन का प्रमुख केंद्र रही, किंतु इस कथा के प्रति उनका आकर्षण सबसे पहले तुलसीदास के कारण उत्पन्न हुआ। जिनकी कुछ पंक्तियाँ पढ़कर वह अभिभूत हो उठे थे। उनका कथन है, "क्या मुझे उस समय अदृष्ट का संकेत मिल रहा था कि मैं उस कवि के देश में जाकर बस जाऊंगा, उसकी रचना से मोहित होकर उसके साहित्य का विशेष अध्ययन करूंगा, उसी काव्य के कथानक पर अनुसंधान करुंगा?"[3]

तुलसीदास कामिल बुल्के के सबसे प्रिय कवि और उनकी धर्म साधना के प्रेरक आदर्श थे । उनके निकटतम अधिकतर विद्वान लोगों को उनके जैसे प्रखर बुद्धि की धर्मनिष्ठा और एक विदेशी के हिंदी प्रेम की तरह समर्पित ईसाई सन्यासी की तुलसी भक्ति बहुत आश्चर्यजनक लगती थी। उनसे कई बार प्रश्न भी किया करते थे। उन्होंने इसका समाधान देते हुए कहा, "जब मैं अपने जीवन पर विचार करता हूँ तो मुझे लगता है कि ईसा,हिंदी और तुलसीदास यह वास्तव में मेरी साधना के तीन प्रमुख घटक हैं और मेरे लिए उन तीन तत्वों में कोई विरोध नहीं, बल्कि गहरा संबंध है।"[4]

प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन नागपुर के अवसर पर पवनार आश्रम, वर्धा में 14 जनवरी,1975 को तुलसी की प्रतिमा का अनावरण करते हुए बुल्के ने कहा था, "तुलसी ने कहा है, सब ही नचावत राम गोसाईं, किंतु मैं कहता हूँ- मोहि नचावत तुलसी गोसाईं। प्रत्येक वर्ष तुलसी का संदेश सुनाने के लिए मैं बहुत दौड़ा करता हूँ।"[5] अपनी तुलसी भक्ति के बारे में उन्होंने लिखा है, "1938 में मैने 'रामचरितमानस' और 'विनयपत्रिका' को प्रथम बार आद्योपान्त पढ़ा। उस समय तुलसीदास के प्रति मेरे हृदय में जो श्रद्धा

डॉ. फादर बुल्के का शोध-प्रबंध हिन्दी माध्यम में प्रस्तुत हिन्दी विषय का पहला शोध-प्रबंध भी है। जिस समय फादर बुल्के इलाहाबाद में शोध कर रहे थे, उस समय विश्वविद्यालय के सभी विषयों के शोध-प्रबंध केवल अंग्रेजी में ही प्रस्तुत करने का विधान था। फादर बुल्के के लिए अंग्रेजी में शोध-प्रबंध प्रस्तुत करना सरल भी था, किन्तु यह बात उनके हिन्दी स्वाभिमान के विपरीत थी। उन्होंने आग्रह किया कि उन्हें हिन्दी में शोध-प्रबंध प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान की जाय।

उत्पन्न हुई और बाद में बराबर बढ़ती गई, वह भावुकता मात्र नहीं है. साहित्य तथा धार्मिकता के विषय में मेरी धारणाओं से इस श्रद्धा का गहरा संबंध है।"[6] वे तुलसीदास को केवल विश्व के महानतम कवियों में एक ही नहीं मानते थे, वरन उनकी भगवत भक्ति को मानव मात्र के लिए आदर्श मानते थे। यद्यपि तुलसी पर एक विस्तृत ग्रंथ लिखने का उनका सपना पूरा नहीं हो सका, लेकिन उनके निबंधों तथा 'रामकथा और तुलसीदास' तथा मानस-कौमुदी' नामक पुस्तक से उनकी तुलसी संबंधित दृष्टि की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

डॉ. बुल्के रामकथा के ऐतिहासिक विकास को तीन सोपानों में विभाजित करते हैं और यह कहते हैं कि तुलसी की रामकथा इसके तीसरे सोपान का प्रतिनिधित्व करती है। उनके अनुसार राम कथा के विकास का पहला सोपान है—वाल्मीकि द्वारा अंकित आदर्श क्षत्रिय मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित्र तथा दूसरा सोपान राम का विष्णु के अवतार के रूप में परिवर्तन है और तीसरा सोपान रामभक्ति है। इस चरण में राम को न केवल विष्णु का अवतार माना गया, बल्कि स्वयं परब्रह्म का अवतार निरूपित किया गया। रामचरितमानस का संबंध रामकथा के विकास के सोपान से है।

फादर कामिल बुल्के की दृष्टि में तुलसी की राम कथा मात्र परंपरा का अनुसरण नहीं है, बल्कि उसे अपनी परिकल्पना के अनुसार कभी स्वीकार करते, कहीं छोड़ते और कहीं बदल देते हैं। लेकिन वे यह सब कथानक के परंपरागत ढांचे के अंतर्गत इतनी सहजता से करते हैं कि उनकी मौलिकता पर कोई असहमति नहीं दिखती। इस संबंध में उनका अभिमत है, "तुलसी उन विभिन्न कथाओं-वाल्मीकि, अध्यात्म रामायण, महानाटक, प्रसन्न राघव आदि से प्रसंग चुनकर अपने रामचरित की रचना करते हैं।"[7] इसीलिए तुलसी की राम कथा में यदि परंपरा से भिन्नता मिलती है तो इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि यह कोई एक कथा ना होकर असंख्य कथाओं का समूह है। उन्होंने तुलसी की रामकथा के विशेष ढांचे या रूप विधान के तीन कारण बताए हैं—पहला कारण कवि इसके माध्यम से राम के परमब्रह्मत्व को स्थापित करना चाहते हैं, दूसरा कारण इसके माध्यम से वे भक्ति का निरूपण करना चाहते हैं और तीसरा कारण यह कि वे अपने समकालीन एवं पूर्ववर्ती राम साहित्य में बढ़ते हुए शृंगारिकता से इसे पूर्णता मुक्त कर मर्यादित और नैतिक स्वरूप देना चाहते हैं।

इससे यह संकेत मिलता है कि किस प्रकार तुलसी की रामकथा परंपरा के सर्वोत्तम का संरक्षण करने और उसे निरंतरता प्रदान करने वाली प्रतिनिधि रचना है। वे लिखते हैं, "नैतिक आदर्शों के चित्रण द्वारा लोक संग्रह का भाव और भगवदभक्ति, राम कथा परंपरा के इन दोनों तत्वों का अपूर्व समन्वय तुलसीदास ने अपने रामचरित मानस में प्रस्तुत किया है।"[8]

वस्तुतः वाल्मीकि के परवर्ती रामकाव्य के कवियों में तुलसी का स्थान अद्वितीय है। उन्होंने वाल्मीकि और लोकसंग्रह का पूरा-पूरा निर्वाह किया है और उस रामकथा के सोने में भगवद्भक्ति की सुगंध जगा दी है। तुलसीदास ने भगवद्भक्ति के विषय में जो संदेश दिया है, वह वाल्मीकि के नैतिक आदर्श की भांति विश्वजनीन है। इष्टदेव के प्रति अनन्य आत्म-समर्पण के साथ-साथ अपने दैन्य की तीव्र अनुभूति तुलसी की भगवद्भक्ति की प्रमुख विशेषता है। उन्होंने कहीं भी कर्मकाँड पर बल नहीं दिया, कहीं भी मन्दिर में होने वाली पूजा के लिए अनुरोध नहीं किया। भक्तिमार्ग की नींव नैतिकता है और अपनी उक्त प्रमुख विशेषता के कारण वह सब संप्रदायों के ऊपर उठकर मानव मात्र के लिए उपयुक्त है।"[9]

तुलसी ने वाल्मीकि रचित रामकथा के आदर्शवाद और भक्ति रूप बनाए रखा। वस्तुतः वाल्मीकि की राम कथा में 2000 वर्षों तक होते रहने वाले परिवर्तनों और परिवर्धनों के बावजूद उसका लोक संग्रह और आदर्शवादी स्वभाव अक्षुण्ण रहा। परंतु सखी संप्रदाय के माध्यम से जब इस कथा में शृंगारिकता का समावेश होने लगा और उसके बाद काव्य के नाम पर ऐसी रचनाएं लोकप्रिय भी हो गई, जिनमें नायक-नायिकाओं के प्रेम प्रसंगों का वर्णन मिलता था। तब तुलसी ने अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम से इस प्रवृत्ति का विरोध किया। वह एक ऐसे कवि का स्वरूप चाहते थे जो जीवन के सात्विक लक्षणों से प्रेरित हो।

रामचरितमानस में राम के नैतिक और लोक संग्रह ही चरित्र की अभिव्यक्ति अत्यधिक मार्मिक ढंग से हुई है। इस दृष्टि से यह अद्वितीय कृति है। किंतु जब तुलसी भक्ति पर अपने विचार को प्रकट करते हैं तो उन्हें यह ईश्वर तक पहुंचने का श्रेष्ठतम

मार्ग दिखाई देता है। डॉ. बुल्के का मत है कि यहाँ उनका पूर्ववर्ती रामकथा परंपरा से भेद हो जाता है। यह बात 'अध्यात्म रामायण' से उनके भक्ति संबंधी दृष्टिकोण की तुलना करने पर और भी स्पष्ट हो जाती है। अध्यात्म रामायण में भक्ति को ज्ञान का साधन मात्र माना गया है। मोक्ष ज्ञान द्वारा ही संभव है और ज्ञान की अनिवार्य शर्त सन्यास और वैराग्य है, लेकिन इसके ठीक विपरीत तुलसी यह कहते हैं कि ज्ञान मार्ग अत्यंत कठिन है। यह मार्ग मनुष्य के चित्त को भीतर से बदलने में असमर्थ है। सबसे श्रेष्ठ है—भक्ति। क्योंकि यह मनुष्य को भीतर से धोकर पवित्र करती है और बड़ी सरलता से प्रभु तक ले जाती है।

तुलसी ने इसे सर्वसुलभ मार्ग बताया और इसे राजमार्ग भी कहा, जिस पर चलने का अधिकार सब मनुष्यों को है।तुलसी मर्यादा को भक्ति का आवश्यक आधार मानते हैं। उनके अनुसार भक्ति का सामाजिक कर्तव्यों के पालन और सदाचरण से विच्छेद संबंध है। उनकेरामचरितमानस और अन्य रचनाओं में भक्ति का जो स्वरूप व्यक्त हुआ है,उससे स्पष्ट है कि "संत गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति का जो सिक्का चलाया, उसके दो पहलू हैं—एक भगवत भक्ति और दूसरा नैतिकता।"[10]

फादर बुल्के को तुलसी की भक्ति में जो एक विशेषता विशेष रूप से आकर्षित करती है वह है—परहित भावना। आचार्य शुक्ल ने इसे 'लोकमंगल' के रूप में निरूपित किया, लेकिन कामिल बुल्के इस दृष्टिकोण को तुलसी की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानते हैं। उनकी दृष्टि में यह महाकवि तुलसी की मौलिकता है, जिसमें मनुष्य की सेवा महत्त्वपूर्ण है। तुलसी का प्रभु-भक्त न केवल नैतिक आचरण करने वाला और परहित निरत व्यक्ति है, बल्कि वह प्रपत्ति और आत्मदैन्यभावपन्न व्यक्ति भी है। वह पूरी श्रद्धा से भगवान का विधान स्वीकार करता है और भरत की तरह यह मानता है कि प्रभु की आज्ञा के पालन से बढ़कर उसकी और कोई सेवा नहीं है। ईश्वर के विधान के प्रति पूर्ण समर्पण और पाप-बोध तुलसी की भक्ति की ये विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं।

लेखक केदारनाथ सिंह ने कहा कि हिंदी में तुलनात्मक साहित्य और भारत एवं अन्य जगहों पर राम कथा का तुलनात्मक अध्ययन फादर बुल्के के शोध कार्य 'राम कथा' से शुरू हुआ। हिंदी को जो विशिष्ट बनाता है वह यह है कि इसके जैसा कोई अन्य अध्ययन किसी भी यूरोपीय या भारतीय भाषा में मौजूद नहीं है। हिंदी पट्टी में इस प्रमुख मुद्दे की इस तरह की गहन जांच कई धार्मिक और राजनीतिक भ्रांतियों को दूर करती है और विद्वानों को एक दिशा प्रदान करती है। कामिल बुल्के की दृष्टि में रामचरितमानस की प्रासंगिकता सार्वकालिक है।उसके दो बड़े कारण हैं- उनकी भक्ति और कवित्व। उनकी भक्ति केवल वर्णाश्रम धर्म तक सीमित न होकर विश्वजनीन है। उनके काव्य का आधारभूत ढाँचापौराणिक है। उनकी युग के धार्मिक विश्वास और सामाजिक व्यवस्था दोनों परंपरागत हैं, लेकिन उनकी युगीन सीमाएँ उनके मूल्यांकन की एकमात्र कसौटी नहीं है। वह मानव मात्र को समान निरूपित करने वाले और जातिगत भेदभाव से ऊपर उठकर प्रत्येक मनुष्य की सेवा को परम धर्म मानने वाले 'परहित' को अपने विचार व्यवस्था में जो महत्त्व देते हैं, वह इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। उनके इस मानव समतावाद का स्रोत उनकी भक्ति ही है। लेकिन इसके समांतर उनके मानस की प्रासंगिकता का रहस्य उनका कालजयी कवित्व है।

संदर्भ

1. हिन्दी चेतना, फ़ादर कामिल बुल्के विशेषांक, हिन्दी प्रचारिणी सभा, केनेडा, जुलाई2009, पृष्ठ-19
2. वही, पृष्ठ-42
3. फ़ादर कामिल बुल्के, विनिबंध, डॉ.दिनेश्वर प्रसाद, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, सं. 2002, पृष्ठ-21
4. एक ईसाई की आस्था, हिंदी-प्रेम और तुलसी भक्ति, धर्मयुग, 27 दिसंबर, 1970
5. फ़ादर कामिल बुल्के,विनिबंध,डॉ.दिनेश्वर प्रसाद, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, सं. 2002, पृष्ठ-15
6. हिन्दी चेतना, फ़ादर कामिल बुल्के विशेषांक,हिन्दी प्रचारिणी सभा, केनेडा, जुलाई2009, पृष्ठ-34
7. फ़ादर कामिल बुल्के,विनिबंध,डॉ.दिनेश्वर प्रसाद, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, सं. 2002, पृष्ठ-63
8. वही, पृष्ठ-64
9. हिन्दी चेतना, फ़ादर कामिल बुल्के विशेषांक, हिन्दी प्रचारिणी सभा, केनेडा, जुलाई2009, पृष्ठ-32
10. रामकथा और तुलसीदास, फ़ादर कामिल बुल्के, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, सं.2008,पृष्ठ-75

———•••———

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग,
डॉ. भीमराव अम्बेडकर राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, चित्तौड़गढ़, राजस्थान

तुलसीदासी भाषा की विशेषताएं

—कृष्ण बिहारी पाठक

हिंदी भाषा और साहित्य की एक हजार वर्ष की परंपरा का अनुशीलन करने के बाद तथा हिंदीतर, भारतीय और भारतेतर साहित्य का परिचय पाने के बाद जब आचार्य रामचंद्र शुक्ल बेखटके, पूर्ण आत्मविश्वास के साथ गोस्वामी तुलसीदास को लक्ष्य कर यह कहते हैं कि यह एक कवि ही हिंदी को एक प्रौढ़ साहित्यिक भाषा सिद्ध करने के लिए काफी है तब यह प्रश्न तुलसी के भाषा विवेक, भाषा कौशल से कहीं अधिक हिंदी भाषा के सर्वांगपूर्ण, सर्वसमर्थ, सर्वोत्कृष्ट स्वरूप के प्रतिनिधित्व का भी हो जाता है।

यह प्रश्न उस कवि के भाषागत अभिनिवेश को भाषा में अंतर्निहित संपूर्ण संभावनाओं को स्पर्श करने की, उसके सौंदर्य के सम्यक दिग्दर्शन की, उसकी शक्तिमत्ता के आह्वान की और उसके शील के उद्घाटन की, उसकी प्रखरता, मुखरता और संप्रेषण की सभी विमाओं से जोड़कर देखने का आग्रह भी साथ लेकर आता है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में तथा गोस्वामी तुलसीदास शीर्षक आलोचना में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तुलसी की भाषागत ज्येष्ठता-श्रेष्ठता को सप्रमाण, सतर्क पुष्ट करते हुए इस रूप में सामने रखा है कि विश्व के सभी भाषा परिवारों के बीच हिंदी भाषा-भाषी पूरे स्वाभिमान से आँख से आँख मिलाकर बात कर सकते हैं।वे अकेले तुलसी के बल पर ही भारतीय साहित्य और संस्कृति पर मुग्ध हो सकते हैं, गर्व कर सकते हैं।

यह पूरा संदर्भ इसलिए भी विशिष्ट महत्व रखता है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यह स्थापना ऐसे समय में दी थी जब भारत पर शासन करने वाली विदेशी शक्तियाँ पुरजोर ताकत से भारतीय मनीषा में उसकी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के प्रति हीनता का बोध जगाकर उसकी सांस्कृतिक चेतना के औपनिवेशीकरण के लिए तत्पर थीं।

तुलसी के भाषागत अभिनिवेश आज भी भारतीय मनीषा के साहित्यिक-सांस्कृतिक स्वाभिमान को अविचल बनाए हुए हैं।ऐसे में तुलसी की भाषा के कालजयी कालातीत उत्कर्ष में अंतर्निहित कारकों पर एवं उसकी शक्ति, सामर्थ्य और सौंदर्य के विशेषकों पर भी विचार किया जाना चाहिए।

बोलचाल की सामान्य भाषा को साहित्य की भाषा बनाने के लिए प्रायः सभी रचनाकार अर्थ, भाव और विचार के स्तर पर गुणात्मक उत्कर्ष के आग्रह के साथ काम करतें हैं।

समर्थ और दृष्टिवान रचनाकार सामान्य भाषा के उपस्थित अवयवों में भी सादृश्य से, कभी विचलन से, कभी श्रृंखला से कभी विरोध से, कभी बिंब, प्रतीक और अलंकारों से तो कभी समानान्तरता या आवृत्ति से अर्थ संधान, अर्थ निर्माण और अर्थ उत्थान करता है। चली आ रही एकसार भाषा का अतिक्रम करते हुए कभी-कभी तत्समतर, तद्भव, ठेठ, देशी या विदेशी शब्दावली का अभिनिवेश भी इसमें शामिल है।

निस्संदेह तुलसी भी ने भाषा को साहित्यिकता का स्पर्श देने के लिए ये सभी उपक्रम किये होंगे। परंतु वे कौन से अतिरिक्त उपक्रम और अद्वितीय विशेषक हैं जो तुलसी को संपूर्ण भाषा परंपरा के बीच श्रेष्ठता-ज्येष्ठता प्रदान करते आ रहे हैं? इस प्रश्न के उत्तर एकाधिक हो सकते हैं परंतु भाषा को संजीवनी प्रदान करते हुए उसे अधिक संवेदनशील, अधिक भावसंपन्न और सांवेगिक बनाकर पेश करने की प्रवृत्ति तुलसी की भाषा की चिरंजीविता का एक बड़ा कारक है।

तुलसी ने भाषा की भाव-संवेदना को अद्भुत उत्कर्ष प्रदान किया है। तुलसी पर आकर यह पूर्ण निश्चय होता है कि भाषा एक सजीव विमा है। तुलसी ने अपनी भाषा में निजी भाव संवेदनाओं और संवेगों को ऐसे विलीन और एकरस कर दिया है कि उनकी भाषा में उनकी निजता की छाप फूलवत सुगंध सी महकती है। बहुत संभव है विनय पत्रिका की भाषा में तुलसी और भाषा की एकरसता को लक्ष्य करके उसकी भाषा को 'तुलसीदासी भाषा' कहा गया हो। परंतु ध्यान देने की बात यह है कि विनय की पाती में ही नहीं बल्कि यह एकरसता तुलसी की संपूर्ण वाग्मिता में प्रकर्ष के साथ वर्तमान है।

भाषा पर तुलसी की भाव संवेदनाओं का पारदर्शी प्रभाव और भाषा पर तुलसी का अचूक अधिकार ये दोनों बातें उनकी भाषा को 'तुलसीदासी भाषा' कहने से परिभाषित हो जाती हैं।

रामकथा के एक ही प्रसंग को दो अलग-अलग रचनाकारों के माध्यम से उठाकर यह अधिक स्पष्ट हो सकेगा

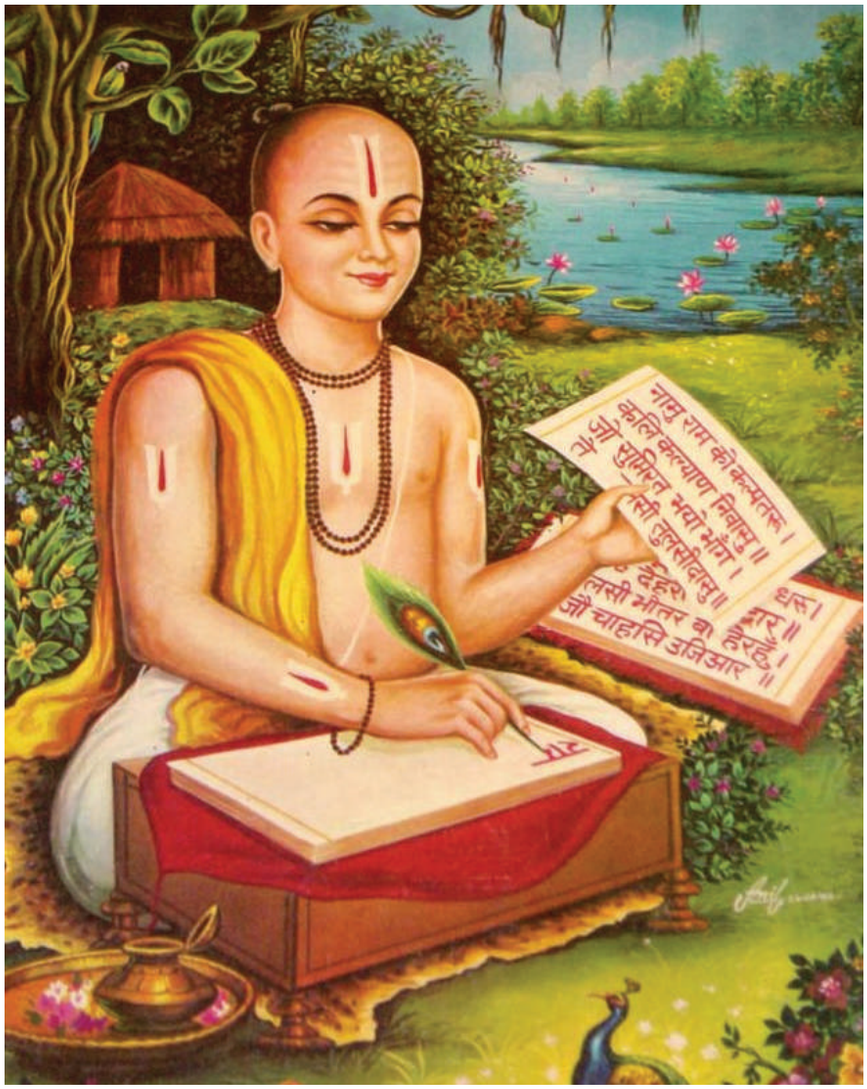

कि आखिर क्योंकर तुलसी की भाषा तुलसीदासी भाषा है। रामकथा के इस नीति प्रसंग में देखते हैं जहाँ राम समुद्र से रास्ता माँग रहे हैं। पहले तुलसी के रामचरित मानस का छंद देखें—

बिनय न मानत जलधि जड़
गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब
भय बिनु होइ न प्रीति॥

यही बात दिनकर की कविता में कुछ ऐसे खुलती है—

तीन दिवस तक पंथ मांगते
रघुपति सिन्धु किनारे,
बैठे पढ़ते रहे छन्द
अनुनय के प्यारे-प्यारे।

उत्तर में जब एक नाद भी
उठा नहीं सागर से
उठी अधीर धधक पौरुष की
आग राम के शर से।

बात एक ही है पर बात को कहने का तरीका भिन्न है। तरीके या रीति की भिन्नता ही शैली है। शैलीगत दृष्टि से इन दोनों छंद-बंधों को एक साथ देखें तो

गोस्वामी तुलसीदास अपने शब्द चयन में संदर्भों के प्रति विशेष सजगता दिखाते हैं। सीता के धीरज और सहनशीलता के सभी प्रसंगों में उनके लिए वे धरती की बेटी के अर्थ को ध्वनित करने वाले शब्द चुनते हैं, कहने की आवश्यकता नहीं कि धरती धीरज और सहनशीलता का चिर परिचित प्रतीक है।

पाएंगे कि तुलसी ने समुद्र और उसकी जड़ता को लक्ष्य किया जबकि दिनकर ने राम को पंथ माँगते हुए वर्णित किया है।

तुलसी की दासानुदास पद्धति में जाके प्रिय न राम वैदेही का सूत्र है इसलिए सारा क्षोभ, अमर्ष सिंधु की जड़ता पर उतरा है। इतना ही नहीं तुलसी के 'गए तीन बीत' में भी दोषारोपण उन तीन दिनों पर ही है जो उनके राम के काम न आ सके, जो उनके राम का काम न कर सके। तुलसी अपने राम के लिए याचना सूचक 'मांगते' शब्द का प्रयोग सपने में भी नहीं सोचेंगे।

तुलसी का विनय और दिनकर का अनुनय तो नजदीक ही हैं पर दिनकर ने सीधे-सीधे राम के लिए 'बैठे पढ़ते रहे' लिखा है, कहने की आवश्यकता नहीं कि बैठ रहना, हाथ पर हाथ धरे बैठ रहना, या अकेले ही 'बैठना' कर्म की निवृत्ति या नियतिवाद को इंगित करता है। लिखते तुलसी भी यही है कि "दैव दैव आलसी पुकारा... पर तुलसी का कवि सीधे-सीधे नहीं लिखता, लक्ष्मण पर कहलावाता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि दिनकर की तुलना में तुलसी की भाषा में उनकी विनय, दासानुदास भक्ति और उनकी निजता कितनी प्रकट, पारभाषी और स्पृहणीय है।

तुलसी की भाषा में सजीवता और मानवसम्मत प्रवृत्ति भी बढ़ चढ़ कर आती है। तुलसी के मानस में वर्णित धनुष यज्ञ प्रसंग में आए ध्वनि प्रभाव भी मुग्ध करते हैं। वे भाषा की शक्ति का साक्षात्कार एक भावक को कराते हैं।

राजा जनक ने विवाह की शर्त शिव धनु पर चाप चढ़ाने की रखी है। पर यह क्या? चाप चढ़ाना तो दूर धनुष को बलशाली राजा, राजकुमार उठा ही नहीं पा रहें हैं, उठाना छोडिए, सूत पर हिलाना या कंपित करना भी मुश्किल। वीरों के पसीने छूट रहे हैं, एक दो वीर, वीरत्व को आजमा चुके, भरी सभा में हास्यास्पद स्थिति बनी—

'चाप समीप महीप न जाहीं।'

अब लज्जा और भय के कारण किसी का पैर नहीं उठता यद्यपि मन सीता को देख आगे बढता है पर पैर रुक जाते हैं। कोई पूरे बल और वेग को समेट कर उठना तो चाहे पर आगे लज्जा और भय का व्यवधान या दीवार देख जा न सके, इस पूरे चित्र को ध्वनि कैसे व्यक्त करती है इस पर डॉ. भोलानाथ तिवारी ने विचार किया है—

"यहाँ 'प' का अंत्यानुप्रास बड़ा सार्थक है। यह स्पर्श व्यंजन है, जिसमें संघर्षी आदि अन्य ध्वनियों की तरह हवा लगातार नहीं निकलती। राजा लोगों के न जाने की क्रिया से इस ध्वनि की उच्चारण-प्रक्रिया पंक्ति के मुख्य कथ्य को रेखांकित कर रही है।"[1]

चाप के 'चा' को बोलते समय जो हवा उठकर आगे बढने की कोशिश में थी वह 'प' पर दोनों होठों के बंद होते ही वापिस बैठ जाती है, यही बात समीप और महीप में 'प' से पूर्ववर्ती वर्णों के साथ हुई है, यही बात धनुष यज्ञ में राजाओं के साथ हो रही थी।

मानवीय क्रियाओं और प्रसंगों को भाषागत संदर्भों में उतारकर तुलसी ने यहाँ भाषा पर अपने असाधारण अधिकार को पुष्ट किया है। भाषा के ऐसे संगत, सम्मत और साभिप्राय प्रयोग पर मुग्ध होकर ही आचार्य शुक्ल लिखते हैं—

"भाषा का प्रयोग उन्होंने भावों और विचारों को स्पष्ट रूप में रखने के लिये किया है, कारीगरी दिखाने के लिए नहीं। उनकी सी भाषा की सफाई और किसी कवि में नहीं।.. गोस्वामी जी की वाक्य रचना अत्यंत प्रौढ़ और सुव्यवस्थित है; एक भी शब्द फालतू नहीं।"[2]

निर्दोष रचनात्मकता की यह सबसे प्रधान और कठिन शर्त है कि रचना में एक भी फालतू शब्द का प्रयोग न हो। भरती के शब्दों का प्रयोग रचना कौशल की कमी के रूप में चिह्नित किया जाता है। तुलसी इस रूप में भी चमत्कृत करतें

हैं कि जहाँ वे अन्य भाषा या रचना से कोई प्रसंग उठाते हैं उसे भी निजता का स्पर्श देकर न केवल मौलिक अपितु अधिक अर्थवत्तापूर्ण बना देते हैं। दूसरी रचना या रचनाकार की भाषा भी तुलसी का स्पर्श पाकर तुलसीदासी बन जाती है।

गोस्वामी तुलसीदास की रचना प्रक्रिया में विविध संस्कृत श्लोकों पर आधारित होने पर भी भाषा को जो ताजगी, ऊर्जस्विता, नवता और मौलिकता गोस्वामी जी प्रदान करते हैं वह अद्भुत है। सर्जक अपनी भाषा को कैसे संस्कार प्रदान करता है यह बात रेखांकित करने योग्य है।राम विभीषण मैत्री प्रसंग में—

' जो संपति शिव रावनहिं,
दीन्हि दिए दस माथ।
सोई संपदा विभीषनहिं,
सकुचि दीन्ह रघुनाथ।। '

इस पद में तुलसी द्वारा हनुमन्नाटक के श्लोक को आधार लेने पर शुक्ल जी लिखते हैं—

"उन्होंने जो संस्कृत उक्तियाँ ली हैं उन्हें भाषा पर अपने अद्वितीय अधिकार के बल से एकदम मूल हिंदी रचना के रूप में कर डाला है।.. बहुत जगह तो उक्ति को अधिक व्यंजक बनाकर और चमका दिया है।... इस अनुवाद में 'दस माथ दिएँ' के जोड़ में 'दरसन ही तें' न रखने से याचक के बिना प्रयास प्राप्त करने का जोर तो निकल गया, पर 'सकुचि' पद लाने से दाता के असीम औदार्य्य की भावना से उक्ति परिपूर्ण हो गई। 'सकुचि' शब्द की व्यंजना यह है कि इतनी बड़ी संपत्ति भी देते समय राम को बहुत कम जान पडी।"[3]

किसी भी रचनाकार के भाषा विवेक में यह बात बहुत महत्व रखती है कि यदि दूसरी रचना से यदि कोई बात लेनी भी पड़े तो उसे अपनी मौलिकता से उसे अभिसिक्त करना, पुनर्नवा बनाना रचनाकार का दायित्व है। उसका कर्तव्य है कि वह भाषा को संस्कार दे।तुलसी एक ओर उपलब्ध भाषिक अवयवों के प्रसंस्करण में अद्भुत प्रज्ञा से काम लेते हैं तो दूसरी ओर नवीन शब्दों के चयन और गठन में भी वे पूरे चौकस हैं।

तुलसी के मानस में इस चयनात्मकता के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण हैं। गोस्वामी तुलसीदास अपने शब्द चयन में संदर्भों के प्रति विशेष सजगता दिखाते हैं। सीता के धीरज और सहनशीलता के सभी प्रसंगों में उनके लिए वे धरती की बेटी के अर्थ को ध्वनित करने वाले शब्द चुनते हैं, कहने की आवश्यकता नहीं कि धरती धीरज और सहनशीलता का चिर परिचित प्रतीक है।

अशोक वाटिका में विरह विदग्ध जानकी की काया की कृशता के लिए 'तन', बिरहाग्नि में क्षण-क्षण छीजते वपु को 'शरीर' तथा राम की आस में अस्तित्वमान कलेवर के लिए 'देह' शब्द का चयन चयनात्मकता की सार्थकता की ही प्रमाण कोटि है कि तूल की समानता और पतलापन व्यंजित करने के तन, बिरहाग्नि में क्षण-क्षण छीजने वाले के लिए शरीर (क्षण-क्षण नष्ट होने वाला), तथा अश्रुजल से अग्नि का शमन करते हुए नष्ट नहीं होने वाले के लिए देह (पुष्ट और मजबूत) का प्रयोग साभिप्राय किया गया है।

इस प्रकरण में यह तो स्वयंसिद्ध हो ही गया है कि कोई भी भाषा निरर्थक शब्दों का भार वहन नहीं करती है, यहाँ काया के लिए जो तन, शरीर और देह आदि एकाधिक शब्द प्रचलित हैं तो उनका स्वतंत्र अस्तित्व और औचित्य भी है।

इसी तरह अद्भुत मायावी, पराक्रमी इंद्रजीत से युद्ध करते, उसे छकाते हनुमान के लिए 'प्रभंजन जाया' शब्द का चयन आकर्षित करता है। पवनसुत, पवनपुत्र, मारुतनंदन, मारुति आदि प्रचलित परिचित शब्दों को छोड़कर तुलसी ने 'प्रभंजन जाया' शब्द काम में लिया है। प्रभंजन, पवन का समानार्थी होकर भी कुछ विशेष अर्थ, शक्ति, वेग और ऊर्जा को परिभाषित करता है। प्रभंजन, वायु का धीर प्रशांत, स्निग्ध, प्रवहमान रूप नहीं वेगवान, प्रचंड स्वरूप है।

मेघनाद अर्थात गर्जन-तर्जन तडित विसर्जित आक्रमणशीलता के समक्ष टिकने के लिए, उसके समानांतर नष्ट-भ्रष्ट, छिन्न-भिन्न करने वाले प्रचंड वायुवेग अर्थात प्रभंजन की ही उपयुक्तता और आवश्यकता थी जो 'प्रभंजन जाया' से ही पूर्ण होती है। पवनपुत्र या हनुमान से नहीं।

"उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया।
जीति न जाइ प्रभंजन जाया।।"

वेगवान प्रचंड वायु गरजते-तरजते मेघों को छिन्न-भिन्न करती गतिमान है। हनुमान और मेघनाद के बरक्स यहाँ प्राकृतिक शक्तियों की टकराहट भी व्यंजित हो उठी है।इस व्यंजना के पीछे का भाषा विज्ञान भी देखें जो इसे तर्कसंगत औचित्य देता है। 'प्रभंजन' में 'प्र' तथा

'ञ्ज' दो संयुक्त व्यंजन हैं, महाप्राण 'भ' है तथा भंजन स्वमेव तोड़ फोड़, छिन्न-भिन्न की शक्ति संकेतित करता है, और ये सभी विशेषक वायु, पवन या हवा के अन्य नामवाचियों में ऐसी शक्तिसंपन्नता के साथ उपस्थित नहीं है।

कैसे कोई समर्थ कवि भाषा के विपुल भंडार में से कोई एक शब्द चुनकर लाता है, कैसे उस शब्द में अपनी भावनाओं का संस्कार भरता है, कैसे यह चयनात्मकता और प्रसंस्करण चमत्कृत करते हैं, कैसे संप्रेषण की छीजत की सारी संभावनाओं को वह धता बता देता है यह कहने से अधिक अनुभव करने की बात है।

एक शब्द के अनेक समानार्थियों का ज्ञान होना और बात है तथा उन समानार्थियों का अधिकतम संयोजनपटुता के साथ अभिनिवेश करना और। शुक्ल जी तुलसी के संदर्भ में ऐसे ही एक प्रसंग को लक्ष्य किया है तथा उसे तुलसी के नवोन्मेष तथा भाषा-प्रसंस्करण की अद्भुत क्षमता से जोड़ा है कि कैसे सम्यक भाषा विवेक के बल पर तुलसी ने दो अत्यंत निकटवर्ती भावों 'वंडर तथा सरप्राइज' को अलग कर दिखाया है।

सेतुबंध की सूचना पाकर रावण हतप्रभ है।उस काल में समुद्र पर सेतु का बँध जाना ऐसा काम है जिसकी कल्पना भी संभव नहीं। एक तो यह बात कल्पनातीत है, दूसरे रावण के दस मुख हैं जो ऐसी अनहोनी बात सुनकर एक साथ बोल उठते हैं, इस बात को एक साथ व्यंजित करने के लिए गोस्वामी तुलसीदास ने एक ही दोहे में समुद्र के दस नाम गिनाकर भाषा के अद्भुत सौंदर्य का दर्शन कराया है, और इस दर्शन का दिग्दर्शन कराते हुए शुक्ल जी लिखते हैं—

"आश्चर्य से मिलता-जुलता भाव जिसे चकपकाहट कह सकते हैं।... आश्चर्य किसी विलक्षण बात पर होता है—ऐसी बात पर होता है जो साधारणतः नहीं हुआ करती। 'चकपकाहट' किसी ऐसी बात पर होता है जिसकी कुछ भी धारणा हमारे मन में न रही हो, और जो एकाएक हो जाय।... राम का सेतु बाँधना सुन रावण चकपकाकर कहता है—

"बाँधे बननिधि? नीरनिधि?
जलधि? सिंधु? बारीस?
सत्य तोयनिधि? कंपति?
उदधि? पयोधि? नदीस?"[4]

गोस्वामी तुलसीदास के भाषा विधान में निहित विशेषताओं को शुक्ल जी ने बहुत सूक्ष्म चयन के साथ चिह्नित किया है। बिना किसी शिथिलता के या न्यून पदत्व के एक ही चरण में अनेकानेक बातों का सुगठित समावेश, सर्वनाम की त्रुटि से सर्वथा मुक्त लंबे वाक्य, सर्वत्र परिष्कृत, गठी, सुव्यवस्थित भाषा आदि चिह्नीकरण इसी श्रेणी के हैं।

वन के मार्ग में ग्रामीण स्त्रियों से घिरी सीता में ब्रीडा जैसे संचारी भाव की अभिव्यंजना के लिए तुलसी द्वारा प्रयुक्त भाषा में 'दुहुँ संकोच विलोकति धरनी' के प्रयोग का वैशिष्ट्य शुक्ल जी सबके सामने रखते हैं—

"दुहुँ संकोच' द्वारा कवि ने सीता के हृदय की कोमलता और अभिमान शून्यता भी कैसे ढंग से व्यंजित कर दी है। एक तो राम को खुले शब्दों में अपना पति कहने में संकोच, दूसरा संकोच यह समझकर कि यदि इन भोली-भाली स्त्रियों को कोई उत्तर न दिया जाएगा तो ये मन में दुखी होंगी और मुझे अभिमानिनी समझेंगी।"[5]

तुलसी की निजता में रची-बसी भाषा सीधे उनके हृदय से निकलती है इसलिए यह सीधे ही सामाजिक के हृदय पर अपना प्रभाव डालती है। यही कारण है कि आज भी यह 'तुलसीदासी भाषा' अद्भुत प्रेरक शक्ति के साथ जीवन के शुभ्रतम पथ पर प्रवृत्त करने का सामर्थ्य लेकर उपस्थित है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि गोस्वामी जी की भाषा में केवल चमत्कार, उपदेश या कविताई कारीगरी रही होती और वह उनके हृदय से लगी हुई नहीं होती तो उसका प्रभाव कुछ भी नहीं शेष रहता। वह काल के गाल में कभी की समा चुकी होती। पर वह आज भी वाग्मिता के प्रकर्ष के साथ भास्वर है। इस वाणी के प्रभाव और माहात्म्य को लक्ष्य करके शुक्ल जी ने लिखा है—

"उनकी वाणी के प्रभाव से भक्त अवसर के अनुसार सौंदर्य पर मुग्ध होता है, महत्व पर श्रद्धा करता है, शील की ओर प्रवृत्त होता है, सन्मार्ग पर पैर रखता है, विपत्ति में धैर्य धारण करता है,कठिन कर्म में उत्साहित होता है, दया से आर्द्र होता है, बुराई पर ग्लानि करता है, शिष्टता का अवलंबन करता है और मानव जीवन के महत्व का अनुभव करता है।"[6]

साहित्य की चरितार्थता भी तभी है जब वह प्रवृत्ति और संचरण की ऊर्जस्विता का आह्वान करता रहे।

धर्म, सत्य, न्याय और सदाचरण का मार्ग दिखाए। सुकुमार भावनाओं और संवेदनाओं को जाग्रत रखे। व्यक्ति हृदय को विश्व हृदय में परिणत करे।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि अकेले भाषा के विशेषक को सामने रखकर ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्तिकाल के सिद्ध कवियों सूर तथा जायसी के बरक्स तुलसी को इक्कीस ठहराया है। सूर और जायसी का जहाँ क्रमशः केवल ब्रज और अवधी के भाषा विवेक के साथ उपस्थित हुए वहीं तुलसी अकेले ही इन दोनों भाषाओं में एक साथ पूर्णसिद्धि लेकर आए।

तुलसी को सूर और जायसी से इक्कीस बताकर ही उन्हें संतोष नहीं, वे विश्व के संपूर्ण साहित्य और साहित्यकारों में न भूतो न भविष्यति की तर्ज पर तुलसी के अमृत्व को प्रतिष्ठित करते हैं, वह भी भाषा के आधार पर। तुलसी की भाषा को इस मोहिनी से देखने वाली भाषा जो शुक्ल जी की है, कितनी सहज, ताजा और प्रवहमान होकर आकर्षित करती है। देखें जरा—

"सबसे बडी विशेषता गोस्वामी जी की है भाषा की सफाई और वाक्य रचना की निर्दोषता, जो हिन्दी के और किसी कवि में ऐसी नहीं पाई जाती।.. ऐसी गठी हुई भाषा किसी की नहीं है। उदाहरण देने की न जगह ही है, न उतनी आवश्यकता ही। सारी रचना इस बात का उदाहरण है।.. और कवियों के साथ तो तुलसी का मिलान ही क्या?"[7]

निस्संदेह यह बात सत्य है कि तुलसी की भाषा के प्रसंग में उसकी श्रेष्ठता-ज्येष्ठता प्रमाणित करने के लिए उदाहरणों या प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है, परंतु गाहे-बगाहे मानस के प्रसंगों या तुलसी की भाषा पर लगी प्रश्नात्मकता के संदर्भ में यह रेखांकित करना बहुत आवश्यक हो जाता है कि रचनाकार,कथानक, रचनागत पात्रों और चरित्रों की प्रकृति और उनके मनोविज्ञान के अनुसार पात्रानुकूल भाषा का व्यवहार अवश्य करता है।

वह नायक के लिए नायकोचित, खलनायक के लिए अपेक्षाकृत उद्धत, अशिष्ट भाषा काम में लेता है। रचना की विविध परिस्थितियों, पृष्ठभूमियों और पात्रों के बदलते स्वभाव और विविधतापूर्ण मनोविज्ञान के अनुरूप भाषा में भी यह विविधता अनिवार्य है।

रचनाकार को रचना के पात्रों और चरित्रों के स्वभाव, मनोविज्ञान, परिवेश और स्तरानुकूल भाषा का व्यवहार करना ही चाहिए तभी रचना सजीव और वास्तविक लगेगी। यह नहीं हुआ कि वह पढ-अपढ़, सेवक-स्वामी, नायक-प्रतिनायक, कुलीन-कामी, धृष्ट-श्रेष्ठ धूर्त-सिद्ध, साधु-शैतान सबके लिए एक ही भाषा का घोल तैयार करके उसे परोसता चले।

प्रत्येक सिद्ध और समर्थ रचनाकार की तरह पात्रानुकूल भाषा तुलसी की भाषा का भी एक अन्यतम विशेषक है यह बात ध्यान देने योग्य है। यद्यपि यह एक अनंतिम बहस है कि वह अर्द्धाली अविचल है, प्रक्षिप्त है या परिवर्तित। फिर भी एक बार यह मान लिया जाए कि वह कृति में है तो तुलसी के भाषागत शैली विज्ञान को भी साथ में लगाकर देखना होगा।

सेतु प्रसंग में तुलसी ने समुद्र को जड़ कहा है और एक जड़ व्यक्ति की मर्यादा के अनुकूल ही उसके संवाद लिखें हैं ऐसे में अप्रत्यक्ष तुलसी यह भी संकेतित करते हैं कि ताड़ना की भाषा में बात करना जड़ व्यवहार का विशेषक है। यद्यपि मानस पर छिड़े विवाद का धन पक्ष यह है कि इसके चलते एक बार फिर मानस मंथन होने लगा है।

भाषा और उसके प्रयोग को लेकर उठी प्रश्नाकुलता के बाद भी रचनाकार को रचना और पात्रों के अनुकूल भाषा का अभिनिवेश करना ही होगा, भले ही उस पर प्रश्न लगते रहे।क्योकि भाषा के इस रचना सम्मत अभिनिवेश को लेकर रचनाकार पर प्रश्न प्रश्नचिन्ह लगाने की यह परिपाटी कितनी संगत है, न्यायोचित है, इसका निर्णय तो विद्वतजन ही करेंगें।

संदर्भ

1. तिवारी, डॉ भोलानाथ, 1983 ई, शैली विज्ञान, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ 171
2. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र,1949ई, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृष्ठ 145,146
3. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 1935ई.,गोस्वामी तुलसीदास, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, पृष्ठ 87
4. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 1935ई.,गोस्वामी तुलसीदास, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, पृष्ठ 118,119
5. पूर्वोक्त, पृष्ठ 101
6. पूर्वोक्त, पृष्ठ 4
7. पूर्वोक्त, पृष्ठ 185,186

व्याख्याता हिंदी
राजस्थान

आचार्य रामचंद्र शुक्ल और राम

—डॉ. दीपक जायसवाल

हिंदी साहित्य ही नहीं वरन समस्त भारतीय भाषाओं की आलोचना के अनुशासन में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की अवस्थिति मज़बूत स्तम्भ की तरह है। उनके विचार, तर्क, आलोचना दृष्टि से सहमत या असहमत तो हुआ जा सकता है लेकिन उनसे तटस्थ रहना कठिन है। ऐसे साहित्य मर्मज्ञ व महत्वपूर्ण आलोचक के प्रिय कवि तुलसीदास हैं और तुलसी के आराध्य मर्यादापुरुषोत्तम राम हैं जिनके लिए 'एक भरोसो, एक बल, एक आस, विश्वास। स्वाति-सलिल रघुनाथ-जस, चातक तुलसीदास' है। आचार्य शुक्ल तुलसी की कविताई से इतने प्रभावित दिखते हैं कि उनकी कविता को काव्य के मानदंड की तरह अपने समक्ष रखते हैं। शक्ति, शील, सौंदर्य से युक्त मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र और लोकमंगलवादी दृष्टिकोण से जितने प्रभावित तुलसी हैं उतने ही आचार्य रामचंद्र शुक्ल। उनके निबंध संग्रह 'चिंतामणि', आलोचना ग्रंथ 'गोस्वामी तुलसीदास', 'त्रिवेणी', 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' आदि से रामकथा और राम के संदर्भ में उनके विचारों को संकलित किया गया है। दरअसल आचार्य शुक्ल रामकथा और तुलसी के माध्यम से भारतीय परंपरा, संस्कृति और आदर्श को ही पुनर्प्रकाशित करते हैं।

आचार्य शुक्ल की चिंता लोकमंगल से जुड़ी है। मध्यकालीन भारत में सत्ता हथियाने के लिए भाई-भाई का क़त्ल कर रहा है,पिता की हत्या कर रहा है। पारिवारिक-सामाजिक मूल्य पूरी तरीक़े से बिखर चुके ऐसे कठिन समय में तुलसीदास समाज के सामने राम चरित्र का आदर्श भक्ति रसायन में घोलकर बेहद भावपूर्ण तरीक़े से प्रस्तुत करते हैं—"लोकविहित आदर्शों की प्रतिष्ठा फिर से करने के लिए, भक्ति के सच्चे सामाजिक आधार फिर से खड़ा करने के लिए, उन्होंने रामचरित का आश्रय लिया जिसके बल से लोगों ने फिर धर्म

आचार्य शुक्ल की चिंता लोकमंगल से जुड़ी है। मध्यकालीन भारत में सत्ता हथियाने के लिए भाई-भाई का क़त्ल कर रहा है,पिता की हत्या कर रहा है। पारिवारिक-सामाजिक मूल्य पूरी तरीक़े से बिखर चुके ऐसे कठिन समय में तुलसीदास समाज के सामने राम चरित्र का आदर्श भक्ति रसायन में घोलकर बेहद भावपूर्ण तरीक़े से प्रस्तुत करते हैं—"लोकविहित आदर्शों की प्रतिष्ठा फिर से करने के लिए, भक्ति के सच्चे सामाजिक आधार फिर से खड़ा करने के लिए, उन्होंने रामचरित का आश्रय लिया जिसके बल से लोगों ने फिर धर्म के जीवनव्यापी स्वरूप का साक्षात्कार किया और उस पर मुग्ध हुए।"

भारतीयता के आदिपुरुष हैं मर्यादा पुरुषोत्तम राम। राम भारतीय लोक के संस्कार बन गए हैं—"गोस्वामीजी द्वारा प्रस्तुत नवरसों का राम रसायन ऐसा पुष्टिकर हुआ कि उसके सेवन से हिन्दू जाति विदेशीय मतों के आक्रमणों से भी बहुत कुछ रक्षित रही और अपने जातीय स्वरूप को भी दृढ़ता से पकड़े रही। उसके भगवान जीवन की प्रत्येक स्थिति में-खेलने-कूदने में, हँसने-रोने में, लड़ने-भिड़ने में, नाचने-गाने में, बालकों की क्रीड़ा में, दाम्पत्य प्रेम में, राज्यसंचालन में, आज्ञापालन में, आनन्दोत्सव में, शोक समाज में, सुख-दु:ख में, घर में,सम्पत्ति में, विपत्ति में उसे दिखाई पड़ते हैं।

के जीवनव्यापी स्वरूप का साक्षात्कार किया और उस पर मुग्ध हुए।"[1]

आचार्य शुक्ल लोकमंगलवादी है वह प्रयत्न-पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य,कवि और नायक को बेहतर समझते हैं। उनके लिए कर्तव्यों से विमुख, कर्ममार्ग से च्युत कोरे उपदेशक के बरक्स कर्मरत, लोककल्याण व धर्म स्थापना के निमित्त शस्त्र-शास्त्र से समाज की कल्याण साधना करने वाला व्यक्ति श्रद्धा का पात्र है इसलिए राम आचार्य शुक्ल के हृदयस्थल के समीप हैं—"उसके (लोक के) सामने यह फिर अच्छी तरह झलका दिया गया कि संसार में चलते व्यापारों में मग्न, अन्याय के दमन के अर्थ रणक्षेत्रों में अद्भुत पराक्रम दिखाने वाले, अत्याचार पर क्रोध से तिलमिलाने वाले, प्रभूत शक्ति-संपन्न होकर भी क्षमा करने वाले, अपने रूप, गुण और शील से लोक का अनुरंजन करने वाले, मैत्री का निर्वाह करने वाले, प्रजा का पुत्रवत् पालन करने वाले, बड़ों की आज्ञा का आदर करने वाले, संपत्ति में नम्र रहने वाले, विपत्ति में धैर्य रखने वाले, प्रिय अच्छे ही लगते हैं, यह बात नहीं है। वे भक्ति और श्रद्धा के प्रकृत आलंबन हैं, धर्म के दृढ़ प्रतीक हैं।"[2]

भारतीयता के आदिपुरुष हैं मर्यादा पुरुषोत्तम राम। राम भारतीय लोक के संस्कार बन गए हैं—"गोस्वामीजी द्वारा प्रस्तुत नवरसों का राम रसायन ऐसा पुष्टिकर हुआ कि उसके सेवन से हिन्दू जाति विदेशीय मतों के आक्रमणों से भी बहुत कुछ रक्षित रही और अपने जातीय स्वरूप को भी दृढ़ता से पकड़े रही। उसके भगवान जीवन की प्रत्येक स्थिति में-खेलने-कूदने में, हँसने-रोने में, लड़ने-भिड़ने में, नाचने-गाने में, बालकों की क्रीड़ा में, दाम्पत्य प्रेम में, राज्यसंचालन में, आज्ञापालन में, आनन्दोत्सव में, शोक समाज में, सुख-दु:ख में, घर में,सम्पत्ति में, विपत्ति में उसे दिखाई पड़ते हैं। विवाह आदि शुभ अवसरों पर तुलसीरचित राम के मंगल गीत गाए जाते हैं, विमाताओं की कुटिलता के प्रसंग में कैकेयी की कहानी कही जाती है, दु:ख के दिनों में राम का बनवास स्मरण किया जाता है, वीरता के प्रसंग में उनके धनुष की भीषण टंकार सुनाई पड़ती है।

सारांश यह कि सारा हिन्दू जीवन राममय प्रतीत होता है। वेदान्त का परमार्थ तत्व समझने की सामर्थ्य न रखनेवाले साधारण लोगों को भी व्यवहार क्षेत्र में चारों ओर राम ही राम दिखाई देते हैं। इस प्रकार राम के स्वरूप का सामंजस्य हिन्दू हृदय के साथ कर दिया गया है। इस साहचर्य से राम के प्रति जो भाव साधारण जनता में प्रतिष्ठित हो गया है उसका लावण्य उसके सम्पूर्ण जीवन का लावण्य हो गया है।

राम के बिना हिन्दू जीवन नीरस है—फीका है। यही रामरस उसका स्वाद बनाए रहा और बनाए रहेगा। राम ही का मुँह देख हिन्दू जनता का इतना बड़ा भाग अपने धर्म और जाति के घेरे में पड़ा रहा। न उसे तलवार हटा सकी, न धनमान का लोभ, न उपदेशों की तड़क भड़क। जिन राम को जनता जीवन की प्रत्येक स्थिति से देखती आई, उन्हें छोड़ना अपने प्रिय

से प्रिय परिजन को छोड़ने से कम कष्टकर न था।

विदेशी कच्चा रंग एक चढ़ा एक छूटा, पर भीतर जो पक्का रंग था वह बना रहा। हमने चौड़ी मोहरी का पायजामा पहना, 'आदाब अर्ज' किया, पर 'राम राम' न छोड़ा। अब कोट पतलून पहनकर बाहर 'डेम नान्सेंस' कहते हैं पर घर में आते ही फिर वही 'राम राम'। शीरी फरहाद और हातिमताई के किस्से के सामने कर्ण, युधिष्ठिर, नल दमयन्ती सबको भूल गए थे, पर रामचर्चा करते रहे। कहना न होगा कि इस एक को न छोड़ने से एक प्रकार से सब कुछ बना रहा; क्योंकि इसी एक नाम में हिन्दू जीवन का सारा सार खींचकर रख दिया गया था। इसी एक नाम के अवलम्ब से हिन्दू जाति के लिए अपने प्राचीन स्वरूप, अपने प्राचीन गौरव के स्मरण की सम्भावना बनी रही। रामनामामृत पान करके हिन्दू जाति अमर हो गई।"[3]

शुक्ल जी यह भी रेखांकित करते हैं कि राम अनन्य शक्तियों के स्वामी होकर भी लोक पर अपना अधिकार नहीं जमाते,वह निरंकुश सत्ता का प्रतिपक्ष रचते हैं शक्ति उन्हें अहंकारी नहीं बनाता बरक्स विनम्र और शील से युक्त करता है। वे अपने शक्तियों और अधिकारों को अधिकार नहीं बल्कि दायित्व समझते हैं। इसीलिए ऐतिहासिक और दार्शनिक दोनों रूपों में, जितना लोक उनके वश में है, उतना ही वे लोक के भी वशीभूत हैं- "तुलसी के राम स्वेच्छाचारी शासक नहीं; वे लोक के वशीभूत हैं, क्योंकि लोक भी वास्तव में उन्हीं का व्यक्त विस्तार है।"[4]

आचार्य शुक्ल की राम-संबंधी भावना एकांगी नहीं है बल्कि वह दर्शन एवं जीवन-व्यवहार दोनों को लेकर एक पुष्ट एवं गंभीर समझ रखती है। दार्शनिक स्तर पर जहां आचार्य शुक्ल राम की सर्वव्याप्ति मानते हैं— "पारमार्थिक दृष्टि से तो सारा जगत राममय है, पर व्यावहारिक दृष्टि से उसके राम और रावण दो पक्ष हैं। अपने स्वरूप के प्रकाश के लिए मानो राम ने रावण का असत् रूप खड़ा किया।"[5]

वहीं जीवन-व्यवहार में राम की उपस्थिति एक शक्तिशाली किंतु सुधीर योद्धा की है जो लोकरक्षण के साधु उद्देश्य के लिए शक्तिप्रयोग से कतराते नहीं हैं शुक्ल जी के अनुसार—"अनंत शक्ति के साथ धीरता, गंभीरता और कोमलता 'राम' का प्रधान लक्षण है। यही उनका रामत्व है। अपनी शक्ति की स्वानुभूति ही उस उत्साह का मूल है जिससे बड़े-बड़े दु:साध्य कर्म होते हैं।"[6]

राम के चरित्र का सबसे उज्ज्वल पक्ष आचार्य शुक्ल के अनुसार "भक्तों को सबसे अधिक वश में करने वाला राम का गुण है- शरणागत की रक्षा।"[7] जो की भारतीय परम्परा और संस्कार भी है।

सल्तनत काल या मुग़ल काल में जब शक्ति-सत्ता हथियाने के लिए रिश्तों का गला घोंटा गया,तार-तार किया गया,उस समयकाल में रामचरितमानस में जो भरत का राम के प्रति या लक्ष्मण का राम के प्रति स्नेह है वह समाज के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करता है और इस आदर्श को आचार्य शुक्ल अपने समय के समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं— "राम की सुशीलता पर भरत को इतना अविचल विश्वास है। वह सुशीलता धन्य है जिस पर इतना विश्वास टिक सके और वह विश्वास धन्य है जो सुशीलता पर इस अविचल भाव से जमा रहे।"[8]

"चित्रकूट में राम और भरत का जो मिलन हुआ है, वह शील और शील का,

मध्यकालीन भारत या अंग्रेजों के समय के भारत में जहाँ राज्य के संसाधन राजा के सुख, स्वार्थ, लालच और महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति मात्र के लिए थे। आम जनता भूख से,अकाल से असमय मृत्यु को प्राप्त हो रही थी पीड़ा और दर्द में थी लेकिन इससे राजा का कोई सरोकार नहीं था। ब्रिटिश काल में तो इन स्थितियों के ज़िम्मेदार ही शासक वर्ग था।'ऐसे शासक तुलसी के वाणी में—'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी' है। आचार्य शुक्ल तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों से तटस्थ होकर नहीं लिख रहे थे और न ही तुलसी। दोनों शासक वर्ग के चरित्र से भलीभाँति वाक़िफ़ थे और इसका प्रतिपक्ष रच रहे थे व इनका आलंबन बने थे राम और राम की कथा।

स्नेह और स्नेह का, नीति और नीति का मिलन है। इस मिलन से संघटित उत्कर्ष की दिव्या प्रभा देखने योग्य है। यह झांकी अपूर्व है! 'भायप भगति' से भरे भरत नंगे पांव राम को मनाने जा रहे हैं। मार्ग में जहां सुनते हैं कि यहां पर राम-लक्ष्मण ने विश्राम किया था, उस स्थल को देख आंखों में आंसू लेते हैं—

राम बास थल बिटप बिलोके।
उर अनुराग रहत नहिं रोके।

मार्ग में लोगों से पूछते जाते हैं कि राम किस वन में है। जो कहता है कि हम उन्हें सकुशल देखे आते हैं, वह उन्हें राम-लक्ष्मण के समान ही प्यारा लगता है।"[9]

राम धैर्यवान हैं करुणामयी हैं वह धर्म की स्थापना के लिए युद्धरत हैं युद्ध भी व्यक्ति से नहीं है अन्याय से है असत्य से है रावण से भी नहीं रावणत्व से है फिर माता कैकेयी तो माता हैं राम का शील यहाँ दर्शनीय है जब कैकेयी को वनगमन के लिए दोषी नहीं ठहराते, कलंकित नहीं करते बल्कि सबसे पहले उन्हीं से मिलने जाते हैं, सिर नवाने जाते हैं। आचार्य शुक्ल रेखांकित करते हैं- "सब माताओं से पहले राम कैकई से प्रेमपूर्वक मिले। क्यों? क्या उसे चिढ़ाने के लिए? कदापि नहीं। कैकेयी से प्रेमपूर्वक मिलने की सबसे अधिक आवश्यकता थी। अपना महत्व या सहिष्णुता दिखाने के लिए नहीं, उसके परितोष के लिए। अपनी करनी पर कैकई को जो ग्लानि थी, वह राम ही के दूर किए हो सकती थी, और किसी के किये नहीं। उन्होंने माताओं से मिलते समय स्पष्ट कहा था-

राम के बिना हिन्दू जीवन नीरस है—फीका है। यही रामरस उसका स्वाद बनाए रहा और बनाए रहेगा। राम ही का मुँह देख हिन्दू जनता का इतना बड़ा भाग अपने धर्म और जाति के घेरे में पड़ा रहा। न उसे तलवार हटा सकी, न धनमान का लोभ, न उपदेशों की तड़क भड़क। जिन राम को जनता जीवन की प्रत्येक स्थिति से देखती आई, उन्हें छोड़ना अपने प्रिय से प्रिय परिजन को छोड़ने से कम कष्टकर न था। विदेशी कच्चा रंग एक चढ़ा एक छूटा, पर भीतर जो पक्का रंग था वह बना रहा।

अंब! ईश आधीन जग काहु न देइय दोषु।"[10]

मध्यकालीन भारत में जब स्त्रियों को हरम और मात्र उपभोग की वस्तु समझा जाता था उस वक्त तुलसी ने राम और जनकपुत्री सीता के प्रेम का आदर्श समाज के समक्ष रखा वह भारतीय समाज के लिए दाम्पत्य प्रेम,सम्मान,मर्यादा का प्रतिमान और संस्कार बन गया। आचार्य शुक्ल का मानना था कि प्रेम जीवन के विस्तृत कर्मक्षेत्र में साहचर्य से विकसित होता है। शुक्ल जी के अनुसार—"उनका प्रेम जीवन-यात्रा के मार्ग में माधुर्य फैलाने वाला है; उससे अलग किसी कोने में चौकड़ी या आहें भरानेवाला नहीं; उसके प्रभाव से वनचर्य्या में एक अद्भुत रमणीयता आ गई है। सारे कंटीले पथ प्रसूनमय हो गए हैं, सम्पूर्ण कर्म-क्षेत्र एक मधुर ज्योति से जगमगा उठा है। कोमलांगी सीता अपने प्रिय पति की विशाल भुजाओं और कंधे के ऊपर निकली हुई धनुष की वक्रकोटि पर मुग्ध निविड़ और निर्जन काननों में निश्शंक विचर रही हैं। खर-दूषण की राक्षसी सेना कोलाहल करती आ रही है। राम कुछ मुस्कुराकर एक बार प्रेम भरी दृष्टि से सीता की ओर देखते हैं, फिर वीरदर्प से राक्षसों की ओर दृष्टि फेरकर अपना धनुष चढ़ाते हैं। उस वीरदर्प में कितनी उमंग, कितना उत्साह, कितना माधुर्य्य रहा होगा। सीता-हरण होने पर राम का वियोग जो सामने आता है वह भी चारपाई पर करवटें बदलनेवाला नहीं है, समुद्र पार कराकर पृथ्वी का भार उतारने वाला है।"[11]

"वह राम की निर्जन वनों और पहाड़ों में घुमाने वाला, सेना एकत्र कराने वाला, पृथ्वी का भार उतारने वाला वियोग है।"[12]

मध्यकालीन भारत या अंग्रेजों के समय के भारत में जहाँ राज्य के संसाधन राजा के सुख, स्वार्थ, लालच और महत्वकांक्षाओं की पूर्ति मात्र के लिए थे। आम जनता भूख से,अकाल से असमय मृत्यु को प्राप्त हो रही थी पीड़ा और दर्द में थी लेकिन इससे राजा का कोई सरोकार नहीं था। ब्रिटिश काल में तो इन स्थितियों के ज़िम्मेदार ही शासक वर्ग था।'ऐसे शासक तुलसी के वाणी में—'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी' है। आचार्य शुक्ल तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों से तटस्थ होकर नहीं लिख रहे थे और न ही तुलसी। दोनों शासक वर्ग के चरित्र से भलीभाँति वाक़िफ़ थे और इसका प्रतिपक्ष रच रहे थे व इनका आलंबन बने थे राम और राम की कथा । तुलसी और उनके रामराज्य की कल्पना के माध्यम से आचार्य शुक्ल राजा के क्या कर्त्तव्य हैं? राजा कैसा होना चाहिए? राज्य का शासन किस तरीक़े से होना चाहिए? के संदर्भ में लिखते हैं—"रामराज्य में—

बयरु न करु काहू सन कोई।
राम प्रताप बिसमता खोई।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहिं स्वधर्म निरत स्रुति रीती।

लोग जो बैर छोड़कर परस्पर प्रीति करने लगे, वह क्या राम के 'बाहुबल के प्रताप से',दंडभय से? दंडभय से लोग इतना ही कर सकते हैं कि किसी को मारें-पीटें नहीं; यह नहीं कि किसी से मन में भी बैर न रखें, सबसे प्रीति रखें। सुशीलता की पराकाष्ठा राम के रूप में हृदयाकर्षिणी शक्ति होकर उनके बीच प्रतिष्ठित थी। उस शक्ति के सम्मुख प्रजा अपने हृदय को सुंदर वृत्तियों को कर-स्वरूप समर्पित

तुलसी और उनके रामराज्य की कल्पना के माध्यम से आचार्य शुक्ल राजा के क्या कर्त्तव्य हैं? राजा कैसा होना चाहिए? राज्य का शासन किस तरीक़े से होना चाहिए? के संदर्भ में लिखते हैं—"रामराज्य में लोग जो बैर छोड़कर परस्पर प्रीति करने लगे, वह क्या राम के 'बाहुबल के प्रताप से',दंडभय से? दंडभय से लोग इतना ही कर सकते हैं कि किसी को मारें- पीटें नहीं; यह नहीं कि किसी से मन में भी बैर न रखें, सबसे प्रीति रखें। सुशीलता की पराकाष्ठा राम के रूप में हृदयाकर्षिणी शक्ति होकर उनके बीच प्रतिष्ठित थे।

करती थी। केवल अर्जित वित्त के प्रदान द्वारा अर्थशक्ति खड़ी करने से समाज को धारण करने वाली पूर्णशक्ति का विकास नहीं हो सकता। भारतीय सभ्यता के बीच राजा धर्मशक्तिस्वरूप है, पारस और बाबुल के बादशाहों के समान केवल धनबल और बाहुबल की पराकाष्ठा मात्रा नहीं।

यहां राजा सेवक और सेना के होते हुए भी शरीर से अपने धर्म का पालन करता हुआ दिखाई पड़ता है। यदि प्रजा की पुकार संयोग से उसके कान में पड़ती है, तो वह आप ही रक्षा के लिए दौड़ता है; ज्ञानी महात्माओं को सामने देख सिंहासन छोड़कर खड़ा हो जाता है; प्रतिज्ञा के पालन के लिए शरीर पर अनेक कष्ट झेलता है; स्वदेश की रक्षा के लिए रणक्षेत्र में सबसे आगे दिखाई पड़ता है; प्रजा के सुख-दु:ख में साथी होता है; ईश्वरां श माने जाने पर भी मनुष्यांश नहीं छोड़ता है। वह प्रजा के जीवन से दूर बैठा हुआ उसमें किसी प्रकार का योग न देने वाला खिलौना या पुतला नहीं है। प्रजा अपने सब प्रकार के उच्च भावों का त्याग का, शील का, पराक्रम का, सहिष्णुता का, क्षमा का प्रतिबिंब उसमें देखती है।"[13] हमारे संविधान निर्माताओं,स्वतंत्रतासेनानियों ने स्वतंत्र भारत के लोककल्याणकारी राज्य के रूप में आधारशिला इन्हीं मूल्यों, आदर्शो, नीति निर्देशक तत्वों को सम्मिलित करते हुए रखी थी।

आचार्य शुक्ल रामचरितमानस के बालि प्रसंग के संदर्भ में अपने आदर्श राम के चरित्र पर लगने वाले दोष के संबंध में स्पष्टीकरण देते हुए लिखते हैं—"राम के चरित की इस उज्जवलता के बीच एक धब्बा भी दिखाई देता है, वह है बालि को छिपकर मारना।.... पर हमारे देखने में तो यह धब्बा ही संपूर्ण रामचरित को उच्च आदर्श के अनुरूप एक कल्पना मात्र समझे जाने से बचाता है। यदि यह एक धब्बा न होता तो राम की कोई बात मनुष्य की सी न लगती और वे मनुष्यों के बीच अवतार लेकर भी मनुष्यों के काम के न होते।.... वे ईश्वरता दिखाने नहीं आए थे, मनुष्यता दिखाने आए थे।"[14] ईश्वर भी अपनी सृष्टि को संतुलित करने,धर्म की स्थापना के निहितार्थ मनुष्य रूप में जन्म लेते हैं।

कहना न होगा कि आचार्य शुक्ल के चारित्रिक आदर्श लोकमंगलवादी, लोकरक्षक मर्यादापुरुषोत्तम राम हैं। उनकी आलोचना राम के उज्ज्वल चरित्र और तुलसी के काव्य में गोता लगाते हुए राम के चरित्र की तरह गंभीर, मर्यादित, सामर्थ्य और सौंदर्य को धारण करती है।

संदर्भ-

1. लोकधर्म और मर्यादावाद:आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,तुलसी, संपादक—उदयभानु सिंह, पृष्ठ-165
2. लोकधर्म और मर्यादावाद: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, तुलसी, संपादक—उदयभानु सिंह, पृष्ठ-166-67
3. गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 37-38
4. लोकधर्म और मर्यादावाद: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, तुलसी, संपादक—उदयभानु सिंह, पृष्ठ-171
5. वही; पृष्ठ-165
6. त्रिवेणी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ-92
7. वही; 94
8. वही; 82
9. गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ-75
10. वही; पृष्ठ-75
11. लोभ और प्रीति, चिंतामणि, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 57)
12. त्रिवेणी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ-79
13. गोस्वामी तुलसीदास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ-42-43
14. त्रिवेणी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ-94-95

———•••———

लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी की असिस्टेंट प्रोफेसर हैं।

विदेशी भाषाओं में प्रचलित रामकथाएं

— दीपेंद्र कुमार

भारतीय प्रायद्वीप सहित विश्व के अनेक देशों में मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्रीराम की महिमा विभिन्न भाषाओं में व्याप्त है। आज विश्वभर के अनेक देशों में सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पटल में हर देश की अपनी-अपनी रामायण परंपरागत हैं, जिनमें अलग-अलग संस्कृति, लोकजीवन, कहानी, किवदंतियों में रामकथा विविध स्वरूपों में मिलती है। महाकाव्य रामायण के विश्वभर में कई अन्य लोकप्रिय संस्करण भी प्रचलित है. जो कि विभिन्न देशों में वहां की स्थानीय भाषा में लिखी व प्रसारित की गई हैं। रामायण और भगवान श्रीराम की कथा दुनियाभर में प्रसिद्ध है, इन देशों में आज भी प्रभु राम को बड़ी श्रद्धा से याद किया जाता है। रामायण, रामलीला का मंचन और विभिन्न स्वरूपों में रामकथा पढ़ी, लिखी और गायी जाती है। यहाँ वैश्विक पटल प्रचलित कुछ रामकथाओं का विवरण दिया जा रहा है।

विदेशों में भी तिब्बती रामायण, पूर्वी तुर्किस्तान की खोतानी रामायण, इंडोनेशिया की ककबिन रामायण, जावा का सेरतराम, सैरीराम, रामकेलिंग, पातानी रामकथा, इण्डोचायना की रामकेर्ति (रामकीर्ति), खमैर रामायण, बर्मा (म्यांम्मार) की यूतोकी रामयागन, थाईलैंड की रामकियेन आदि रामचरित्र का गुणगान करती हैं। इसके अलावा विद्वानों का मानना है कि ग्रीस के कवि होमर का प्राचीन काव्य इलियड, रोम के कवि नोनस की कृति डायोनीशिया तथा रामायण की कथा में अद्भुत समानता है। विश्व साहित्य में इतने विशाल एवं विस्तृत रूप से विभिन्न देशों में विभिन्न कवियों/लेखकों द्वारा राम के अलावा किसी और चरित्र का इतनी श्रद्धा से वर्णन नहीं किया गया है। वर्तमान में विदेशों में सर्वाधिक लोकप्रिय व प्रचलित रामकथाएँ—नेपाल में भानुभक्तकृत रामायण, सुन्दरानन्द रामायण, आदर्श राघव, कंबोडिया में रामकर, तिब्बत में तिब्बती रामायण, पूर्वी तुर्किस्तान में खोतानी रामायण, इंडोनेशिया में ककबिनरामायण, जावा में सेरतराम, सैरीराम, रामकेलिंग, पातानी रामकथा, इण्डोचायना में रामकेर्ति (रामकीर्ति), खमैर रामायण, बर्मा व म्यांम्मार में यूतोकी रामयागन तथा थाईलैंड-रामकियेन हैं। जिनमें विषय में संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत है—

तिब्बती रामायण:

तिब्बती भाषा की रामायण के संदर्भ में माना जाता है कि तिब्बत के लोग प्राचीन काल से वाल्मीकि रामायण की मुख्यकथा से परिचित थे। यहाँ तिब्बती रामायण की छह प्रतियाँ तुन-हुआंग

नामक स्थल से प्राप्त हुई हैं। उत्तर-पश्चिम चीन स्थित तुन-हुआंग पर 787 से 848 ई. तक तिब्बतियों का आधिपत्य था। अनुमान है कि उसी अवधि में इन गैर-बौद्ध परंपरावादी रामकथाओं का सृजन व निर्माण हुआ। तिब्बत की सबसे प्रामाणिक रामकथा किंरस-पुंस-पा की 'काव्यदर्श' (तिब्बती) है। किंरस-पुंस-पा की रामायण, रामकथा का आरंभ शिव को प्रसन्न करने के लिए रावण द्वारा दसों सिर अर्पित करने के बाद उसकी दश गर्दनें शेष रह जाती हैं। इसी कारण उसे दशग्रीव कहा जाता है से होता है। यहाँ पर सीता रावण की पुत्री कही जाती है जिसका विवाह राम से होता है और अंत सीता सहित राम पुष्पक विमान से अयोध्या लौट गए जहाँ भरत ने उनका भव्य स्वागत किया।

चीन में रामकथा:

चीनी साहित्य में रामकथा पर आधारित कोई मौलिक रचना नहीं है। बौद्ध धर्म ग्रंथ त्रिपिटक के चीनी संस्करण में रामायण से संबद्ध दो रचनाएँ मिलती हैं। 'अनामकं जातकम' और 'दशरथ कथानम'। 'अनामकं जातकम' का कांग-सेंग-हुई द्वारा चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था जिसका मूल भारतीय पाठ अप्राप्य है। चीनी अनुवाद लिएऊ-तुत्सी-किंग नामक पुस्तक में सुरक्षित है। 'अनामकं जातकम' में किसी पात्र का नामोल्लेख नहीं हुआ है, किंतु कथा के रचनात्मक स्वरूप से ज्ञात होता है कि यह रामायण पर आधारित है, क्योंकि इसमें राम वनगमन, सीताहरण, सुग्रीव मैत्री, सेतुबंध, लंका विजय आदि प्रमुख घटनाओं का स्पष्ट संकेत मिलता है। नायिका विहीन 'अनामकं जातकम', जानकीहरण, वालि वध, लंका दहन, सेतुबंध, रावण वध आदि प्रमुख घटनाओं के अभाव के बावजूद वाल्मीकि रामायण के निकट जान पड़ता है। अहिंसा की प्रमुखता के कारण चीनी रामकथाओं पर बौद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। 'दशरथ कथानम' के अनुसार राजा दशरथ जंबू

द्वीप के सम्राट बनने से कथा आरंभ होती है और कथा का अंत दशरथ के पुत्र लोमो के राजा बनने से होता है और लोमो के राजा बनते ही देश धन-धान्य से परिपूर्ण हो गया। कोई किसी रोग से पीड़ित नहीं रहा। जंबू द्वीप के लोगों की सुख-समृद्धि पहले से दस गुनी हो गई।

खोतानी रामायण:

एशिया के पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित तुर्किस्तान के पूर्वी भाग को खोतान कहा जाता है जिसकी भाषा खोतानी है। एच.डब्लू. बेली ने पेरिस पांडुलिपि संग्रहालय से खोतानी रामायण को खोजकर प्रकाश में लाया। उनकी गणना के अनुसार इसकी तिथि नौवीं शताब्दी है। खोतानी रामायण अनेक स्थलों पर तिब्बती रामायण के समान है, किंतु इसमें अनेक ऐसे वृत्तांत हैं जो तिब्बती रामायण में नहीं हैं। खोतानी रामायण की शुरुआत राजा दशरथ के प्रतापी पुत्र सहस्रबाहु वन में शिकार खेलने गए जहाँ से हुई और अंत लोकापवाद के कारण सीता धरती में प्रवेश कर गई। अंत में शाक्य मुनि कहते हैं कि इस कथा का नायक राम स्वयं वे ही थे।

मंगोलिया में रामकथा:

चीन के उत्तर-पश्चिम में स्थित मंगोलिया के लोगों को रामकथा की विस्तृत जानकारी है। वहाँ के लामाओं के निवास स्थल से वानर-पूजा की अनेक पुस्तकें और प्रतिमाएँ मिली हैं। वानर पूजा का संबंध राम के प्रिय पात्र हनुमान से स्थापित किया गया है। मंगोलिया में रामकथा से संबद्ध काष्ठचित्र और पांडुलिपियाँ भी उपलब्ध हुई हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि बौद्ध साहित्य के साथ संस्कृत साहित्य की भी बहुत सारी रचनाएँ वहाँ पहुँचीं। इन्हीं रचनाओं के साथ रामकथा भी वहाँ पहुँच गई। दम्दिन सुरेन ने मंगोलियाई भाषा में लिखित चार रामकथाओं की खोज की है।

इनमें राजा जीवक की कथा विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसकी पांडुलिपि लेलिनगार्द में सुरक्षित है। जीवक जातक की कथा का अठारहवीं शताब्दी में तिब्बती से मंगोलियाई भाषा में अनुवाद हुआ था। इसके तिब्बती मूल ग्रंथ की कोई जानकारी नहीं है। आठ अध्यायों में विभक्त जीवक जातक पर बौद्ध प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। इसमें सर्वप्रथम गुरु तथा बोधिसत्त्व मंजुश्री की प्रार्थना की गई है और अंत राम दानव राज को पराजित कर अपनी पत्नी के साथ देश लौट गए, जहाँ वे सुख से जीवन व्यतीत करने लगे।

जापान में रामकथा:

जापान के एक लोकप्रिय कथा संग्रह 'होबुत्सुशू' में संक्षिप्त रामकथा संकलित है। इसकी रचना तैरानो यसुयोरी ने बारहवीं शताब्दी में की थी। रचनाकार ने कथा के अंत में घोषणा की है कि इस कथा का स्रोत चीनी भाषा का ग्रंथ 'छह परिमिता सूत्र' है। यह कथा वस्तुतः चीनी भाषा के 'अनामकंजातकम' पर आधारित है, किंतु इन दोनों में अनेक अंतर भी हैं परंतु पूरी कथा लोक-जीवन में रची-बसी है।

श्रीलंका में रामकथा:

श्रीलंका में भारतीय महाकाव्यों की परंपरा पर आधारित 'जानकीहरण' के रचनाकार कुमार दास के संबंध में कहा जाता है कि वे महाकवि कालिदास के अनन्य मित्र थे। कुमार दास (512-21 ई.) लंका के राजा थे। इतिहास में इनकी पहचान कुमार धातुसेन के रूप में की है। कालिदास के 'रघुवंश' की परंपरा में विरचित 'जानकी हरण' संस्कृत का एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। इसके अनेक श्लोक काव्य शास्त्र के परवर्ती ग्रंथों से उद्धृत किए गए हैं। इसका कथ्य वाल्मीकि रामायण पर आधारित है। सिंहली साहित्य में रामकथा पर आधारित कोई स्वतंत्र रचना नहीं है।

श्रीलंका के पर्वतीय क्षेत्र में कोहंवा देवता की पूजा होती है। इस अवसर पर मलेराज कथाव-पुष्पराज की कथा कहने का प्रचलन है। इस अनुष्ठान का आरंभ श्रीलंका के सिंहली सम्राट पांडुवासव देव के समय ईसा के पाँच सौ वर्ष पूर्व हुआ था। मलेराज की कथा के अनुसार राम विष्णु के अवतार हैं। इसके अतिरिक्त कंपूचिया की रामकेर्ति या रिआमकेर रामायण, लाओस फ्रलक-फ्रलाम 'रामजातक', मलेशिया की हिकायत सेरीराम, थाईलैंड की रामकियेन, नेपाल में भानुभक्त कृत रामायण, फारसीभाषा में मसीही रामायण, शेख साद -मसीह की 'दास्ताने राम व सीता' और फिलीपींस की मारनव भाषा में महालादिया लाबन आदि भी प्रचलित रामकथाएँ हैं।

एशियाई देशों की रामकथाएँ में रचनाकारों की मनोभाषिक असमानताएं:

श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है क्योंकि राम में कहीं भी मर्यादा

का उल्लंघन हुआ नहीं मिलता। संपूर्ण भारतीय समाज में राम का आदर्श रूप उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम के सभी भागों में स्वीकार किया गया है। भारत की हर एक भाषा की अपनी रामकथाएँ हैं। इसके उपरांत भारत के बाहर के देशों, फिलीपाइंस, थाईलैंड, लाओस, मंगोलिया, साईबेरिया, मलेशिया, बर्मा अब म्यांमार, स्याम, इंडोनेशिया, जावा, सुमात्रा, कम्बोडिया, चीन, जापान, श्रीलंका, वियतनाम आदि में भी रामकथा प्रचलित है। बौद्ध, जैन और इस्लामी रामायण भी हैं। मैक्समूलर, जोंस, कीथ, ग्रीफिथ, बारान्निकोव जैसे विद्वान राम के त्यागमय, सत्यनिष्ठ जीवन से आकर्षित थे। किसी भी काल्पनिक पात्र का अन्य देशों, अन्य धर्मों में हजारों वर्षों से ऐसे प्रभाव का टिका रहना संभव नहीं। भारतीय मानस को तो राम कभी काल्पनिक लगे ही नहीं। वे घर-घर में इष्ट की तरह पूजे जाते हैं. राम ने अपने युग में एकता का महान कार्य किया था। आर्य, निषाद, भील, वानर, राक्षस आदि भिन्न संस्कृतियों के बीच सुमेल साधने का काम राम ने किया। रावण की मृत्यु के बाद राम के मन में रावण के प्रति कोई द्वेष नहीं।

श्रीरामचरितमानस के रामकथा महाकाव्य को भारत से बाहर अन्य देशों तक पहुंचाने का श्रेय बौद्ध धर्म और दक्षिण भारत के हिंदू शासकों को जाता है। दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में प्रसारित रामकथाएं तुलसी जी द्वारा रचित श्रीरामचरितमानस महाकाव्य की कथा से भिन्न हैं और वहां प्रसारित संस्करण भी अलग हैं। कुछ देशों में रचनाकारों ने अपनी मनोभाषा पर केंद्रित नई रामकथाएँ लिखी हैं तो कुछ लेखकों ने अपनी मनोभाषिकता के आधार पर पात्रों और जगहों के नाम तक बदले हैं। इतना ही नहीं कहीं कहीं पर लेखकों ने तो पूरी की पूरी रामकथा की कहानी ही बदलाव करके प्रस्तुत कर दिया है। लेखकों द्वारा श्रीरामचरितमानस काव्य को आधार में रखकर किस प्रकार से विभिन्न देशों में विभिन्न रामकथाओं के अलग-अलग संस्करण लिखे। खास बात यह है कि इन संस्करणों में से बहुत से ऐसे संस्करण भी हैं जिनमें इस्लाम का प्रभाव भी दिखता है, क्योंकि कुछ ऐसे देश भी है जिनमें बाद में जाकर इस्लामिक राजाओं ने शासन किया और उस विशिष्ठ देश की संस्कृति और साहित्य में बहुत सी तब्दीलियां आई।

सेरीराम रामायण सहित कुछ रामायणों में एक प्रसंग मिलता है कि रावण ने विभीषण को समुद्र में फिंकवा दिया था। वह एक मगर की पीठ पर चढ़ गया, बाद में हनुमान ने उसे बचाया और राम से मिलवाया। विभीषण के साथ रावण का एक भाई इंद्रजीत भी था और एक बेटा चैत्रकुमार भी राम की शरण में आ गया था। राम ने विभीषण को युद्ध के पहले ही लंका का अगला राजा घोषित कर दिया था। रंगनाथ रामायण में उल्लेख मिलता है कि विभीषण के राज्याभिषेक के लिए हनुमान ने एक बालूरेत की लंका बनाई थी। जिसे हनुमत्लंका (सिकतोद्भव लंका) के नाम से जाना गया।

दक्षिण-पूर्व एशिया की रामकथाओं में सीता त्याग की घटना के साथ एक नया आयाम जुड़ गया है, अतुल्य के आग्रह पर सीता द्वारा रावण का चित्र बनाना। अतुल्य का उस चित्र में प्रवेश कर जाना। सीता द्वारा उस चित्र मिट नहीं पाना और उसे पलँग के नीचे छिपा देना। राम का पलँग पर लेटते ही तीव्र ज्वर से पीड़ित हो जाना। इस यथार्थ से अवगत होने पर वे लक्ष्मण से वन में ले जाकर सीता का वध करने का आदेश देते हैं और मृत सीता का कलेजा लाने के लिए कहते हैं। वन पहुँचकर लक्ष्मण जब सीता पर तलवार प्रहार करते हैं, तब वह पुष्पहार बन जाता है। लक्ष्मण से सीता त्याग के यथार्थ को जानकर राम उनके पास गए। उन्होंने सीता से क्षमा-याचना की, किंतु वे द्रवित नहीं हुई। उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को राम के साथ जाने दिया और स्वयं पृथ्वी में प्रवेश कर गई।

हनुमान ने पाताल जाकर सीता से लौटने का अनुरोध किया। उन्होंने उस आग्रह को भी ठुकरा दिया। रामकेर्ति की खंडित प्रति की कथा यहीं पर आकर रुक जाती है। 1238 ई. में स्वतंत्र थाई राष्ट्र की स्थापना हुई थी परंतु पहले से ही इस क्षेत्र में रामायणीय संस्कृति विकसित हो गई थी। थाईवासी परंपरागत रूप से रामकथा से परिचित थे। उस समय उसका नाम स्याम था। तेरहवीं शताब्दी में राम वहाँ की जनता के नायक के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे, किंतु रामकथा पर आधारित सुविकसित साहित्य अठारहवीं शताब्दी में ही उपलब्ध होती है। श्रीरामचरितमानस के कुछ अन्य देशों में प्रसारित ऐसे संस्करण हैं, जो श्रीराम की कथा से अंतर बनाए हुए हैं, जिनमें से कुछ निम्नप्रकार से हैं—

काकविन रामायण:

इंडोनेशिया देश में रामायण का एक ऐसा संस्करण प्रचलित है जो शायद हमारे ऋषि वाल्मीकि जितना ही सुंदर और मधुर है जिसे **'काकविन रामायण'** कहा जाता है। **'काकविन रामायण'** का अर्थ है- **वह रामायण जो इंडोनेशिया, बाली और सुमात्रा देशों की प्राचीन भाषा जावनी और संस्कृत भाषा के मिश्रण के माध्यम से काव्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।** यह रामायण ऋषि वाल्मीकि जी की रामायण से नहीं बल्कि सातवीं शताब्दी में लिखी गई ओवी भट्टी की कविता भट्टीकाव्य से प्रेरित है, जिसमे रावण के वध का वर्णन किया गया है। इस रामायण का पहला भाग तो सामान्य रामायण के अनुरूप है, लेकिन इसके दूसरे भाग को बहुत से भारतीय विद्वानों द्वारा समझा नहीं जा सका है। इंडोनेशिया में रामायण को पुस्तक द्वारा कम पढ़ा जाता है, इसके अतिरिक्त रामायण को थियेटर में नाटक, कविताएं, भजन एवं गाने, विभिन्न प्रकार के नाच और कठपुतली के द्वारा जन-जन तक पहुंचाया एवं दिखाया जाता है।

वायंग कठपुतली शो इंडोनेशिया का सबसे पुराना कठपुतली खेल शो है जिसमें रामायण की कहानियां होती है। इंडोनेशिया के एक शहर 'योग्या' को राम की नगरी अयोध्या के रूप में मान्यता प्राप्त है। इंडोनेशिया के सुमात्रा द्वीप का नामकरण सुमित्रा के नाम पर हुआ। इंडोनेशिया के जावा शहर की एक नदी का नाम सेरयू है। यहां की रामकथा 'ककनिन' या 'काकावीन रामायण' के नाम से सुप्रसिद्ध है, जिसके रचयिता कवि योगेश्वर हैं। यानी इंडोनेशिया के लिए महर्षि वाल्मीकि कवि 'योगेश्वर' हैं। इंडोनेशिया की रामायण 26 अध्यायों का महाकाव्य है। इस्लामिक देश इंडोनेशिया की संस्कृति पर रामायण की गहरी छाप देखकर हर कोई आश्चर्यचकित रह जाता है। सबके मन में यही विचार आता है कि आखिर क्या कारण रहे होंगे कि इंडोनेशिया पर हिन्दू संस्कृति का इतनी अधिक प्रभाव दिखायी देता है।

इंडोनेशिया में अधिकतर मुस्लमानों का निवास होने पर भी उनकी संस्कृति पर रामकथा की गहरी छाप है। रामकथा पर आधारित जावा की प्राचीनतम कृति 'रामायण काकावीन' जो कावी भाषा में है। यह जावा की प्राचीन शास्त्रीय भाषा है। काकावीन का अर्थ महाकाव्य है योगीश्वर द्वारा रचित यह नौवीं शताब्दी की रचना है। रामायण काकावीन का स्थान सर्वोपरि है। यह छब्बीस अध्यायों में विभक्त एक विशाल ग्रंथ है, जिसमें महाराज दशरथ को विश्वरंजन की संज्ञा से विभूषित किया गया है। इस रचना का आरंभ रामजन्म से होता है। कावी भाषा में कई महाकाव्यों का सृजन हुआ है- 'उत्तरकांड' गद्य, चरित रामायण अथवा कवि जानकी, बाली द्वीप व परवर्ती रचनाओं में 'सेरतकांड', 'रामकेलिंग' और 'सेरी राम' का नाम

उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त ग्यारहवीं शताब्दी की रचना—'सुमनसांतक' में इंदुमती का जन्म, अज का विवाह और दशरथ की जन्मकथा का वर्णन हुआ है।

14वीं शताब्दी की रचना अर्जुन विजय की कथावस्तु का आधार अर्जुन सहस्रबाहु द्वारा रावण की पराजय है। महाकवि रामकथा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं-राम चरित्र जीवन की संपूर्णता का प्रतीक है। राम के महान आदर्श का अनुकरण जनजीवन में हो, इसी उद्देश्य से इस महाकाव्य की रचना की गई है। यह कथा संसार की महानतम पवित्र कथाओं में एक है। रचना के अंत में महाकवि योगीश्वर उत्तम विचारवाले सभी विद्वानों से क्षमा याचना करते हैं। इंडोनेशिया की लोक परंपरा और यहां की संस्कृति में रामायण की गहरी छाप है। यहां जावा की प्राचीनतम कृति में रामायण को 'काकविन रामायण' कहा जाता है, जिसमें पारंपरिक संस्कृत को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है। इंडोनेशिया में काकविन का अर्थ महाकाव्य है, यहां की प्राचीन शास्त्रीय भाषा जावा में रचित महाकाव्यों में काकाविन रामायण की जगह सर्वोपरि है, इस ग्रंथ में छब्बीस अध्याय हैं जिसमें राम के जन्म से लेकर लंका विजय, उनके अयोध्या लौटने और राज्याभिषेक तक सम्पूर्ण वर्णन मिलता है।

इंडोनेशिया में 1973 में अंतर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन का आयोजन किया गया था। यहां बड़ी संख्या में संरक्षित पांडुलिपियां इसकी लोकप्रियता को प्रमाणित करती हैं। अंगद के पिता बाली के नाम पर यहां एक द्वीप का नाम बाली है। केकक और योग्यकर्ता नाम के नृत्य के द्वारा भी रामायण की कहानियों को दर्शकों तक पहुंचाया जाता है। इस रामायण में मां सीता का नाम बदलकर सिंटा कर दिया है, बाकी सभी किरदार और व्यक्तियों के नाम समान है। हालांकि एक महत्वपूर्ण अंतर यह है कि जैसे भारतीय रामायण मां सीता को एक कोमल, सुंदर, और धैर्यवान महिला के रूप में चित्रित करती है वहीं काकाविन रामायण उन्हें बोल्ड, मजबूत के रूप में चित्रित करती है, और प्रभु राम की प्रतीक्षा करने के बजाय रावण की लंका में असुरों से लड़ती हुई दिखाई देती है।काकविन रामायण का दूसरा भाग, रामायण के सभी संस्करणों से अलग है तथा काकविन रामायण में, कुछ जावनी भगवानों को जगह दी गई है। जैसे कि जावा सेमर धयाना और पुकोवाना।

रामकियेन रामायण:

थाईलैंड की संस्कृति के तार भी रामायण से जुड़े हुए दिखायी देते हैं। यहाँ के तो राजा भी 'राम' हैं। थाईलैंड के राजा को राम ही कहा जाता है। उनके नाम के साथ अनिवार्य रूप से राम लिखा जाता है। वर्तमान में थाईलैंड के राजा 'राम दशम' हैं। यहाँ के ऐतिहासिक शहर अयुत्थया को राम की राजधानी अयोध्या के तौर पर देखा जाता है। राज परिवार आज भी अयोध्या 'अयुत्थया' में ही रहता है। वैसे तो थाईलैंड बौद्ध देश है। परंतु यहाँ के नागरिक जीवन में राम के प्रति गहरी आस्था है। वहीं, दक्षिणी थाईलैंड और मलयेशिया में राम के प्रति आस्था रखनेवाले नागरिक बंधु तो यहाँ तक मानते हैं कि रामायण में वर्णित पात्र मूलत: दक्षिण-पूर्व एशिया के निवासी थे और रामायण की सारी घटनाएँ इसी क्षेत्र में घटी थी। वे लोग मलाया के उत्तर-पश्चिम स्थित एक छोटे द्वीप को रावण की लंका मानते हैं। थाईलैंड के राजाओं ने रामकथा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। जब तासकिन, थोनबुरी के सम्राट बने तब उन्होंने थाई भाषा में रामायण को छंदोबद्ध किया, जिसके चार खंडों में 2012 पद हैं। उनके बाद, सम्राट राम प्रथम ने अनेक कवियों के सहयोग से रामायण की रचना करवाई, जिसमें 50188 पद हैं। यह थाई भाषा की पूर्ण रामायण है। परंतु इतनी विशाल रामायण का मंचन नहीं किया जा सकता था, इसलिए राम द्वितीय ने एक संक्षिप्त रामायण की रचना की, जिसमें 14300 पद हैं।इसी प्रकार, राम चतुर्थ ने भी स्वयं पद्य में रामायण की रचना की, जिसमें

1664 पद हैं। एक और तथ्य उल्लेखनीय है कि थाईलैंड के राजभवन परिसर स्थित वाटफ्रकायों—सरकत बुद्ध मंदिर की भित्तियों पर संपूर्ण थाई रामायण 'रामकियेन' को चित्रित किया गया है।

थाईलैंड का राष्ट्रीय ग्रंथ 'रामायण' है, जबकि वहाँ थेरावाद बौद्ध बहुमत में हैं। नि:संदेह, राम के कारण थाईलैंड बौद्ध और हिन्दू संस्कृति के समन्वय का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है। थाईलैंड में रामायण को 'रामकियेन' कहते हैं, जिसका अर्थ है—राम कीर्ति। यह वाल्मीकि रामायण पर आधारित है। एक और आनंददायक तथ्य यह है कि बैंकॉक के सबसे बड़े और भव्य सभागार का नाम 'रामायण हॉल' है, जहाँ प्रतिदिन रामकियेन पर आधारित नृत्य नाटक एवं कठपुतलियों का प्रदर्शन किया जाता है। राजा बोरोमकोत की समकालीन रचनाओं में रामकथा के पात्रों तथा घटनाओं का उल्लेख हुआ है। उन्होंने थाई भाषा में रामायण को छंदोबद्ध किया जिसके चार खंडों में 2012 पद हैं। पुनः सम्राट राम प्रथम ने कवियों के सहयोग से रामायण संस्करण है, जिसे सन 1797 में थाईलैंड के राजा राम प्रथम द्वारा संकलित किया गया था। **'द रामाकियन'** का अर्थ होता है प्रभु राम की महिमा। **'द रामाकियन'** का अंग्रेजी अनुवाद लेखक जे. एम कैडेट द्वारा सन 1971 में किया गया था, जिन्होंने पूरे हिस्से का संकलन कर पुस्तक प्रकाशित की थी। साल 1984 में जे. एम कैडेट की पुस्तक और रामायण पर थाई फिल्म बनी थी, जिसका नाम था **एक कुलीन युद्ध**। यह थाई रामायण, थाईलैंड के संस्कृति और साहित्य का अभिन्न अंग है जिसमे थाईलैंड के समाज के अनुरूप कहानी, पात्रों और जगहों के नाम जैसे कई चीजों को बदला भी गया है।

वाल्मीकि जी की रामायण और थाई रामायण के पात्रों के नामों में बदलाव इस प्रकार हैं। भगवान विष्णु–फ्रा नरई, ब्रह्मदेव–फ्रा फ्रोम, प्रभुराम–फ्रा राम, माता सीता–नंग सीडा, विभीषण–फिफलेक, रावण– थोटसाकन, लक्ष्मण–फ्रा लक। साथ ही कथा में बदलाव इस प्रकार हैं—मां सीता को बताया गया रावण की बेटी।, रावण के चरित्र मे किए गए कई बदलाव।, भगवान हनुमान को नहीं बताया बाल ब्रह्मचारी।, रावण की मौत में किया गया बदलाव, नाभि में अमृत के बजाए थाई रामायण में रावण अपने हृदय को निकालकर अपने एक उपदेशक को देता है, जिसके बाद भगवान हनुमान उस उपदेशक से जैसे तैसे रावण के हृदय को हासिल करते है, और जैसे प्रभु राम रावण को अपनी बाण की बारिश से घायल करते है वैसे ही भगवान हनुमान रावण के हृदय को रोंद देते है जिससे रावण की मृत्यु होती है।

'रामकियन' थाईलैंड में रामायण का एक सर्वाधिक प्रचलित स्वरूप है, जिसे यहां की राष्ट्रीय पुस्तक का दर्जा प्राप्त है। प्राचीन समय में थाईलैंड की राजधानी 'अयुत्या' का नाम भी श्रीराम की राजधानी अयोध्या के नाम पर रखा गया था। 'रामकियन' के मुताबिक थाईलैंड के राजा स्वयं को राम के वंशज मानते थे, ईसा के बाद की शुरुआती शताब्दियों में कई राजाओं का नाम राम रहा है। थाईलैंड में रामायण की कथा आम जनमानस के बीच बहुत लोकप्रिय है। यहां रामायण के विभिन्न नाटकीय संस्करण और इस पर केन्द्रित नृत्य प्रचलित हैं। यहां राजा को राम की पदवी से जाना जाता था।

लाओस में रामकथा:

लाओस राज्य की स्थापना 14वीं शताब्दी के मध्य हुई है। लाओस की संस्कृति चाहे जितनी पुरानी हो, राजनीतिक मानचित्र पर वह मध्यकाल में ही अस्तित्व में आया। लाओस के निवासी और इनकी भाषा को 'लाओ'

कहा जाता है जिसका अर्थ है 'विशाल' अथवा 'भव्य'। लाओ जाति के लोग स्वयं को भारतवंशी मानते हैं।

लाओ साहित्य के अनुसार अशोक द्वारा कलिंग पर आक्रमण करने पर दक्षिण भारत के बहुत सारे लोग असम-मणिपुर मार्ग से हिंद चीन चले गए। लाओस के निवासी अपने को उन्हीं लोगों के वंशज मानते हैं। रमेश चंद्र मजूमदार के अनुसार थाईलैंड और लाओस में भारतीय संस्कृति का प्रवेश ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दी में हुआ था। उस समय चीन के दक्षिण भाग की उस घाटी का नाम 'गांधार' था।

लाओस में रामकथा पर आधारित कई रचनाएँ हैं जिनमें मुख्य रूप से फ्रलक-फ्रलाम—रामजातक, ख्वाय थोरफी, पोम्मचक—ब्रह्म चक्र और लंका नाई के नाम उल्लेखनीय हैं। 'राम जातक' के नाम से विख्यात 'फ्रलक फ्रलाम' की लोकप्रियता का रहस्य उसके नाम के अर्थ 'प्रिय लक्ष्मण प्रिय राम' में समाहित है। 'रामजातक' लाओस के आचार-विचार, रीति-रिवाज, स्वभाव, विश्वास, वनस्पति, जीव-जंतु, इतिहास और भूगोल का विश्वकोश है। राम जातक दो भागों में विभक्त है। इसके प्रथम भाग में दशरथ पुत्री चंदा और दूसरे भाग में रावण तनया सीता के अपहरण और उद्धार की कथा है। राम जातक के प्रथम खंड में लाओस के भौगोलिक स्वरूप और सामाजिक परंपराओं का विस्तृत वर्णन है।

राम जातक के द्वितीय खंड में सीता-हरण से उनके निर्वासन और पुनर्मिलन की सारी घटनाओं का वर्णन हुआ है, किंतु सब कुछ लाओस की शैली में हुआ है। अन्य जातक कथाओं की तरह इसके अंत में भी बुद्ध कहते हैं कि पूर्व जन्म में वे ही राम थे, यशोधरा सीता थी और देवदत्त रावण था। बर्मावासियों के प्राचीन काल से ही रामायण की जानकारी थी। ऐतिहासिक तथ्यों से ज्ञात होता है कि ग्यारहवीं सदी के पहले से ही वह अनेक रूपों में वहाँ के जनजीवन को प्रभावित कर रही थी। ऐसी संभावना है कि लोकाख्यानों और लोकगीतों के रूप में रामकथा की परंपरा वहाँ पहले से विद्यमान थी, किंतु बर्मा की भाषा में रामकथा साहित्य का उदय अठारहवीं शताब्दी में ही दृष्टिगत होता है। यू-टिन हट्वे ने बर्मा की भाषा में रामकथा साहित्य की सोलह रचनाओं का उल्लेख किया है—रामवत्थु, राम सा-ख्यान, सीता रा-कान, राम रा-कान, राम प्रजात, का-ले रामवत्थु, महारामवत्थु, सीरीराम, पुंटो राम प्रजात, रम्मासुङ्गुई, पुंटो रालक्खन, टा राम-सा-ख्यान, राम रुई, रामवत्थु, राम सुमरू मुइ और रामवत्थु आ-ख्यान।

लाओस की राष्ट्रीय भाषा लाओ में लिखी फ्रा लक फ्रा राम रामायण का एक संस्करण है जो बौद्ध धर्म के दशरथ जातक का अनुकूलन है। इस रामायण को फ्रा राम जडोक भी कहा जाता हैं। लाओ किंवदंतियों के अनुसार, दूसरी शताब्दी में लैन जांग राजवंश के राजा चाओ फा न्गौम द्वारा रामायण लाओस में लाई गईं थी। उन्होंने कंबोडिया देश की रामायण रीमकर का लाओ में प्रचार किया था और 18वीं शताब्दी आते तक यह रामायण लाओस के साहित्य और संस्कृति का हिस्सा बन चुकी थी। दशरथ जातक का अनुकूलन होने के बावजूद लाओस की इस रामायण में कई बदलाव किए गए है। पात्रों के **नामों में अंतर**—प्रभु राम— फ्रा राम, दशरथ—ठट्टराथा, माता सीता—नंग सिदा, इंद्राणी—नंग सौगदा, भगवान ब्रह्म—फ्रा फ्रोम, भगवान शिव—फ्रा इसौआने, इंद्र—फ्रा इन, भगवान हनुमान—हौनलमने, सूर्य देव—फ्रा अथित। कथा में अंतर- रावण को बताया श्रीराम का चचेरा भाई।, प्रभु राम बताए गए गौतम बुद्ध के पिछले जन्म के बोधिसत्तव अवतार।, लक्ष्मी की नहीं, मां सीता को बताया भगवान इंद्र की पत्नी इंद्राणी का अवतार। भगवान इंद्र और उनकी पत्नी इंद्राणी पर केंद्रित।, रावण को बताया भगवान ब्रह्मा का परपोता। भगवान हनुमान अंत में बने मनुष्य। लाओस के नागरिक तो स्वयं को भारतवंशी ही मानते हैं। उनका मानना है कि कलिंग युद्ध के बाद उनके पूर्वज इस क्षेत्र में आकर बस गये थे। लाओस के कई बौद्ध विहारों में रामकथा के चित्र उकेरे गये हैं। लाओस का उपमुंग बौद्ध विहार तो विशेष रूप से राम कथा से जुड़े चित्रों के लिए विख्यात है।

यामा जतदाव-रामायण:

भारत के पड़ोसी देश म्यांमार (बर्मा) में भी राम नाम की महिमा व्याप्त है। यहां का पोपा पर्वत औषधियों के लिए विख्यात है। ऐसी मान्यता है कि जब लक्ष्मण को शक्ति लग गई थी तब उनके उपचार के लिए पोपा पर्वत के ही एक भाग को महावीर हनुमान उखाड़कर ले गये थे। म्यांमार के नागरिक उस पर्वत के मध्यवर्ती खाली स्थान को दिखाकर पर्यटकों को यह बताते हैं कि पर्वत के इस भाग को हनुमान उखाड़कर लंका ले गये थे। भारत का पड़ोसी देश

राम के कारण थाईलैंड बौद्ध और हिन्दू संस्कृति के समन्वय का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करता है। थाईलैंड में रामायण को 'रामकियेन' कहते हैं, जिसका अर्थ है—राम कीर्ति। यह वाल्मीकि रामायण पर आधारित है। एक और आनंददायक तथ्य यह है कि बैंकॉक के सबसे बड़े और भव्य सभागार का नाम 'रामायण हॉल' है।

म्यांमार जिसे पहले बर्मा भी कहा जाता था, वहां 11वीं शताब्दी से ही मौखिक रूप से रामायण वाचन का चलन था। 13वीं शताब्दी के आने के बाद ही बर्मी भाषा में इसे पुस्तक का रूप दिया गया था जिसे **'यामा जतदाव'** कहा गया, लेकिन 16वीं शताब्दी तक मुख्यतः इसे मौखिक रूप से ही लोगों तक पहुंचाया गया। 16वीं शताब्दी के अंत से लेकर 18वीं शताब्दी तक ही इसे पुस्तक के रूप में संग्रहित कर लेखन कार्य किया गया, जिसमे नाटकीय ढंग से छंद को बौद्ध संतो द्वारा लिखा गया था, उन्होंने बर्मा (म्यांमार) की सांस्कृतिक और साहित्यिक मूल्यों को रामायण में शामिल तो किया लेकिन उसे पूरी तरह से नहीं बदला। हालांकि पहली लिखित बर्मी रामायण संस्करण 1775 में **'यू आंग फियोन'** द्वारा लिखी गई थी, जिसका नाम था **"रामा थागिन"** जिसका अर्थ होता होता है **प्रभु राम के गाने**।

18वीं से 19वीं शताब्दी तक बर्मा के राज दरबारी के रामायण आधारित नाटक और गानों को पेश किया जाता था और आगे जाकर वह राज दरबारी में मनोरंजन का मुख्य पात्र बना था। वैसे तो म्यांमार में भी मुस्लिम शासन रहा था, लेकिन उसके प्रतिकूल रामायण आधारित नाटक, नृत्य और संगीत राज दरबारों में पेश किया जाता था।

बर्मी रामायण:

'यामा जतदाव' में महज़ पात्रों के नाम में किया गया बदलाव। प्रभु राम–यामा, मां सीता–थिडा, लक्ष्मण–लटखन, भगवान परशुराम–पशुयामा, रावण–दथागिरी, विभीषण–बिबिथना। रामकथा पर आधारित बर्मा की प्राचीनतम गद्यकृति 'रामवत्थु' है। इसकी तिथि अठारहवीं शताब्दी निर्धारित की गई है। इसमें अयोध्या कांड तक की कथा का छह अध्यायों में वर्णन हुआ है और इसके बाद उत्तर कांड तक की कथा का समावेश चार अध्यायों में ही हो गया है। रामवत्थु में जटायु, संपाति, गरुड़, कबंध आदि प्रकरण का अभाव है। रामवत्थु की कथा बौद्ध मान्यताओं पर आधारित है, किंतु इसके पात्रों का चरित्र चित्रण वाल्मीकीय आदर्शों के अनुरूप हुआ है। कथाकार ने इस कृति में बर्मा के सांस्कृतिक मूल्यों को इस प्रकार समाविष्ट कर दिया है कि वहाँ के समाज में यह अत्यधिक लोकप्रिय हो गया है। यह बर्मा की परवर्ती कृतियों का भी उपजीव्य बन गया है। रामवत्थु का आरंभ दशगिरि (दशग्रीव) तथा उसके भाइयों की जन्म कथा से होता है। कथा की समाप्ति अपने दोनों पुत्रों के साथ सीता की अयोध्या वापसी से होती है।

'हिकायत सेरी रामा' रामायण:

रामायण का यह संस्करण सबसे ज्यादा विवादित बताया जाता है क्योंकि बहुत से ऐसे बदलाव किए गए है जिससे हिंदू धर्म के लोगों की भावनाएं आहत होती है। मलेशिया देश की राष्ट्रीय भाषा मलय में लिखित 'हिकायत सेरी रामा', वाल्मीकि रामायण का मलेशियाई संस्करण है जो 16वीं शताब्दी में सबसे ज्यादा चर्चित हुआ था। मलय रामायण के संस्करण का अंग्रेजी अनुवाद हैरी एवलिंग ने किया था। 18वीं शताब्दी आते-आते इस रामायण का इस्लामीकरण हो गया था, क्योंकि मलेशिया में इस्लाम धर्म का दबदबा और शासन चरम पर हो चुका था, 16वीं शताब्दी में लिखी गई मलय रामायण में कई पात्रों को इस्लाम के महत्पूर्ण व्यक्तियों और पैगंबरों से बदला गया था। यह महाकाव्य मलेशिया की मलय भाषा, संस्कृति और साहित्य का अभिन्न अंग बताया जाता है। **'हिकायत सेरी रामा'** का अर्थ होता है महान राम का इतिहास। 1991 में मलय भाषा में हिकायत सेरी रामा पर फिल्म भी बनाई गई थी जिसका नाम था **"नान ओरु मलेशियन"**। मलेशिया में भी वाल्मीकि रामायण को मलय संस्कृति और समाज के हिसाब से और इस्लामिक राजवंश के दबदबे की वजह से कई जगह, पात्र और घटनाओं को बदला गया है।

मलय रामायण के संस्करण का अंग्रेजी अनुवाद हैरी एवलिंग ने किया। ऋषि वाल्मीकि जी की रामायण और

हिकायत सेरी रामा में विभिन्नता इस प्रकार हैं—पात्रों के नामों में बदलाव—प्रभु राम–सेरी रामा, मां सीता—सीती डेवी, लंका—लंगाकापुरी, भगवान हनुमान—हनोमान, लक्ष्मण—लक्समाना। कथा-कहानी में बदलाव और सबसे ज्यादा विवादस्पद रामायण संस्करण होने का बड़ा कारण मलेशियन रामायण के कुछ संस्करणों में अल्लाह को बताया गया एक मात्र देवता।, राजा दशरथ को बताया गया पैगंबर नबी जी का महान पुत्र।, लक्ष्मण को बताया गया प्रभु राम से ज्यादा बलशाली और बुद्धिमान। दशरथ की मंदोदरी से भी हुई थी शादी।, मंथरा और कैकेई के षड्यंत्र का कोई जिक्र नहीं। मंदोदरी तो बताया गया भगवान विष्णु की पत्नी का लक्ष्मी का अवतार। प्रभु राम और माता सीता अप्रत्यक्ष रूप से भाई बहन बतलाए गए। भगवान हनुमान को बताया गया प्रभु राम और माता सीता का पुत्र। मलेशिया का इस्लामीकरण तेरहवीं शताब्दी के आस-पास हुआ।

मलय रामायण की प्राचीनतम पांडुलिपि बोडलियन पुस्तकालय में 1633 ई. में जमा की गई थी। मलयवासियों पर रामायण का इतना प्रभाव था कि इस्लामीकरण के बाद भी लोग उसके परित्याग नहीं कर सके। मलेशिया में रामकथा पर आधारित एक रचना 'हिकायत सेरीराम' तेरहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के बीच लिखी गई थी। इसके अतिरिक्त यहाँ के लोकाख्यानों में उपलब्ध रामकथाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। इस संदर्भ में मैक्सवेल द्वारा संपादित 'सेरीराम', विंसटेड द्वारा प्रकाशित 'पातानी रामकथा' और ओवरवेक द्वारा प्रस्तुत हिकायत महाराज रावण के नाम उल्लेखनीय हैं।हिकायत सेरीराम विचित्रताओं का अजायब घर है। इसका आरंभ रावण की जन्म कथा से हुआ है। 'हिकायत सेरी राम' इसी प्रकार की विचित्रताओं कथाओं से परिपूर्ण है। यद्यपि इसमें वाल्मीकीय परंपरा का बहुत हद तक निर्वाह हुआ है, तथापि इसमें सीता के निर्वासन और पुनर्मिलन की कथा में भी विचित्रता है। सेरी राम से विलग होने पर सीता देवी ने कहा कि यदि वह निर्दोष होंगी, तो सभी पशु-पक्षी मूक हो जाएँगे। उनके पुनर्मिलन के बाद पशु-पक्षी बोलने लगते हैं। इस रचना में अयोध्या नगर का निर्माण भी राम और सीता के पुनर्मिलन के बाद ही होता है। फिलिपींस में रामकथा को नये रूप-रंग में प्रस्तुत की गई है। फिलिपींस की मानव भाषा में संकलित इक विकृत रामकथा की खोज की है जिसका नाम मसलादिया लाबन है। इसकी कथावस्तु पर सीता के स्वयंवर, विवाह, अपहरण, अन्वेषण और उद्धार की छाप स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है।

'बोलर-टोली' रामायण:

ओइरात भाषा में लिखी बोलर टोली, मंगोलिया देश की रामायण है जो जैन धर्म के पाठ पुष्पदंत की महापुराण पर आधारित है। इस रामायण का आगमन बौद्ध धर्म के मंगोलिया आने के बाद हुआ था। वैसे तो बौद्ध धर्म मंगोलिया में 11वीं से 12वीं शताब्दी के बीच में आया था लेकिन रामायण तिब्बत के बौद्ध भिक्षु द्वारा 19वीं शताब्दी में प्रचारित की गई थी। यह रामायण भी मंगोलिया के राष्ट्रीय साहित्य और संस्कृति का हिस्सा है। इस रामायण में तिब्बत की रामायण सुभाषित रत्ना निधि से भी कुछ कहानी और पत्रों को भी जोड़ा गया है। इस रामायण के अंदर जैन, बौद्ध, हिंदू और मंगोलिया की संस्कृति का अद्भुत मिश्रण देखने को मिलता है। इस रामायण की कहानी रावण, दशरथ और श्रीराम पर केंद्रित है। पात्रों के **नामों में अंतर**—रावण—दशाग्रीव, लंका—बोलर टोली । कथा **में अंतर**—लक्ष्मण और विभीषण का कोई उल्लेख नहीं। मां सीता रावण की बेटी। रावण के दस सर की जगह है दस मुख्य प्रमुख। विभीषण ने नहीं हनुमान ने की रावण को मारने में राम की मदद। प्रभु राम को बताया गया गौतम बुद्ध का भक्त।, इस रामायण में अंत की लड़ाई में सबसे बड़े बदलाव, श्री राम ने 100 दर्पण वाले कमरे में छुपे रावण को ढूंढकर मारा जिसमे भगवान हनुमान ने की उनकी मदद।

वियतनाम में रामायण:

वियतनाम के नागरिक भी अपने देश को राम की लीलाभूमि मानते हैं। इस मान्यता की पुष्टि सातवीं शताब्दी के एक शिलालेख से होती है, जिसमें आदिकवि वाल्मीकि के मंदिर का उल्लेख हुआ है। पहली से 16वीं सदी तक वियतनाम को नगर चंपा कहा जाता था जहां हिंदू राजवंश राज किया करता था। 7वीं से 9वीं शताब्दी तक उनकी राजधानी इंद्रपुरा वर्तमान में ट्रा कीउ थी। चंपा के मंदिर के शिलालेखों से संकेत मिलता है कि रामायण को 7वीं शताब्दी तक जाना जाता था। राम और कृष्ण उन मंदिरों में पाए जाते हैं जो मुख्य रूप से उमा

महेश्वर को समर्पित हैं। कई शासकों द्वारा खमेर स्मारकों में पाए गए कई प्राचीन शिलालेख संस्कृत या पुरानी चाम भाषा में लिखे गए थे और पूरे मध्य वियतनाम में पाए गए हैं। राजा ईशानवर्मा और प्रकाशधर्मन के समय, एक शिलालेख में ऋषि वाल्मीकि को श्रद्धांजलि दी गई है और खमेर राजाओं को कुरुंग बनम (पर्वत) कहा जाता था, जिसका अर्थ है शिलाराजा, जो पवित्र पर्वत की व्याख्या करता है जो कि उन्हें प्राचीन भारत से जोड़ता था। वियतनाम में रामायण के गहरे प्रभाव का प्रमाण मिलता है। वियतनाम में रामायण के प्रसंगों पर नाट्यमंचन भी होता है। वियतनाम में रामायण से जुड़े विभिन्न प्रसंगों के गायन और नाट्यमंचन की संस्कृति है। उल्लेखनीय है कि पहली से 16वीं सदी तक वियतनाम चंपा नगर के नाम से जाना जाता था, जहां हिंदू राजवंश का शासन था। वियतनाम के त्रा-किउ नामक स्थल से प्राप्त एक शिला लेख में महर्षि वाल्मीकि का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

'रिमकर' या 'रामकरती' रामायण:

राम के असाधारण व्यक्तित्व और उनकी कीर्ति गाथा का एक स्वरूप कंबोडिया में बेहद प्रसिद्ध है। रामायण महाकाव्य पर आधारित कंबोडियाई महाकाव्य 'रिमकर' जिसे 'रामकरती' भी कहा जाता है, जो संस्कृति के रामायण महाकाव्य पर आधारित कंबोडियाई महाकाव्य कविता है। जिसका शाब्दिक अर्थ हिन्दी में 'राम की महिमा' या 'राम कीर्ति' है। यह अच्छाई और बुराई के संतुलन को दर्शाती है।

तिब्बत और झिंजियांग में रामायण:

तिब्बत रामायण की पांडुलिपि, दुनहुआंग की कई पांडुलिपियों से मेल खाती है। रामायण का यह संस्करण तिब्बत और झिंजियांग में चौथी से ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी के बीच लोकप्रिय था। बीसवीं शताब्दी में, दुनहुआंग (सिल्क रूट का पूर्वी छोर और चीन का झिंजियांग प्रांत) की मोगाओ गुफाओं में विभिन्न पांडुलिपियों की खोज की गई थी जिसमे छह अधूरी पांडुलिपियाँ मिलीं और इन भागों से रामायण की खोज की गई। इनमें से चार पांडुलिपियां लंदन में ब्रिटिश लाइब्रेरी में इंडिया ऑफिस रिकॉर्ड्स में संरक्षित की गई हैं और अन्य दो फ्रांस की नेशनल लाइब्रेरी में हैं।

नेपाल की रामकथा:

नेपाल में रामकथा का विकास मुख्य रूप से वाल्मिकि तथा अध्यात्म रामायण के आधार पर हुआ है। नेपाली काव्य और गद्य साहित्य में रामकथा पर बहुत सारी रचनाएँ हैं। नेपाल के राष्ट्रीय अभिलेखागार में वाल्मीकि रामायण की दो प्राचीन पांडुलिपियाँ सुरक्षित हैं। इनमें से एक पांडुलिपि के किष्किंधा कांड की पुष्पिका पर तत्कालीन नेपाल नरेश गांगेय देव और लिपिकार तीरमुक्ति निवासी कायस्थ पंडित गोपति का नाम अंकित है। इसकी तिथि सं. 1076 तदनुसार 1029 ई. है। दूसरी पांडुलिपि की तिथि नेपाली संवत् 795 तदनुसार 1674-76 ई. है। नेपाली साहित्य में भानुभक्त कृत रामायण को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। नेपाल के लोग इसे ही अपना आदि रामायण मानते हैं। यद्यपि भानुभक्त के पूर्व भी नेपाली रामकाव्य परंपरा में गुमनी पंत और रघुनाथ का नाम उल्लेखनीय है। रघुनाथ कृत रामायण सुंदर कांड उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखा गया। इसका प्रकाशन नेपाली साहित्य सम्मेलन, दार्जिलिंग द्वारा कविराज दीनानाथ सापकोरा की विस्तृत भूमिका के साथ 1932 में हुआ। नेपाली साहित्य में प्रथम महाकाव्य रामायण के रचनाकार भानुभक्त का उदय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। पूर्व से पश्चिम तक नेपाल का कोई ऐसा गाँव अथवा कस्बा नहीं है जहाँ उनकी रामायण की पहुँच नहीं हो। भानुभक्त कृत रामायण वस्तुतः नेपाल का 'रामचरितमानस' है। भानुभक्त का जन्म पश्चिमी नेपाल में चुँदी-व्याँसी क्षेत्र के रम्घा ग्राम में 29 आसाढ़ संवत 1871 तदनुसार 1814 ई. में हुआ था। संवत् 1910 तदनुसार 1953 ई. में उनकी रामायण पूरी हो गई थी। किंतु कहा जाता है कि युद्धकांड और उत्तर कांड की रचना 1855 ई. में हुई थी। भानुभक्त कृत रामायण की कथा अध्यात्म रामायण पर आधारित है। इसमें उसी की तरह सात कांड हैं, बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किंधा, सुंदर, युद्ध और उत्तर। बालकांड का आरंभ शिव-पार्वती संवाद से हुआ है। युद्ध कांड में राम का अयोध्या प्रत्यागमन, भरत मिलन और राम राज्याभिषेक का चित्रण हुआ है। जबकि उत्तरकांड में राम द्वारा लक्ष्मण के परित्याग के उपरांत उनके महाप्रस्थान के बाद कथा की समाप्ति हुई है। इस प्रकार भानुभक्त कृत रामायण नेपाली भाषा की महान रचना है जो कालांतर में संपूर्ण नेपालवासियों का कंठहार बन गई।

———•••———

पीएच.डी. शोधार्थी,
मणिपुर अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय,
मणिपुर (इंफाल)

भारतीय लोक दृष्टि और पर्यावरण

— सोमदत्त शर्मा

भारतीय दृष्टि में लोक की अवधारणा व्यापक है। इसमें पृथिवी, जल, पर्वत, वृक्ष, पशु-पक्षी आदि सभी शामिल हैं। सह अस्तित्व की महाअवधारणा को साकार करते हुए ये सभी घटक तत्व लोक में अस्तित्ववान रहे हैं। इन्हीं सब घटक तत्वों से मिलकर पर्यावरण तैयार होता है।

कहना न होगा कि आज दुनिया भर में जितनी भी सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक विचारधाराएँ प्रचलित हैं वे सब मनुष्य को महत्वपूर्ण मानती हैं। आज राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर जितनी भी योजनायें बन रही हैं सब मनुष्य को केंद्र में रखकर ही तैयार की जा रहीं हैं। योजनाओं को देखकर ऐसा लगता है मानो मनुष्य ने स्वयं को सर्व नियंता मानते हुए प्रकृति में उपलब्ध प्रत्येक वस्तु को स्वयं के अधीन मान लिया है और ऐसा करते हुए वह मान बैठा है कि इस भौतिक जगत में जो कुछ भी प्राप्य है वह उसका स्वाभाविक उपभोक्ता है और उसे प्रकृति के सामान को भोगने का असीमित अधिकार प्राप्त है! आर्थिक

विचारधाराओं ने तो बाकायदा मनुष्य को उपभोक्ता के रूप में स्थापित कर दिया है। उपभोक्ता को उपभोग के लिए सामान चाहिए तो प्रकृति का दोहन करना ही होगा। और यहीं से मनुष्य और प्रकृति दो अलग केंद्र के रूप में दिखने लगते हैं। मनुष्य दुहना चाहता है, प्रकृति इस प्रवृत्ति का अपनी तरह से विरोध करती है। बाढ़,

आंधी, तूफ़ान, अकाल, अतिवृष्टि या अनावृष्टि जैसी घटनाएँ प्रकृति में व्याप्त इस असंतुलन का ही परिणाम हैं। वस्तुतः ये योजनायें मनुष्य और प्रकृति के बीच सह अस्तित्व के महाविचार के विपरीत सिद्ध हो रहीं हैं।

प्रकृति के बीच रहने वाले कुछ समुदाय इस स्थिति को समझते हुए विरोध में स्वर उठाते हैं, आन्दोलन करते हैं लेकिन मनुष्य की अनियंत्रित भूख, जिसे अक्सर विकास का नाम दे दिया जाता है, उसके सामने ये आन्दोलन असहाय से दीखते हैं। सह अस्तित्व के पालन में दोनों ही घटक एक दूसरे का ध्यान रखते हुए परस्पर सहयोग करते हैं। उसमें मनुष्य प्रकृति से सिर्फ लेता ही नहीं है, उसे वापस भी करता है। पर, वर्त्तमान में जितनी मात्रा में लिया जा रहा है उतनी मात्रा में प्रकृति को दिया नहीं जा रहा है और यही पर्यावरण असंतुलन का कारण है।

'लोक' सह अस्तित्व की अवधारणा को महत्वपूर्ण मानता है इसलिए अपने विभिन्न घटकों के बीच किसी भी तरह की प्रतिद्वंद्विता को बढ़ावा नहीं देता। इसके लिए वह सबके बीच समानता को स्वीकारता है। वह न किसी को छोटा मानता है और न किसी को बडा मानता है। उसके लिए जो महत्त्व चींटी का है वही हाथी का है। उसके लिए जितनी महत्वपूर्ण नदियाँ हैं उतने ही वृक्ष और पशु -पक्षी भी हैं। लोक में न कोई किसी से कम है, न कोई अधिक। यही कारण है कि भारतीय लोक में भूमि 'माता' है। बिहार के लोक गीतों में बेटे के विवाह के समय भूमि को 'माता भवानी' मानते हुए विवाह स्थल की भूमि से प्रार्थना की जाती है कि, 'हे भुइया भवानी ! मैं तुम्हारा नाम तो नहीं जानती पर प्रार्थना करती हूँ कि अपने 'दुलरुआ'(दुल्हे) की रक्षा करना जो विवाह के पवित्र बंधन में बंधने जा रहा है।'—

'लोक' सह अस्तित्व की अवधारणा को महत्वपूर्ण मानता है इसलिए अपने विभिन्न घटकों के बीच किसी भी तरह की प्रतिद्वंद्विता को बढ़ावा नहीं देता। इसके लिए वह सबके बीच समानता को स्वीकारता है। वह न किसी को छोटा मानता है और न किसी को बडा मानता है। उसके लिए जो महत्त्व चींटी का है वही हाथी का है। उसके लिए जितनी महत्वपूर्ण नदियाँ हैं उतने ही वृक्ष और पशु -पक्षी भी हैं। लोक में न कोई किसी से कम है, न कोई अधिक। यही कारण है कि भारतीय लोक में भूमि 'माता' है। बिहार के लोक गीतों में बेटे के विवाह के समय भूमि को 'माता भवानी' मानते हुए विवाह स्थल की भूमि से प्रार्थना की जाती है कि, 'हे भुइया भवानी ! मैं तुम्हारा नाम तो नहीं जानती पर प्रार्थना करती हूँ कि अपने 'दुलरुआ'(दुल्हे) की रक्षा करना जो विवाह के पवित्र बंधन में बंधने जा रहा है।'

वही रे देस की भुइयां भवानी
नाऊं न जानेउं तोहार
अपन दुलरुआ के बेहन पठयों
बार न बांका जाय

इसी तरह, कार्तिक के पवित्र महीने में ब्रज क्षेत्र की महिलायें सुबह सुबह स्नान करके, घर के आँगन में बड़ी श्रद्धा से रोपे गये तुलसी के पौधे के चारों ओर यह गाती हुई परिक्रमा कराती हैं कि, 'हे! हर की पटरानी तुम मुक्ति की देने वाली हो। हम तुम्हारी स्तुति करते है।'—

तुलसी महारानी नमो नमो
हर की पटरानी नमो नमो

तुलसी चौरे पर दीप बालते हुए वे गाती हैं—'हे ! तुलसी माता तुम मुक्ति की देने वाली हो। मेरा बेडा पार लगा दे मैं इसी कमाना से तुम्हारा 'दिवला' सींच रही हूँ'—

तुलसा माता तू मुक्ति की दाता
दिवला सींचूं मैं तेरा कर निस्तारा मेरा

ऐसे गीत मध्य प्रदेश, छत्तीस गढ़ आदि प्रान्तों में भी सुनने को मिलते हैं। भारत में विभिन्न अवसरों पर आम, नीम, पीपल, बड आदि पेड़ों की पूजा का विधान है। जैसे तुलसी का पौधा औषधीय गुण संपन्न है और अकेला पौधा तीन सौ किस्म की बीमारियाँ दूर करने की क्षमता रखता है वैसे ही तमाम पेड़ पौधे विभिन्न

प्राणियों द्वारा छोड़ी जाने वाली कार्बन डाई ऑक्साइड को अवशोषित कर प्राण वायु (ऑक्सीजन) छोड़ते हैं। पीपल जैसे पेड़ों के बारे में विज्ञानं मानता है कि यह दिन भर ऑक्सीजन छोड़ता है। लोक इतना कृतघ्न नहीं हो सकता कि जो पेड़ पौधे उसको प्राणवायु देकर उसके जीवन की रक्षा करते उन्हें काटने की अनियंत्रित छूट किसी को दे दे। वस्तुतः यह लोक की सह अस्तित्व की भावना के खिलाफ है। ऐसा करने के लिए प्रकृति के तमाम घटक तत्वों में दिव्य भाव आरोपित किया गया। तुलसी को 'हर की पटरानी' कहना या पीपल पर देवताओं का वास बताना उसी सह अस्तित्व की भावना को बढ़ावा देने की लोक की योजना का हिस्सा रहा है। यह बात पेड़ पौधों तक ही सिमित नहीं है। पशु पक्षियों को भी इसमें शामिल किया गया है। शगुन चिरैया इसका उदाहरण है।

विवाह के अवसर पर मथुरा के चतुर्वेदियों में 'सगुन चिरैया' गाने का रिवाज है। यह शगुन चिरैया शुभ शकुन बताती है कि विवाह के लिए उपयुक्त तिथि कौन सी होगी। महिलायें शगुन चिरैया से आग्रह करती हैं कि, 'हे, सगुन चिरैया! मेरे बेटे के विवाह का अवसर है। अच्छे अच्छे शकुन निकाल दे। तेरे बताये शकुन अत्यंत श्रेष्ठ होते हैं।'महिलायें गाती हैं—

अहि अहि सगुन चिरैया हो।
भले भले सगुन बिचार।
तेरे सगुन मेरे अतिलढ़ हो।
बरैया बिहायन जाय।

'आकाशवाणी लोक सम्पदा संरक्षण महापरियोजना' के अंतर्गत देशभर से रिकॉर्ड किये गये 'संस्कार गीतों' तथा अन्य अवसरों पर गाये जाने वाले पारंपरिक लोक गीतों में ऐसे अनेक गीत मिलते हैं जिनमें लोक की सह अस्तित्व की भावना उजागर होती है। लोक साहित्य की मर्मज्ञ और प्रसिद्द लेखिका डॉ. शांति जैन ने अपनी पुस्तक 'लोकगीतों के सन्दर्भ और आयाम ' में ऐसे अनेक गीतों का उल्लेख किया है जिनमें विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले लोक गीतों में चील, कौवा, तोता, कोयल आदि को संबोधित किया गया है कि वे सहायता करें। ऐसा ही एक गीत है जिसमें एक स्त्री आकाश में उडती हुई एक चील से निवेदन कर है कि, 'हे! आकाश में उड़ने वाली चील! तू उड़ते उड़ते मेरे भाई के घर चली जा और उससे जाकर बताना कि तेरी बहन को बहुत दुःख है।'—

सरग उडंती चीलिया मेरे
कहियो बीरन जी ते जाय
त्यारी भैन कूँ दुःख भौत सौं।

देश के हर हिस्से में गर्भवती स्त्री की गोद भराई की रस्म की जाती है। यह गर्भ के पांचवें, सातवें और आठवें महीने में अपनी अपनी रिवाज के अनुसार होती है। इसमें गर्भवती स्त्री के मायके से गोद भराई का सामान आता है। ब्रज में इसे 'पीयरो' कहा जाता है। आज की तरह सूचना देने के लिए, पहले मोबाईल आदि व्यवस्था नहीं होती थी। सूचना पंडित या नाई के हाथों भेजी जाती थी। प्रस्तुत गीत में गर्भवती स्त्री कौवे को माध्यम बनाकर अपने मायके को 'पीयरो' भेजने हेतु सन्देश भेजती है। वह कौए से विनय करती है, 'हे सुलक्षण कागा! तू उड़कर मेरे पीहर चला जा और मेरे बाबुल (पिता) से

गढ़वाली समाज में भी इस तरह का गीत मिलता है जिसमें सबसे पहले ब्रह्मा के रूप में पुरोहित को, फिर मंगल गीत गाने वाली 'मंग्लेरियों' को फिर बेल-दमाऊ वादकों को सम्मान के साथ आमंत्रित करते हुए क्रमशः पञ्च कन्याओं, सात सुहागिनों को आमंत्रित किया गया है। लेकिन गीत का वैशिष्ट्य यह है कि उक्त सब के साथ हल्दी, मंजेठी, केले का वृक्ष, दूब (एक प्रकार की घास), कुणजा (देव पूजन को चढ़ाया जाने वाला एक पौधा), गाय माता, फूल, धान के चावल, ओखली, मूसल को भी सखी-सहेली और सगे-सम्बन्धियों के साथ आमंत्रित किया जाता है। और इस मंगल काम के लिए 'कौवे' को संदेशवाहक बनाकर भेजने की बात लोक गीत में कही गयी है जो चारों दिशाओं में घूम घूम कर सबको ससम्मान आमंत्रित करता है।

जाकर कहना कि तुम्हारी धीयरी (बेटी) ने 'पीयरो' मंगाया है।' पीयरो में बेटी की गोद में कपडे, फल, फूल, मिठाई आदि सामान गर्भवती बेटी की गोद में रखा जाता है।

लोक संगठन की धुरी है—'परिवार'। परिवार रिश्तों पर चलता है। लेकिन लोक के रिश्तों के सूत्र परिवार की सीमाओं को लांघकर अपने सभी घटक तत्वों को अपने बंधन में लेते दिखाई देते हैं। लोक प्रचलित सभी तरह के मंगल गीत इसके उदाहरण हैं।

हम जानते हैं कि मंगल कार्यों में शामिल होने के लिए सभी समुदायों में निमंत्रण देने की प्रथा है। ये निमंत्रण अपने रिश्तेदारों के अतिरिक्त देवी देवताओं और उन पूर्वजों को भी दिया जाता है जो अब इस संसार में नहीं हैं। इन्हें ब्रज क्षेत्र में 'अऊत' कहा जाता है। यह निमंत्रण गाँवों के लोक देवता यहाँ तक कि मसान और मसानी तथा पीर और सैयद को भी गा गा कर दिया जाता है। ब्रज क्षेत्र मैं इसे 'न्योता' कहा जाता है। ब्रज क्षेत्र में विवाह के समय गाया जाने वाला न्योंता देखें—

तुम धरती माता न्योतो लेउ,
भली बिधि आइये
त्यारे रच्योए लढ़ लढ़ी काउ ब्याहु,
भली बिधि आइये।

इस गीत में गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, देवी मैया, अऊत, प्रेत, और घर के सभी बड़े बूढ़े और पूर्वजों के साथ साथ गंगा, यमुना और सरस्वती मैया को भी बिकुल ऐसे नौता दिया जाता है जैसे घर के दूसरे लोगों और रिश्तेदारों को निमंत्रित किया जाता है—

यह अकारण नहीं है कि भारत का लोक समाज उत्सव धर्मी समाज है। हर दिन कोई न कोई व्रत, उपवास या त्यौहार भारतीय जन जीवन की विशेषता है। इन व्रत-उत्सवों को धर्म से जोड़ा गया है। संभवतः ऐसा लोक मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर किया गया होगा। सामान्य रूप से देखा जाय तो नदियाँ जल का प्रवाहभर ही तो हैं। इनकी धारा को अबाधित रूप से प्रवाहित रखना उनकी शुद्धता की गारंटी मानी जाती है। इनका मानवीकरण करके पौराणिक कथाओं के साथ जोड़ना इसी मनोविज्ञान के कारण हुआ होगा। गंगा इसका सबसे बड़ा उदाहरण है।

तुम सरस्वती मैया नौतो लेउ,
भली बिधि आइये।

तुम गंगा, जमना नोतो लेउ,
भली बिधि आइये।

इस गीत में, दरअसल, दृश्य -अदृश्य शक्तियों के अतिरिक्त वस्तुतः पृथिवी और जल तत्वों केप्रति आदर भाव प्रदर्शित किया गया है।

गढ़वाली समाज में भी इस तरह का गीत मिलता है जिसमें सबसे पहले ब्रह्मा के रूप में पुरोहित को, फिर मंगल गीत गाने वाली 'मंग्लेरियों' को फिर बेल-दमाऊ वादकों को सम्मान के साथ आमंत्रित करते हुए क्रमशः पञ्च कन्याओं, सात सुहागिनों को आमंत्रित किया गया है। लेकिन गीत का वैशिष्ठ्य यह है कि उक्त सब के साथ हल्दी, मंजेठी, केले का वृक्ष, दूब (एक प्रकार की घास), कुणजा (देव पूजन को चढ़ाया जाने वाला एक पौधा), गाय माता, फूल, धान के चावल, ओखली, मूसल को भी सखी-सहेली और सगे-सम्बन्धियों के साथ आमंत्रित किया जाता है। और इस मंगल काम के लिए 'कौवे' को संदेशवाहक बनाकर भेजने की बात लोक गीत में कही गयी है जो चारों दिशाओं में घूम घूम कर सबको ससम्मान आमंत्रित करता है। गीत इस प्रकार है—

पैल्यौ न्यूतौ, पैल्यौ न्यूतौ बेझुखी बर्मा हे।
आज चैन्दा पिताजी बरमा काणीज हे।
तब न्यूती मंगलेर नारी हे।
आज चैन्दा पिताजी मांगल करिया हे।
तब न्यूती, तब न्यूती बामती कूँ बैरा हे।
आज चैन्दा पिताजी बाढाई कारीज हे।
तब न्यूती, तब न्यूती हल्दी की बाड़ी हे।
न्यूता मांजी, न्यूता मांजी दुबला की बाड़ी हे।
आज चैन्दा मांजी दुबला कारिया हे।
न्यूता मांजी, न्यूता मांजी मंजेठी की बाड़ी हे।
आज चैन्दा मांजी मंजेठी कारिया हे।
न्यूता मांजी, न्यूता मांजी ज्युड़ी कुड़ी हे।
आज चैंदा मांजी चैन्दा मांजी गई कारिया हे।
न्यूता मांजी, न्यूता मांजी फूलों की डाली हे।
आज चैन्दा मांजी फलो करिया हे।

न्यूता मांजी, न्यूता मांजी सदियों की बाड़ी हे
आज चैन्दा मांजी,
चैन्दा मांजी मोती पू कारिया हे।
तब न्यूती, तब न्यूती जय माता नारी हे।
जय धरा होली जज्माती नारी हे।
जजमाती नारी स्वायबंती (सुहागवंती) नारी हे
जै धारा होली बाल खिलोन्या हे
वे धारा होली जजमाती नारी हे।
न्यूतौ मांजी, न्यूतौ मांजी चांमा गंजेली हे
पेल्यो न्यूतौ, पेल्यो न्यूतौ बेद्मुखी बरमा हे।

थोड़ा आगे बढ़ते हैं। ऊपर पृथिवी तत्त्व और जल तत्त्वों के प्रति लोक के पूज्य भाव की चर्चा की गयी है। अग्नि तत्त्व का सबसे बड़ा प्रतीक 'सूर्य' है। देश के विभिन्न हिस्सों में सूर्य की पूजा का विधान है। भारत के उत्तर पू र्वी राज्यों में मणिपुर को छोड़कर सर्वत्र दोनी-पोलो (सूर्य-चन्द्र) के अलावा नदी, पर्वत, जंगल और बांस की पूजा की जाती है। क्योंकि ये सब वहां के जन जीवन को सीधे प्रभावित करते हैं। बिहार में छठ पूजा का विधान है। यह वस्तुतः सूर्य पूजा ही है। पश्चिम बंगाल के सिलचर के इलाके में 'सुर्ज ब्रत' के समय वहां का बंगाली समाज यह गीत गाता है—

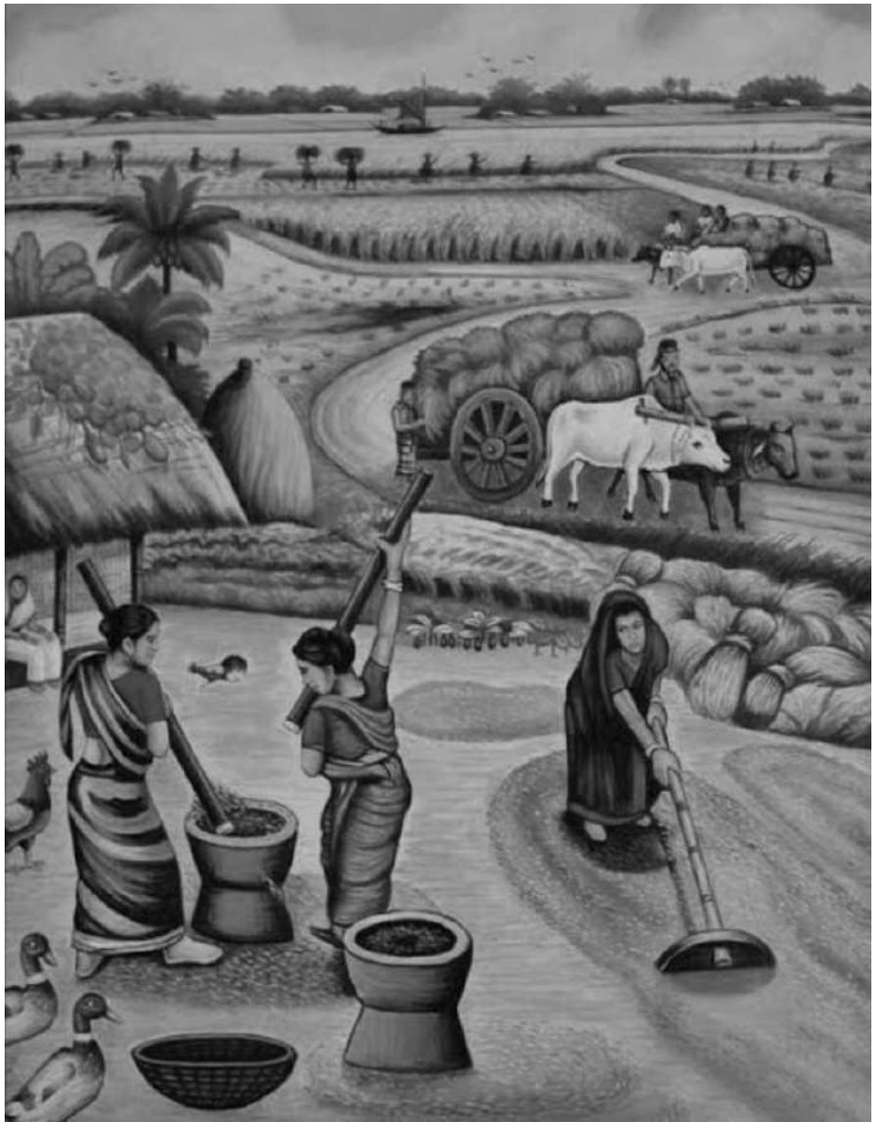

सुरज देवओ उदय हईला
नचिया ओ सईं
नन्द रानी दाडाईया छईन
घृतेर बाती लईया
नन्द रानी दाडाईया छईन
पानेर बांटा लईया
नन्द रानी दाड़ाईया छईन
फूल पुष्प लईया
नन्द रानी दाडाईया छईन धुप,
धुना लईया
नन्द रानी दाडाईया छईन
शंख घंटा लाईया

तात्पर्य यह कि सूर्य ब्रत के लिए व्रती सूर्योदय से पूर्व दीप जलाकर सूर्यदेव की आराधना करते हैं। उस समय यह परम्परागत गीत गाकर वस्तुतः अग्नि तत्व के प्रति पूज्य भाव प्रदर्शित किया जाता है। जिसका सबसे बड़ा प्रतीक सूर्य है। ब्रत की समाप्ति के समय याने सूर्यास्त के समय दीप विसर्जन करके व्रती अपना व्रत समाप्त करते हैं। तब एक और पर्व गीत सूर्य देव की अभ्यर्थना में गया जाता है जिसमें कहा जाता है कि 'यह बात मन में धारण कर लो कि मनुष्य जन्म दुर्लभ है। यह व्यर्थ चला जाएगा यदि सूर्य पूजा की घृत बाती माथे से नहीं लगाई। सभी व्रती स्त्रियाँ गंगा घाट चलो वहां पूजा के बाद पुष्प और दूर्बा माथे से लगाओ ऐसा करते समय श्री कृष्ण का स्मरण करो।'—

छोरीर नाम लओ ओ
मन बदन ओ भरिया

मनुष्य दुर्लभ जन्म वृथा जाइ गोइया।
सुर्ज पुजेर घृतेर बाती माथे कोरि लोइया
गंगा घाटे गेला व्रती नारिगन ओ लइया
पुष्प दूर्बा माथे कोरे लइया
पुष्प दुर्बा मासाइला श्री कृष्ण स्मरिया।

इस इलाके में 'कर्तिक रत्न' नाम से भी एक गीत गाया जाता है। जिसमें सरस्वती, और कार्तिकेय की वन्दना के बाद पूर्व दिशा में सूर्य नारायण (दिवाकर) की वंदना करते हैं। क्यों कि उनके प्रकाश से जगत प्रकाशित होता है। इसी गीत में दक्षिण सागर में कालिदय सागर की वन्दना करते हैं। इसके मध्य में कालिदय नागिन वास करती है। फिर भूमि की वंदना करते हैं जिसपर हम सबके चरण पड़ते हैं।

तात्पर्य यह है कि, 'लोक' अपने सभी घटक तत्वों को समान आदर देता है। लोक के लिए कोई एक तत्व दुसरे से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। चाहे फिर वह मनुष्य ही क्यों न हो। संभवतः इसी कारण लोक भाषाओँ और साहित्य के प्रसिद्द विद्वान डॉ. महेंद्र मिश्र अपने शोध पत्र 'Regionality, Environment and Litereture' लिखते हैं—

'A whole habitat is a unit of the life world where humanity is not unique but the human being is a part of the whole ecosystem where they have to follow the naturalistic world view collectively produce their everyday need, share within a collective understending of life and created a value of co-walking with the world arround them.'

ऐसा ही एक और लोक पर्व है—नाग पंचमी। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपने 'नागमह' शीर्षक लेख में इसकी विषद चर्चा की है। उन्होंने लोक और शास्त्रीय धाराओं का विभिन्न स्तरों पर समन्वय करते हुए स्पष्ट किया है कि यह पूजा यक्ष पूजा से भी अधिक प्राचीन लगती है। शतपथ ब्राह्मण के हवाले से वे लिखते हैं कि, 'नागों की माता सुरसा पृथ्वी की ही संज्ञा है। नाग माता कद्रू पृथ्वी का ही रूप है।

(अर्थात सम्पूर्ण जैविक विश्व एक इकाई है। मनुष्यता इससे पृथक नहीं है। मनुष्य भी पर्यावरणिक व्यवस्था का एक भाग है। मनुष्य को भी प्रकृति की सामूहिकता की दृष्टि के साथ तालमेल बैठते हुए प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ती केलिए प्रयास करना होता है। जीवन के प्रति सामूहिक दृष्टिकोण कोही आगे बढ़ाना होता है और इस तरह करते हुए उसे ऐसे मूल्यों का विकास करना होता है जिनके तहत सम्पूर्ण जीवन साथ साथ चल सके। (यह आलेख साहित्य अकादमी की 27-29 फरवरी 2020 के बीच हुए एक राष्ट्रिय सेमीनार में पढ़ा गया था।)

यह अकारण नहीं है कि भारत का लोक समाज उत्सव धर्मी समाज है। हर दिन कोई न कोई व्रत, उपवास या त्यौहार भारतीय जन जीवन की विशेषता है। इन व्रत-उत्सवों को धर्म से जोड़ा गया है। संभवतः ऐसा लोक मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर किया गया होगा। सामान्य रूप से देखा जाय तो नदियाँ जल का प्रवाह्भर ही तो हैं। इनकी धारा को अबाधित रूप से प्रवाहित रखना उनकी शुद्धता की गारंटी मानी जाती है। इनका मानवीकरण करके पौराणिक कथाओं के साथ जोड़ना इसी मनोविज्ञान के कारण हुआ होगा। गंगा इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। भागीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा गंगा को अपने कमंडल से मुक्त करने को तैयार हो जाते हैं। लेकिन गंगा के प्रचंड प्रवाह को रोकने की क्षमता अगर किसी के पास है तो वे 'शिव' हैं। इसलिए भगीरथ ब्रह्मा के कहने पर शिव को प्रसन्न करने के लिए तप करते हैं। शंकर प्रसन्न होकर अपने जटाजूट में गंगा को संभाले रखने को तैयार हो जाते हैं। और जटाजूट की एक लट खोल कर गंगा की छोटी सी धारा को पृथ्वी पर भेजते हैं। कहने को यह एक पौराणिक कथा है लेकिन इसके पर्यावरणिक निहितार्थ विशेष है। पर्यावरणविद धरती पर आने वाली बाढ़ और आपदाओं के पीछे पेड़ों की अंधाधुंध कटाई को जिम्मेदार मानते हैं। उत्तराखंड के राणी गाँव महिलाओं ने औपचारिक शिक्षा के अभाव में भी 'चिपको आन्दोलन' की शुरुआत पिछली शताब्दी में की थी। महिलाओं ने तब वृक्षों के साथ गहरा अपनापा दिखाते हुए उनकी कटाई के विरोध में वृक्षों से

चिपक गयीं थीं। यह सब अकारण नहीं था। उन महिलाओं के लिए पहाड़ी वृक्ष शंकर के जटाजूट के समान रहे हैं। वृक्ष पहाड़ों से लेकर तारे तक पानी को बहजाने से रोकने का काम करते हैं। उसीमें से एक छोटी सी धारा पृथ्वी पर आती है। गंगा को मोक्षदायिनी कहकर ऋषियों-मुनियों ने अपनी पवित्र स्तुतियों के द्वारा स्तुतियों के द्वारा महनीय बनाते हुए गंगा के प्रति जो पूज्य भाव पैदा किया उसी का परिणाम है कि स्नान के समय गंगा में मल मूत्र विसर्जन तो दूर उसमें साबुन लगाकर नहाना और कपड़े साफ़ करने तक की मनाही है।

गंगा, यमुना, नर्मदा आदि नदियों के प्रति श्रद्धा भाव उत्पन्न करने के लिए इनकी आरती तथा इनके किनारे पवित्र और पौराणिक महत्व दर्शाने वाले मेलों के आयोजन की परम्परा विकसित की। गंगाजल का अपना औषधीय महत्त्व भी रहा है। इसलिए गंगा की महत्ता कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक सर्वत्र मानी गयी है। लोक ने भी इस भावना का आदर किया है। डॉ. शांति जैन ने अपनी पुस्तक 'लोक गीतों के सन्दर्भ और आयाम' में लिखा है कि—

'गंगा लोक माता मानी गयी है। लोक साहित्य गंगा के गीतों से समृद्ध है। इस दिन (गंगा दशहरा के दिन) लोग गंगा स्नान करके गंगा जी की पूजा करते हैं। ब्राह्मणों और गरीबों को दान दिया जाता है। स्त्रियाँ गंगा के गीत गति हैं—

हो गंगा मैया अगम लहराय
सिव की जटाजूट से निकरीं
पाप और ताप नसाय
एक लहर हमें देहु बरदानी
जुग जुग जीवन केरि कल्यानी
जो पावे तरि जायं' (वही, पृष्ठ 337)

डॉ. जैन गंगा दशहरा के दिन किये जाने वाले कार्यों के बारे में बताती हैं –

'इस महीने में (ज्येष्ठ शुक्ल दशमी) प्याऊ, कुआं, तालाब, बावड़ी, के साथ साथ छायादार विशेष वृक्ष लगाने से विशेष फल मिलता है।' (वही, पृष्ठ 337)

ऐसा ही एक और लोक पर्व है—नाग पंचमी। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपने 'नागमह' शीर्षक लेख में इसकी विषद चर्चा की है। उन्होंने लोक और शास्त्रीय धाराओं का विभिन्न स्तरों पर समन्वय करते हुए स्पष्ट किया है कि यह पूजा यक्ष पूजा से भी अधिक प्राचीन लगती है। शतपथ ब्राह्मण के हवाले से वे लिखते हैं कि, 'नागों की माता सुरसा पृथिवी की ही संज्ञा है। नाग माता कद्रू पृथिवी का ही रूप है। (इयं पृथिवी कद्रू: —श.ब्रा. 3/6/2/2 तथा इयं वे पृथिवी सर्वराज्ञी—श.ब्र.—2/1/4/30)'

(डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल रचना संचयन पृष्ठ 503)

लोक विश्वास के अनुसार शेष नाग पृथिवी को धारण किये हुए हैं। डॉ. अग्रवाल के अनुसार टीउटन जाती की उत्तराखंडवर्ती गाथाओं में एक ऐसे सर्प की कल्पना की गयी है जो पृथिवी को चरों ओर से घेरे हुए है। (वही, पृष्ठ 509)

श्रावण शुक्ल पंचमी को मनाया जाने वाला यह त्यौहार बिहार में 'नाग पचैया' तथा उत्तर प्रदेश में 'नाग पंचमी' के नाम से मनाया जाता है। इसदिन सर्प देवता की पूजा होती है। घर की दीवारों पर चावल के घोल से बेस तैयार करके उसपर गेरू से सर्प चिन्ह बनाकर उनकी पूजा की जाती है। बच्चे इस दिन घर के बाहर जाकर खेतों में, जंगलों में, बिलों के मुहाने पर दूध का सकोरा और कहीं कहीं धन का लावा रखकर आते हैं। इस समय अलग अलग क्षेत्रों में लोक गीत गए जाते हैं। बिहार में गया जाने वाला गीत इस प्रकार है –

प्राकृतिक व्यवस्थाएं आदान -प्रदान पर चलतीं हैं। प्रकृति से जताना लिया जाय उतना उसे वापस भी किया जाय। वापस करने में कठिनाई हो तो प्रायश्चित्त करने का कड़ा विधान हो। भारतीय मनीषियों ने एक वृक्ष को काटने पर 'ब्रह्म हत्या' का पापी मानने का विधान किया था। क्या यह दकियानूसी विचार है? नहीं। यह अकारण नहीं था। जीवन को बचाकर रखने का दूरदृष्टिपूर्ण विधान था। विधान यह भी था कि यदि गलती से भी गाय की हत्या हो जाय तो प्रायश्चित्त के तौर पर कम से कम सात गाँवों में भीख मांगकर खाना आवश्यक था। तभी पाप से मुक्ति संभव थी।

मोरा नाग दुलरुआ हो
मोरा नाग दुलरुआ
जे मोरे नाग के भिखिया न दीहैं
दूनों बेकत जार जइहैं हो
मोरे नाग दुलरुआ
जे मोरे नाग के भीखि उठि दी हैं
दूनों बेकति सुखी रहि हैं हो
मोरे नाग दुलरुआ

(आकाशवाणी लोक सम्पदा संरक्षण महापरियोजना संग्रहालय से प्राप्त)

इन दिनों पश्चिम बंगाल में साँपों की अधिष्ठात्री मनसा देवी की पूजा की जाती है। मिथिला में इसे 'बिसहरा' भी कहते हैं–

सावन मास नागपंचमी भेल
घर घर बिसहर पूजा भेल।

इस तरह हम देखते हैं कि लोक 'समूचे जीवन' को संबोधित करता है। जीवन के सभी रूप, जीवन के दूसरे सभी रूपों के प्रति संवेदनशील दिखाई देते हैं। उत्तर प्रदेश के कासगंज कसबे के आस पास महिलायें एक गीत अक्सर गाती थीं—

महल पर कागा बोला है, रे!
महल्प्र कागा बोला है।

अब, कागा क्या बोला है इसके पीछे एक पूरा रूपक है। घर में छोटी बहू आयी है। सास, जेठानी और ननद भी घर में है जो छोटी बहू से हमेशा उल्टा सीधा बोलती रहती हैं। छोटी बहू पारिवारिक मर्यादा कापालन करते हुए सीधे कुछ नहीं बोलती। यह सब घर की छत की मुंडेर पर बैठा कौवा देखता रहता है और देखता है कि छोटी बहू की स्थति ठीक नहीं है और उसके प्रति संवेदनशीलता दिखाते हुए वह कहने लगता है–

ए! सासुजी ऐसी बिड़ही न बोलो
अभि तो मेरा ससुरा है प्यारा है।

कौवा जेठानी से कहता है—'ऐ! जेठानी जी ज्यादा उल्टा सीधा न बोलो अभी इस घर में मेरा भी आधा साझा है। और ननद से कहता है—'ज्यादा इधर उधर की बात न बोलो अभी ननद रानी अभी तुम्हें पराये घर भी जाना है। यह मत भूलो तब तुम्हें मेरे सहयोग की भी ज़रुरत पड़ेगी।'

अब आप सोचें कि क्या वास्तव में कौवा ने ऐसा बोला होगा? नहीं। लेकिन इससे एक बात जो पता चलती है वह यह है कि मनुष्य की इच्छा रहती है कि प्रकृति के दूसरे प्राणियों के साथ उसके ऐसे ही सम्बन्ध रहें की वे एक दूसरे का सहयोग करें। आड़े वक्त में एक दूसरे का साथ दें। पश्चिम बंगाल के सिलचर के आस पास शुभ कर्म के समय जब कोयल को निमंत्रण देने भेजते हैं—

×××

डाली बसी कोकिलाय
करे मधुर काओ
रूपसी माँ धाकर निमंत्राने
आगे पाठाओ पान
गंगा, दुर्गार निमंत्राने
आगे पाठाओ पान
उनकोट गणों निमंत्राने
आगे पाठाओ पान

तो क्या कोयल वास्तव में निमंत्रण देने जाती है? नहीं। लेकिन यह भारत की लोक दृष्टि है जो सृष्टि के प्रत्येक घटक को अपना आत्मीय मानती है। किसी का किसी के प्रति वैमनस्य नहीं है।

निरंतरता और अबाधता जीवन का नैसर्गिक गुण है। इसे बनाए रखने के लिए कोई घटक तत्व किसी दूसरे घटक तत्व के कार्य में बाधक नहीं बनता। इसलिए परस्पर कोई प्रतिस्पर्धा दिखाई

नहीं देती। कोई घटक दूसरे घटक की शक्ति को चुनौती भी नहीं देता। भारतीय लोकाचार, रीति रिवाज़, व्रत और त्यौहार सब प्रतीकात्मक दृष्टि से लोक जीवन के अनुभवों को भिन्न भिन्न रूपों में स्थायित्व देते हैं।

पृथिवी का आकार सीमित है। उसके गर्भ में जो कुछ भी उपयोगी है अकूत मात्रा मायम नहीं है। एक न एक दिन उसे समाप्त होना ही है। यह उपयोगी सामान लम्बे समय तक चलता रहे ताकि जीवन चलता रहे इसके लिए 'मितव्ययिता' को आवश्यक माना गया है। वस्तुओं के संग्रहण को चोरी माना गया है। धर्म के जो दस लक्षण माने गये हैं उनमें 'अस्तेय' को भी स्थान मिला है। इससे मनुष्य में अनियंत्रित उपभोग की भावना को बलवती होने से रोकने में सहायता मिलती है।

पश्चिमी विचारधाराओं में मनुष्य को केंद्रीय सत्ता मानने और उसे 'उपभोक्ता' के रूप में स्थापित कर देने के कारण वैश्विक जीवन में एक प्रतिस्पर्धा शरू हो गयी है। अनियंत्रित प्रतिस्पर्धा ने प्राकृतिक संसाधनों के दोहन और उनपर एक तरह से कब्ज़ा करने की प्रवृत्ति ने पूरे विश्व में व्यापक स्तर पर संघर्ष की स्थिति पैदा कर दी है। उपभोक्ताओं को निरंतर नए उत्पाद चाहिए। निरंतर नए उत्पाद आने के कारण कार्बन उत्सर्जन की मात्रा निरंतर बढती जा रही है। इससे पृथिवी पर जीवन को खतरा बढ़ रहा है। कार्बन उत्सर्जन की बढती मात्रा को कम करने के लिए जो प्रयास वैश्विक स्तर पर किये गये हैं| विकसित और ताकतवर देशों की तरफ से उन पर अमल न करने की या आवश्यकता से कम अमल में लाने की अघोषित घोषणा कर दी गयी है। जब कि भारत जैसे विकासशील देश ने कार्बन उत्सर्जन को कम करने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दिखाई है।

उपभोक्ता, उत्पादन, बाज़ार और पूँजी की इस अंधी दौड़ ने कोरोना जैसी माहामारी को जन्म देकर यह सिद्ध कर दिया है कि यदि इस अंधी और 'जीवन' को संकट में डालने वाली प्रतिस्पर्धा को रोकने के लिए आवश्यक है कि उन कारणों को समाप्त करने पर ध्यान दिया जाय जो अनियंत्रित उपभोग को बढ़ावा दे रहे हैं। उन विचारधाराओं को भी पुनरीक्षित करने की आवश्यकता है जिन्होंने मनुष्य को अनियंत्रित उपभोक्ता के रूप में स्थापित कर दिया है। यह तभी होगा जब पृथिवी के कण कण को जीवित और चैतन्य इकाई मानकर उसे भी उतना ही महत्व दिया जाय जितना मनुष्य को दिया जाता है।

प्राकृतिक व्यवस्थाएं आदान -प्रदान पर चलतीं हैं। प्रकृति से जताना लिया जाय उतना उसे वापस भी किया जाय। वापस करने में कठिनाई हो तो प्रायश्चित्त करने का कड़ा विधान हो। भारतीय मनीषियों ने एक वृक्ष को काटने पर ' ब्रह्म हत्या ' का पापी मानने का विधान किया था। क्या यह दकियानूसी विचार है ? नहीं। यह अकारण नहीं था। जीवन को बचाकर रखने का दूरदृष्टिपूर्ण विधान था। विधान यह भी था कि यदि गलती से भी गाय की हत्या हो जाय तो प्रायश्चित्त के तौर पर कम से कम सात गाँवों में भीख मांगकर खाना आवश्यक था। तभी पाप से मुक्ति संभव थी। भारत में यह सब विधान जीवन विधान के अंग के रूप में प्रचलित रहे हैं।

आज जब कि दुनिया बदलाव की ओर जा रही है नदियों की अबाधता के इंतज़ाम करना जरूरी हो गया है क्यों कि अबाधता ही नदियों की शुद्धता की गारंटी मानी जाती है। शंकर रुपी पर्वत शिखरों पर उनकी जटा रुपी वृक्षों को कटाने से कैसे बचाया जाय उसकी व्यवस्था करनी होगी। अर्थ संग्रहण, संसाधन संग्रहण और शक्ति संग्रहण के बजाय जीवन को चिरायुता और गतिशीलता देने वाले नए मार्ग खोजने की आवश्यकता होगी।

———•••———

पूर्व उपनिदेशक आकाशवाणी,
नई दिल्ली

अवधी लोकोक्तियों एवं लोकगीतों में ज्ञान-विज्ञान

—अखिलेश आर्येन्दु

हिंदी और संस्कृत भाषा में लोक का अर्थ विश्व, पृथ्वी, मानव जाति, निवास, प्रान्त और सांसारिक व्यवहार बताया गया है। इस संसार में प्रचलित सभी भाषाओं में तरह-तरह की इस प्रकार की बातें कही गई हैं जो उसकी संस्कृति, कला और समाज की स्थिति और विशेषताएँ बताती हैं। जब हम कृषि, समाज और संस्कृति की बात करते हैं और उसमें प्रचलित उक्तियों की बात करते हैं तब हमारा आषय लोकोक्तियों से होता है। इसी प्रकार लोक में आंचलिक बोली या भाष में जो जीवन और प्रकृति व समाज से सम्बंधित गीत जन गण मन में रसा-बसा होता है उन्हें लोकगीत कहा जाता है। विद्वानों के अनुसार लोक संस्कृति एवं कृषि संस्कृति में प्रचलित उक्तियों को ही मूलतः लोकोक्तियाँ कहते हैं। लोकोक्तियाँ वेद, पुराण और महाभारत जैसे महान् ग्रंथों में भी बड़े पैमाने पर वर्णित हैं। इसे कहावत, कथनी, मसल, कहकूल, फिरका और उक्ति कहा जाता है। जीवन के विविध विशय और परम्पराएँ भी इससे जुड़ी हुई हैं। भारत के ग्राम्य जीवन का पग-पग पर लोकोक्तियों और लोकगीतों से भरा पड़ा है। कृषि संस्कृति, कृषि-जीवन, समाज-धर्म और लोकविज्ञान लोकगीतों और लोकोक्तियों से भरा हुआ है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है बिना लोकगीतों एवं लोकोक्तियों के जीवन-प्रवाह की निरन्तरता बनी ही नहीं रह सकती है। इसलिए हजारों वर्षों से जनश्रुतियों के माध्यम से भी ये जीवंत और सर्वव्यापी बनीं हुई हैं।

हिंदी क्षेत्र में अवधी सबसे सशक्त और पुरातन आंचलिक भाषा और हिंदी की उपभाषा मानी जाती है। इसमें जितना शब्द भण्डार, कहावतें, गीत, संगीत, साहित्य, कला और संस्कृति की धाराएँ हैं वे अद्वितीय कही जा सकती हैं। यही कारण है दो सौ वर्ष पूर्व अवधी क्षेत्र के प्रवासी मजदूर मॉरीशस, ट्रिनीडाड, गुयाना, फिजी आदि देशों में मजदूरी के लिए अंग्रेजों द्वारा ले जाए गए, तो वे अपने अंतःचेतना में अपनी विरासत भी साथ लेते गए। आज भी इन देशों में अवधी लोक भाषा के रूप में तो जीवित है ही, अवधी संस्कृति कला, लोक साहित्य, लोकगीत, कहावतें और मुहावरों का प्रचलन भी वहां के अवधी समाज में देखा जा सकता है।

अवधी हिंदी से पुरानी भाषा कही जाती है। इसमें रामचरित मानस और पदमावत जैसे कालजयी ग्रंथों की रचना हुई है। यह एक सम्पूर्ण भाषा है। इसके अनेक शब्द यूरोपीय और भारतीय भाषाओं में भी मिलते हैं। इसी प्रकार इसकी कहावतों, लोकगीतों या लोकोक्तियों में भी विभिन्न भाषाओं में अनुदित हुई हैं।

जिस प्रकार अवधी भाषा की मिठास और व्यवहार-प्रियता जगजाहिर है उसी प्रकार अवधी की संस्कृति और जीवन्तता को भी सभी जानते और मानते हैं। अवधी क्षेत्र लाखों वर्षों से भगवान राम, माता सीता, राजा जनक, राजा हरिश्चंद्र, ऋषि भारद्वाज के कारण ही नहीं जाना जाता रहा है बल्कि साहित्यकारों, महान् यज्ञकारों, महान्

राजनीतिज्ञों, धर्मविदों और अद्वितीय विद्वानों के महान् कृतित्व और व्यक्तित्व के कारण जाना जाता रहा है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना अवधी क्षेत्र के पग-पग में आज भी देखी जा सकती है। अवधी ऐसी लालित्यपूर्ण, मृदुता-युक्त और संस्कृतिजन्य भाषा है जिसमें कहावतों, लोकगीतों या लोकोक्तियों की भरमार है। ये लोकोक्तियाँ दैनिक जीवन, परिवार, समाज से सम्बन्धित तो हैं ही खेती-किसानी के विविध पक्षों से भी सम्बन्धित हैं। उत्तम खेती के लिए असाढ़ का महीना सबसे अच्छा माना गया है लेकिन यह तभी उत्तम साबित होता है जब छोटा या बड़ा कोई भी व्यक्ति खेत में हल चलाकर उसमें अनाज बो दे। कहावत इस प्रकार है—

'असाढ़ जोते लड़के बारे,
सावन भादों तें हलवाहे,
कुवार में जोते किसान क बेटा
तब ऊँचे हो, होनहारे।

पग-पग पर लोकोक्तियों या कहावतों का प्रवाह यह बताता है कि हमारे पूर्वज कितने अनुभवी, ज्ञानी और विचारों के प्रखर पारखी थे। कृषि भारत की पहचान है। भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है। इसलिए कृषि से सम्बन्धित चीजें सबसे अधिक लोकजीवन में प्रचलित रही हैं। आज के वैज्ञानिक युग में किसान वर्ष भर में फसल-चक्र के अनुसार कई-कई फसलें उगा लेते हैं लेकिन एक समय ऐसा था जब वर्षा पर ही सारी कृषि आधारित हुआ करती थी। वर्ष में धान और गेहूं ही मुख्यतः बोये जाते थे। जहाँ पानी की अच्छी सुविधा हुआ करती थी। बहुत हुआ तो गन्ने की फसल उगा ली जाती थी ऐसे में धान, गेहूँ और गन्ने को लेकर अधिक कहावतें कहीं गईं जो स्वभाविक भी है। कृषि विज्ञान से सम्बंधित प्रस्तुत कहावत में धान को लेकर एक सीख दी गई है।

अद्रा रेड़ पुनर्वस पाती।
लगा चिरैया दिया न बाती।।

इसका अर्थ है - धान की फसल अद्रा नक्षत्र में बोने से बहुत बढ़िया होती है। मगर पुनर्वस नक्षत्र में बोने से मात्र पत्ती ही साथ आती है और चिरैया नक्षत्र में बोने से तो पत्ती भी साथ नहीं आती है। अर्थात दीया जलाने की सामर्थ्य भी समाप्त हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि समय से ही खेत की जुताई फिर बुवाई और फिर उसकी देखरेख बराबर करते रहना चाहिए।

अवधी लोकगीतों में देश के विकास का अत्यंत सुन्दर चित्रण किया गया है। स्वतंत्रता के उपरान्त किस तरह चहुँमुखी विकास हुआ इस अवधी विकास गीत में अत्यंत मनमोहक ढंग से प्रस्तुत है—

जब से स्वराज मिले
देस में विकास भइल
तिरिया का आइल
बाटे पाती रे संगतिया।
पतिया में लिखा बाटे
गंउआ बदलि गवा
हरी-हरी पतिया
सिंचाई रे संगतिया।

खरीफ में धान प्रमुख फसल है। इसमें वह धान ही बोना चाहिए जो कम-से-कम समय में अधिक पैदावार दे। इसके लिए साठ दिन में (साठी) धान बोने का परामर्श दिया गया है। आधुनिक कृषि विज्ञान में साठी धान बहुतायत में बोया जाता है -

अदरा माँ जो बोवे साठी।
दुखै मार निकारै लाठी।।

कहने का मतलब यह है कि अद्रा नक्षत्र में साठी धान बोने वाला कृषक कभी दुख नहीं पाता है। इस नक्षत्र में बोए गए धान की पैदावार बहुत अच्छी होती है। कहावत के माध्यम से सीख या प्रेरणा भी किसान को दी गई है। वह प्रेरणा जहाँ वर्षा को लेकर है वहीं पर वायु को लेकर भी है।

'अगहन बरसे हून
पूस बरसै दून,
माघ बरसै सवाई,
फागुन बरसै मूर गंवाई'।

किस महीने में वर्षा होने से फसल अच्छी होती है और किस महीने में फसल नष्ट हो जाती है उसके सम्बन्ध में इस कहावत में बताया गया है कि अगहन में वर्षा होने से अनाज दूना होगा, पूस में पानी बरसने से फसल अच्छी होगी, माघ के बसरने से सवाया अनाज होगा, मगर यदि फागुन में पानी बरसा तो जो अनाज बीज के रूप में खेत में बोया वह भी नहीं मिल पाएगा।

वर्षा होने और न होने से नक्षत्रों की इसमें क्या भूमिका है। अवधी के इस कहावत में बहुत वैज्ञानिक रूप द्रष्टव्य होता है। नक्षत्र विज्ञान का प्रयोग द्रष्टव्य है—

'असनी गलियाँ अन्न बिनासै,
गली रेवती जल को नासै।
भरनी नासै तृनी सहूतो कृतिका
बरसे अन्न बहूतो।।

अर्थात यदि चैत मास में पानी अश्वनी नक्षत्र में बरस जाय तो बरसात के अन्त में सूखा पड़ता है। यदि रेवती में बरसे तो नाम का ही पानी बरसता है, यदि भरनी नक्षत्र में बरसे तो जबरदस्त सूखा पड़ता है और यदि कृतिका नक्षत्र में बरसे तो अन्न की पैदावार खूब होती है।

इसी प्रकार एक अन्य कहावत में नक्षत्रों में पानी बरसने के परिणाम पर चर्चा की गई है—

अगहन पंचमी मेघ घटा भरि
सावन मां कौन मिटा।
माघे सत्तमी मेघ बदरिया
चारों मास बहे जल धरिया।।

इसका अर्थ है, यदि अगहन मास की पंचमी तिथि को घटा घिरी हो तो सावन में पानी खूब बरसेगा, यदि माघ की सप्तमी को मेघ छाए हों तो बरसात के चारों महीने भर पानी बरसेगा।

वर्षा को लेकर कहावतों में सटीक तथ्यपरक और अनुभव जन्य बात कही गई है। कोई भी व्यक्ति इसे झुठला नहीं सकता है।

असनी गल, भरनी गल,
गलियों में ज्येष्ठा मूर,
पुरवाषाढ़ा वचै धूल बिन,
उपजै सातौ तूर।।

अर्थात यदि अश्वनी, भरनी, ज्येष्ठा, मूल नक्षत्रों में घनघोर वर्षा हो चुकी है तो पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में धूल समाप्त हो चुकी होती है। परिणामतः सातों प्रकार के अन्नों की खूब उपज होती है। सातों अन्न इस प्रकार से हैं—जौ, गेहूं, मटर, मक्का, बाजारा, चना और ज्वार।

अकाल के लक्षण कितने वैज्ञानिक ढंग से कहावत में प्रस्तुत कहावत में वर्णित हैं। पढ़कर लगता है जिसने भी इसे बनाई होगी वह निश्चित ही बहुत ज्ञानवान एवं अनुभवी व्यक्ति रहा होगा। कहावत इस प्रकार है—

अगिन कोन जौ वहै समीरा,
पड़े अकाल दुख सहै सरीरा।
उत्तर से जल फूह परै,
चूहा, साँप दुइनों अवतरै।

इस का मतलब यह है कि अग्निकोण (पूर्व-दक्षिण दिशा का कोना) अवतरै का अर्थ है—पैदा होना। इस कहावत का अर्थ है यदि वर्षाकाल में हवा पूर्व दक्षिण के कोने से बहती है तो अकाल पड़ने के लक्षण हैं या उत्तर दिशा में झींसियां पड़े तो साँप चूहे दोनों बहुत बढ़ जाते हैं।

नक्षत्रों में पानी बरसने न बरसने का प्रभाव अन्न पर किस प्रकार पड़ता है निम्न कहावत में इसका वर्णन वैज्ञानिक ढंग से किया गया है।

अर्द्रा बरसे पुनर्वस जाय,
दीन अन्न कोऊ नहिं खाव।

यानी यदि अर्द्रा नक्षत्र में पानी बरसकर पुनर्वसु नक्षत्र में न बरसे तो ऐसे अनाज को यदि कोई देता भी है उसे प्रयोग नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसा अन्न विषैला हो जाता है।

नक्षत्र और वर्षा के सम्बन्ध को देखने के लिए कुछ और भी बातों पर ध्यान देना चाहिए। इस कहावत में बहुत अनुभव सिद्ध बात कही गई है—

असाढ़ सुदी हो नौमी
ना बादल ना बींज।
हर फारि ईंधन करौ,
बैठे चाबो बीज।।

यदि असाढ़ में उजाले पक्ष की नवमी को आकाश में बादल-बिजली नहीं है

तो खेतों में हल चलाना बेकार है। ऐसे समय में एक ही काम करना चाहिए कि हल को फाड़कर चूल्हे में जलाने वाली लकड़ी के रूप में प्रयोग करने के लिए रखना चाहिए। कहने का भाव यह है कि ऐसे नक्षत्र में जब इस प्रकार के लक्षण दिखाई पड़े तो समझना चाहिए इस वर्ष कृषि-कार्य नहीं होगा।

दैनिक जीवन में जो वस्तु उपयोगी होती है वही मूल्यवान अधिक समझी जाती है वनस्पति मूल्यवान सोना या जवाहरात के। प्रस्तुत कहावत में इसी बात की चर्चा की गई है।

अन्न धन अनेक धन,
सोना धन केतिक धन?

कभी अन्न का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। यह इस लिए भी क्योंकि इसको पैदा करने वाला कृषक होता है जो अन्न का देने वाला है। इसका एक भाव यह भी है कि कृषक का तिरस्कार कभी नहीं करना चाहिए। जितना ही किसान सुखी होगा देश उतना ही सुखी होगा।

अन्न धन मूल धन,
गहना धन आधा धन।
वस्त्र धन फूसफास,
ओहू म लागय बाधा।।

अच्छी फसल होने के कुछ विशेष प्राकृतिक लक्षण होते हैं। वे लक्षण विविध प्रकार के होते हैं। जो बुद्धिमान लोग (किसान) ये लक्षण जानते और समझते हैं वे इसका लाभ उठा लेते हैं। इस कहावत में इसी बात की चर्चा की गई है—

आकर कोदौं नीमजवा।
गांठर, गोहूं, बेर, चना।।

ये सातों अनाज इस प्रकार के हैं जो कहावत में वर्णित हैं - गेहूं, जौ, मटर, चना मक्का, ज्वार एवं बाजारा। इनकी अच्छी पैदावार के बारे में बताते हुए कहा कहा गया है कि जिस वर्ष मदार का पेड़ खूब फले उस वर्ष समझना चाहिए कि कोदों भी खूब पैदा होगी। जिस वर्ष नीम खूब फले, उस वर्ष जौ की पैदावार खूब होती है। और जिस वर्ष गांडर घास अधिक हो उस वर्ष गेहूं की फसल खूब होती है। जिस वर्ष बैर खूब फली हो उस वर्ष चने की पैदावार बहुत अच्छी होती है।

फसल-चक्र में कौन सी फसल कब बोनी चाहिए और कब नहीं बोनी चाहिए इसे कहावत के माध्यम से कितने अच्छे तरीके से बताया गया है। यह बात विज्ञान भी मानता है।

आस पास रबी बीच में खरीफ।
नोन मिर्च डालकर रख गया हरीफ।।

फसल-चक्र में प्रमुख रूप से तीन फसलें मानी गई हैं—रबी, खरीफ व जायद। इन तीनों को कब कहाँ उगाना चाहिए इस कहावत में बताया गया है। यानी पलिहर (जानवरों को चराने की जगह) जो खेत कुछ समय के लिए बिना बोए छोड़ दिया जाय वह अधिक उर्वरा शक्ति वाला बन जाता है और कड़कड़ी मिट्टी भुरभुरी हो जाती है। ऐसी मिट्टी में खरीफ की फसल उगाने (बोने) पर फसल अच्छी होती है। ऐसी फसल को छुट्टा साड़ भी ऐसे चरता है जैसे कि उस हरियाली में किसी ने नमक-मिर्च डालकर उसे और भी स्वादिष्ट बना दिया है।

अकाल पड़ने और वर्षा के लक्षण एक-दो कहावतों में नहीं बल्कि अवधी भाषा के अनेक कहावतों में वर्णित है—

आसाढ़ी पूनों की सांझ,
वायु देखिए नभ के मांझ।
नैऋत भर बूंद परय
राजा-परजा भूखन मरय।।

इस कहावत में अकाल के लक्षण इस प्रकार बताए गए हैं—असाढ़ की पूर्णमासी की संध्या के समय आकाश में हवा देखने से ज्ञात होता है कि हवा का झोंका किस तरफ है। यदि झोंके के साथ हवा चले तो समझो कि वर्षा बिलकुल नहीं होगी। सभी लोगों को भूखों रहना पड़ सकता है।

अवधी लोकगीतों में जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं जिस पर लोकगीत न लिखे गए हों। ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति व समाज तो है ही, मानव मूल्यों और देश व समाज के विकास पर भी सैकड़ों लोकगीत मिल जाते हैं। चन्द्रमा और उसके प्रकाष के सम्बंध में जिज्ञासा का एक चित्रण द्रष्टव्य है—

"कि एक दिन स्याम से पूछेन,
अँजोरिया कैसन होत है,
कि जइसे माथे की बिंदिया,
अँजोरिया वैसन होत है,
कि एक दिन स्याम से पूछेन,
अँधेरिया कैसन होत है,
कि जइसे आँखि कै कजरा,
अँधेरिया वैसेन होत है।"'

उपयुक्त समय पर ही कार्य की सिद्धि होती है। यदि समय पर खेत में अन्न नहीं बोया तो फसल कैसे कोटोगे और विद्या

नहीं पढ़ी तो अच्छा सम्मान व पद कैसे प्राप्त होगा।

आछे दिन पाछे गये,
हरि से किया न हेत।
अब पछताये होत का
चिड़िया चुग गई खेत।।

सभी मनुष्य एक समान नहीं होते। कर्म से वह देवता बनता है तो प्रेत भी वही बनता है। देवता बन कर वह सबका पूज्य बन जाता है और प्रेत बनकर सबके के लिए दुखदायी बन जाता है। कहावत में इसी बात को इस प्रकार से कहा गया है।

मनई-मनई सबै मनई
मा अहै भेद,
केऊ मनई अहय देवता,
केऊ अहै परेत।

इसी बात को दूसरे ढंग से इस प्रकार कही गई है—

सज्जन से सज्जन मिले,
होवे दो-दो बात।
गदहा से गदहा मिले,
खावे दो-दो लात।।

किसान को बैल कैसा खरीदना चाहिए इस पर भी अनुभवजन्य बात इस कहावत में कही गई है—

इनको कबहूं न लीजिए,
मुफ्त देय चाहे कोय,
सात दाँत उदंत का,
बैल जो काला होय।।

अर्थात जिस बैल का रंग काला हो और जो सात दाँतों वाला हो अथवा दंत रहित हो उसे कभी भी नहीं खरीदना चाहिए। इस प्रकार की कहावतें अवध-क्षेत्र में आज भी खूब प्रचलित हैं। किसान बैल खरीदते समय आज भी इस कहावत से प्रेरणा लेते हैं। एक और कहावत बैल सम्बन्धी—

उजर बरौनी, मुंह का महुआ
ताहि देखि हरवाहा डरुवा।

ऊपरी तड़क-भड़क और साफ-सफाई पर कभी रीझ नहीं जाना चाहिए। क्योंकि इसमें अक्सर धोखा होता है। बहुत समझ-बूझकर ही खरीदना चाहिए। दान देते समय भी यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए। नाम के लिए दान दें रहे हैं कि वास्तव में दान देने की पवित्र भावना से दान दिया जा रहा है। कहावत है—

उजरी धोतिया जिन
पतियाय तर लगुरिव बा।

यानी ऊपरी चमक-दमक दिखने वाली वस्तु पर विश्वास कभी नहीं करना चाहिए। इसी बात को किसी ने इस प्रकार भी कहा है—

"न भूलें देखकर के आप
ऊपर की सफाई पर,
बरक सोने का चिपकाया है,
गोबर की मिठाई पर।"

यदि दैव का कोप हो जाए, वर्षा न हो, खेती सूख जाय, स्त्री अपने पिता के घर हो, पुत्र परदेश गया हो और घर का स्वामी बीमारी के कारण खाट पर पड़ा हो तो इससे बढ़कर दूसरी कोई भी आपत्ति नहीं हो सकती है।

जात-पाँत के विरुद्ध और प्रेम की महत्ता पर पुराने समय से कहावतें कहीं जाती रही है। यह कहावत इन्हीं दोनों पर है—

प्रेम प्रीति से जो मिलै,
तासों मिलिये धाय।
अंतर राखे जो मिलै,
तासों मिले बलाय।।

और जन्मगत जाति की निरर्थकता पर यह लोकोक्ति—

क्यों जाति लै के चाटे,
तन जरय मन धूर फाँके।

वर्षा समाप्त होने के लक्षण भी कहावतों में बहुत मार्मिक ढंग से बताए गए हैं। लक्षण देखिए -

उए अगस्त फूले बन कासा,
अब छोड़ो वर्षा की आसा।

अर्थात आकाश में अगस्त तारा जब उदय हो चुका हो, तो समझना चाहिए अब आगे वर्षा नहीं होगी।

वर्षों से ही कर्ज लेना पाप माना गया है। क्योंकि कर्ज का पैसा कभी टिकाऊ नहीं होता। यह कहावत भी यही प्रेरणा दे रही है -

उधार क खाब,
फूस क तापब एक्के आय।

यानी घास की आग भला कितने समय टिकती है। जली नहीं कि अगले क्षण बुझ जाती है। उसी प्रकार ऋण लिया कि पैसा समाप्त हुआ पुनः पूर्व स्थिति आ जाती है।

जल्दबाजी में कोई कार्य नहीं करना चाहिए। क्योंकि जल्दबाजी में किया गया कार्य अधिकाषंतः सफल नहीं होते हैं। कहावत में इसी का उल्लेख किया गया है—

उतकही कोंहारिन
नाखून से माटी खोदै।

मतलब, यह कि कुम्हारिन इतनी जल्दी में है कि मिट्टी का बर्तन बनाने का

साधन यानी मिट्टी को खुरपे और कुदाल से खोदने के बजाय अपने नाखून से खोदने लग गई कि इससे जल्दी हो जाएगी।

अन्न और स्त्री (पत्नी) की विशेषता लोकोक्तियों में बहुत ही लाक्षणिक ढंग से कही गई है। यह एक प्रेरणाप्रद लोकोक्ति है—

उर्द की उर्दी भली,
रस की अच्छी खीर।
लाज जो रखे पिया की
वह भी अच्छी बीर।

इसका अर्थ है कोहड़ौरी (बरी) उर्द की अच्छी होती है, और गन्ने के रस की खीर। जिसे अवध के गांवों में रसियाव कहते हैं अच्छी होती है। जो नारी अपने पति की मर्यादा को निभाए वही पतिव्रता महिला है।

ईख और धान की विशेषता वाली कहावत गाँवों में आज भी कही जाती है। ईख और गन्ने की अच्छी किस्म के सम्बन्ध में इसमें वर्णन किया गया है—

ऊख सरौती देहुला धान
इनहें छोड़ि जिनि बोया आन।

अर्थात सरौती किस्म की ईख व देहुला धान बोने में बड़े लाभ हैं। इनको छोड़कर अन्य किस्म के गन्ने और धान नहीं बोने चाहिए।

ऊसर में खेती करना बीज को बेकार करने के समान है। इस लिए उपजाऊ जमीन में ही खेती करना चाहिए।

ऊसर कृषि बउरहा भाय,
घाघ कहै दुख कहाँ समाय?

यानी ऊसर खेत में खेती करना तथा महामूर्ख पागल सरीखे भाई होना अथाह दुख का कारण होता है। ऐसा दुख अत्यंत दुखदायक होता है।

ऊबड़-खाबड़ में बीज बोने से जो कुछ पैदा हो जाय उसी में संतोष कर लेना चाहिए। क्योंकि अच्छी भूमि न होने से इसमें अच्छी फसल होने की गुंजाइष नहीं होती है। कहा गया है—

ऊँच-नीच मां बोई क्यारी
जो उपजे सो भई हमारी।

प्रकृति के बदलते रंग को देखकर ज्ञानीजन ऋतु या मौसम का अनुमान लगा लेते हैं। इस कहावत में इसी बात की चर्चा की गई है।

एक मास ऋतु आगे धावै/ आधा जेठ असाढ़ कहावै। यानी मौसम या ऋतु एक माह पूर्व ही अपना प्रभाव व्यक्त करने लगते हैं। आधे ज्येष्ठ से ही बादलों की बूँदाबांदी प्रारम्भ हो जाती है। और उसे असाढ़ की संज्ञा मिलने लगती है।

खेती-किसानी में आज भी गांवों में अधिकांश खेती बैलों से होती है। बैल कैसे होने चाहिए इस पर हमारे पुरखों ने अनेक कहावतें अपने अनुभव से बनाईं।

एक कहावत में कहा गया है कि किसान को बूढ़े बैल से किसानी नहीं करनी चाहिए। क्यों की इससे हमेषा हानि होने की संभावना होती है। बूढ़े बैल के स्थान पर अच्छा हो कुदाल से खेत की गोड़ाई करके बीज बोना चाहिए। कहावत है—

एक बात तुम हमारी
बूढ़े बैल से भली कुदारी।

कौन सा बैल अच्छा होता है? अच्छे बैल के लक्षण क्या होते हैं, कहावत में इसका बहुत तर्कसंगत वर्णन किया गया है—

करिया काछी धोरे(झबरे) कान,
इन्हय छांड़ि नहिं बेसह आन।

काछी यानी कसने वाली वस्तु। पूँछ से मतलब धौरे सफेद रंग की लम्बे कान वाले। अर्थात बैल काली पूँछ तथा सफेद झबरे कान का ही खरीदना चाहिए।

परम्परा के विपरीत कार्य करने से हानि ही हानि है। जिसका जो कार्य है, जिसकी जो योग्यता है वैसा ही कार्य करना अच्छा होता है। इस कहावत में इसी बात की चर्चा की गई है।

ओझा किमिया, बैद किसान,
आँडू बैल तो खेत मसान।

इसका अर्थ है, यदि कामगार मजदूर ओझाई या झांड़-फूंक करने लग जाये, किसान बैद्यकी का कार्य करने लगे और बैल बिना बधिया के हो तो समझ लेना चाहिए की वह खेती क्या रह जाएगी— श्मशान घाट बन जाएगी।

उस खेत का बीज भी नष्ट हो जाता है जो कच्चा जोता गया हो। इस लिए अच्छी तरह पके खेत को ही जोतकर बुद्धिमान कृषक बीज बोता है।

कच्चा खेत न जोतै कोई
नाहीं बीज न अंकुर होई।

जो जिस कार्य के लिए बना है यदि वहीं कार्य करता है तो वह अच्छा लगता है। इस कहावत में यही बात बताई गई है -

करघा बीच जोलाहा सौहै
हल पर सोहै हाली,
फौजन बीच सिपाही सोहैं,
बागन सोहै माली।

जुलाहा करघे के बीच, किसान हल के बीच, सेना के साथ सिपाही और बागों में माली सोहते (अच्छे) लगते हैं।

किसान और परोपकारी व्यक्ति को हर ऋतु और परिस्थिति में अपने कार्य

के लिए तैयार रहना चाहिए, उसे चाहे कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े। यहाँ तक कि माघ महीने की बदली और क्वार का घाम (धूप) जो अत्यंत कष्टकारी होते हैं सहना पड़ सकता है।

माघ पूस की बादरी
और कुँवारी घाम।
ये तीनों जो सहै तौ
करै पराया काम।।

एक श्रेष्ठ कृषक की क्या पहचान है प्रस्तुत लोकोक्ति में अच्छी प्रकार से बताया गया है—

बाँध कुदारी खुरपी हाथ,
लाठी हँसिया राखै साथ।
काटे घास और खेत निरावै,
सो पूरा किसान कहलावै।।

इसका अर्थ है, किसान को कंधे पर कुदाल, हाथ में खुरपी रखना चाहिए। साथ ही उसे लाठी व हँसिया भी रखने चाहिए। खेत पर जाकर उसे खर - पतवार निकालना चाहिए। निराई खेत की करके सफाई करते रहना चाहिए और घास छीलकर खेत को बाहरी फालतू चीजों को निकाल देना चाहिए।

किसान को कार्तिक महीने में जुताई कर देनी चाहिए। तभी खेती अच्छी होती है—

कार्तिक मास रात हल जोतो,
टांग पसार घर मत सूतो।

रबी की फसल चैत में और खरीफ की फसल क्वार महीने में पैदा होती है। यदि इन दोनों महीनों में अच्छी फसल हो गई तो किसान कर्ज लेकर चुकता कर देता है। इस कहावत में इसका बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है—

कुवार, चइत के भरोसे
किसान कर्जा लेवा करत।

किसान पर विपत्ति तब आती है जब हर चीज विपरीत दिखाई देती हैं। इस लोकोक्ति में—

कोपै दई मेघ न होय,
खेती सूखै नइहर जोय।
पूत बिदेसे, खाट पैकंत,
घाघ कहै ई बिपत्ति क अंत।।

आज देश विश्व में एक महाशक्ति के रूप में उभर रहा है। इसका श्रेय हमारे देश के किसानों, उद्योगपतियों और वैज्ञानिकों को जाता है। लोकगीत में इसकी छटा द्रष्टव्य है—

कि देसवा बढ़त जात बा
चदरमा पर फहरावे तिरंगा।
खेती करके अन्न उपजावैं
करई देस की सेवा
कल कार खानों से बढ़त जात बा
अपने देस में माया
कि अपने वैज्ञानिकन पर गरब
हमई बनल प्रभुताई मितवा।

इसी प्रकार अवधी लोकगीतों में विज्ञान की उपलब्धियों पर भी अत्यंत प्रेरक भावों की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। किस प्र्रकार षिक्षा के माध्यम से विज्ञान की उपलब्धियां घर-घर पहुंची प्रस्तुत लोकगीत में देखिए—

बढ़ा विज्ञान देश में
शिक्षा का प्रभुताई मितवा।
सौ मनई का बोझा भइया
पल में उठावई क्रेन
घर में बइठे सब दुनिया का
समाचार सब सुनते,
तीस दिना का सफर आप
अब दुई घंटा में करते
पिया परदेषी हरदम दुलहिन
से बतियाई मितवा।

विज्ञान ने आम जीवन पर किस प्रकार असर डाला है और आमजन विज्ञान की उपलब्धियों से अनेक सुख के संसाधनों का उपयोग किस तरह किया है। आज भारत चन्द्रमा पर चन्द्रयान और सूर्य पर आदित्ययान के माध्यम से अनेक तरह के रहस्यों को खोज रहा है। पूरा भारत इसे अचरज भरी दृष्टि से देख रहा है। देखिए अवधी लोकगीत में इसका वर्णन—

सरस्वती माता मिलीं
बइठो दुकान पर
करते हैं विश्वास वैज्ञानिक
अपने विज्ञान पर
पहुंच गए हैं वैज्ञानिक
चनरमा धाम पर
कइसन मषीन बनाइ दिहेन,
अचरज महान पर

इसी प्रकार विज्ञान ने अनेक असंभव माने जाने वाले रहस्यों का रहस्य प्रकट कर दिया। आज सृष्टि का रहस्य पता लगाया जा रहा है। इस लोकगीत में देखिए—

भगवान ने बनाई इ
कुदरत का ढांचा रे।
केहू इसका रहस्य न जानइ
इ पक्का बा या कांचा रे।
मान चुनौती विज्ञानिकों ने
खोज शुरू कर दीनी रे
कुदरत की चादर केहू बनावइ
ओकर कइसी दीनी रे।

इस प्रकार अवधी कहावतों, लोकोक्तियों और लोकगीतों में अनेक प्रकार के संदर्भ और विषय समाहित हैं। जो अवध के जन जीवन में आज भी बड़े सुरुचि के साथ गाए-बजाए जाते हैं।

———•••———

लेखक कवि, साहित्यकार, संस्कृतिवेत्ता और पर्यावरण संरक्षण से जुड़े हैं।

वाचिक परंपरा में विज्ञान के विविध आयाम

— डॉ. शैलेश शुक्ला

भारत की वाचिक परंपरा ने वैज्ञानिक ज्ञान और तकनीकी उन्नति के संरक्षण और संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस परंपरा के माध्यम से ज्ञान को मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी संचारित किया गया, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि यह ज्ञान सुरक्षित रहे और अगली पीढ़ियों तक पहुँच सके। वाचिक परंपरा का महत्व केवल ज्ञान के संरक्षण तक ही सीमित नहीं था, बल्कि यह समाज में नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को स्थापित करने का भी एक महत्वपूर्ण साधन था। वैदिक साहित्य, जिसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद शामिल हैं, का संकलन और संचारण मौखिक रूप से किया गया। इन ग्रंथों में खगोल विज्ञान, गणित, चिकित्सा और कृषि विज्ञान जैसे विभिन्न विषयों का विस्तृत वर्णन मिलता है (ऋग्वेद, 2005; यजुर्वेद, 2006; सामवेद, 2007; अथर्ववेद, 2006)[1,2,3,4]

रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में भी विज्ञान की झलक मिलती है। रामायण में पुष्पक विमान और संजीवनी बूटी का वर्णन है, जबकि महाभारत में कर्ण के जन्म की कथा और अर्जुन के दिव्यास्त्रों का उल्लेख है (रामायण, 1998; महाभारत, 2000)[5,6]। आयुर्वेद, जिसे भारतीय चिकित्सा प्रणाली का आधार माना जाता है, का विकास भी वाचिक परंपरा के माध्यम से हुआ। चरक संहिता और सुश्रुत संहिता में चिकित्सा विज्ञान के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत वर्णन है (चरक, 2007; सुश्रुत, 2008)[7,8]। शुल्ब सूत्र भारतीय गणित का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं, जिनमें ज्यामिति और अंकगणित के सिद्धांतों का वर्णन है (शुल्ब सूत्र, 2003)[9]।

वाचिक परंपरा ने भारतीय समाज में ज्ञान के संचारण का एक प्रभावी साधन प्रदान किया। इस परंपरा ने न केवल वैज्ञानिक उन्नतियों और आविष्कारों को संरक्षित किया, बल्कि समाज में नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को भी स्थापित किया। आज भी, वाचिक परंपरा का सांस्कृतिक और शैक्षिक महत्व बरकरार है और यह हमारी सांस्कृतिक और वैज्ञानिक धरोहर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

भारत की वाचिक परंपरा का इतिहास अत्यंत प्राचीन और समृद्ध है। यह परंपरा हजारों वर्षों से चली आ रही है और इसमें ज्ञान और विज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वाचिक परंपरा का विकास तब हुआ जब लेखन की सुविधा उपलब्ध नहीं थी और ज्ञान एवं विज्ञान को मौखिक रूप से संचारित किया जाता था। इस परंपरा ने वैज्ञानिक ज्ञान के संरक्षण और संचारण की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वाचिक परंपरा में विज्ञान का विस्तृत अध्ययन इस लेख का मुख्य उद्देश्य है।

वाचिक परंपरा का अर्थ है मौखिक रूप से ज्ञान का संचारण। भारतीय संस्कृति में वाचिक परंपरा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वैदिक मंत्रों से लेकर शास्त्रीय ग्रंथों तक, सब कुछ पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से संचारित होता रहा। प्राचीन भारतीय समाज में, लेखन सामग्री का अभाव था, और उस समय वाचिक परंपरा ही ज्ञान के संचारण का प्रमुख साधन थी। गुरुकुल प्रणाली, जिसमें शिक्षक अपने छात्रों को मौखिक रूप से शिक्षा देते थे, इस परंपरा का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थी। इस प्रणाली में न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक ज्ञान का संचारण होता था, बल्कि विज्ञान, गणित, खगोल विज्ञान, और चिकित्सा जैसे विषयों का भी ज्ञान दिया जाता था (शर्मा, 2004)[10]।

वाचिक परंपरा का एक महत्वपूर्ण पहलू यह था कि यह ज्ञान को सुरक्षित और संचारित करने का एक प्रभावी साधन था। मौखिक रूप से ज्ञान का संचारण करने से यह सुनिश्चित होता था कि ज्ञान को सही तरीके से संरक्षित और संचारित किया जा सके। इसके साथ ही, यह ज्ञान को संचारित करने का एक ऐसा माध्यम था जो समय और स्थान की सीमाओं से मुक्त था। ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संचारित करने के लिए वाचिक परंपरा का उपयोग किया जाता था, जिससे यह सुनिश्चित होता था कि ज्ञान का सही और सटीक रूप में हस्तांतरण हो सके।

वाचिक परंपरा का महत्व केवल ज्ञान के संरक्षण और संचारण तक ही सीमित नहीं था, बल्कि यह समाज में नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को स्थापित करने का भी एक महत्वपूर्ण साधन था। वाचिक परंपरा के माध्यम से समाज में नैतिकता, धर्म, और संस्कृति के मूल्यों का प्रसार होता था। इसके माध्यम से समाज के सभी वर्गों तक ज्ञान और शिक्षा का संचारण होता था, जिससे समाज में एकता और समरसता बनी रहती थी। प्राचीन भारतीय समाज में वाचिक परंपरा का यह महत्व आज भी जीवित है और इसे संरक्षित रखने की आवश्यकता है।

भारत की वाचिक परंपरा में विज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वैदिक साहित्य भारतीय वाचिक परंपरा का एक प्रमुख स्रोत है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में विज्ञान के विभिन्न पक्षों का उल्लेख मिलता है। इन ग्रंथों में खगोल विज्ञान, गणित, चिकित्सा, कृषि और वास्तुकला जैसे विषयों पर विस्तृत जानकारी दी गई है। उदाहरण के लिए, ऋग्वेद में सूर्य और चंद्रमा के गमन का वर्णन (ऋग्वेद, 2005)[11], यजुर्वेद में चिकित्सा और औषधियों का विवरण (यजुर्वेद, 2006)[12], सामवेद में संगीत और ध्वनि विज्ञान (सामवेद, 2007)[13], तथा अथर्ववेद में कृषि और वनस्पति विज्ञान का उल्लेख मिलता है। इन सभी ग्रंथों का संकलन और संचारण मौखिक रूप से किया गया, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि ज्ञान का संरक्षित रूप में हस्तांतरण हो सके।

रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में भी विज्ञान की झलक मिलती है। रामायण में पुष्पक विमान का वर्णन (रामायण, 1998)14 एक अद्वितीय वैज्ञानिक उन्नति को दर्शाता है। महाभारत में कुंती द्वारा सूर्य से कर्ण के जन्म की कथा और अर्जुन के दिव्यास्त्रों का वर्णन विज्ञान की उन्नतियों का प्रतीक है (महाभारत, 2000)[15]। इन ग्रंथों ने वाचिक परंपरा के माध्यम से विज्ञान के महत्वपूर्ण सिद्धांतों और आविष्कारों को संजोए रखा।

आयुर्वेद भारतीय चिकित्सा पद्धति का एक प्राचीन विज्ञान है, जिसे आचार्य चरक ने विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया। चरक संहिता आयुर्वेद का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें चिकित्सा विज्ञान के विभिन्न पहलुओं का वर्णन है (चरक,

2007)[16]। आचार्य चरक ने इस ग्रंथ को वाचिक परंपरा के माध्यम से संरक्षित किया, जिससे यह ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता रहा।

शुल्ब सूत्र भारतीय गणित का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इसमें ज्यामिति और अंकगणित के सिद्धांतों का वर्णन है। भारतीय गणितज्ञ बौधायन, अपस्तम्ब और कात्यायन ने शुल्ब सूत्रों के माध्यम से गणितीय ज्ञान को वाचिक परंपरा के द्वारा संरक्षित किया (शुल्ब सूत्र, 2003)[17]। पाई के मान का सटीक वर्णन और ज्यामितीय आंकलन की विधियों का उल्लेख शुल्ब सूत्रों में मिलता है।

आचार्य सुश्रुत भारतीय शल्य चिकित्सा के जनक माने जाते हैं। उनकी संहिता, सुश्रुत संहिता, शल्य चिकित्सा के विभिन्न पहलुओं को कवर करती है। आचार्य सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा की तकनीकों को वाचिक परंपरा के माध्यम से संजोया और उनके शिष्यों ने इस ज्ञान को आगे बढ़ाया। उनके योगदानों में प्लास्टिक सर्जरी, मोतियाबिंद की शल्य चिकित्सा, और हड्डियों की चिकित्सा शामिल हैं (सुश्रुत, 2008)[18]।

भारतीय खगोल विज्ञान का भी वाचिक परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान है। आर्यभट, वराहमिहिर और भास्कराचार्य जैसे महान खगोलशास्त्रियों ने अपने ज्ञान को वाचिक परंपरा के माध्यम से संरक्षित और संचारित किया। आर्यभट का 'आर्यभटीयम' (आर्यभट, 1997)[19] और वराहमिहिर का 'बृहत्संहिता' (वराहमिहिर, 2003)[20] भारतीय खगोल विज्ञान के अद्वितीय ग्रंथ हैं, जिनमें ग्रहों की गति, ग्रहणों का वर्णन और काल गणना का विस्तृत विवरण है।

वाचिक परंपरा आज भी भारतीय समाज में जीवित है, हालांकि इसकी भूमिका और स्वरूप बदल गए हैं। आधुनिक तकनीकी उन्नतियों ने ज्ञान के संचारण के नए माध्यम प्रदान किए हैं, लेकिन वाचिक परंपरा का सांस्कृतिक और शैक्षिक महत्व अभी भी कायम है। भारतीय समाज में मौखिक ज्ञान के संचारण की परंपरा अभी भी गुरुकुलों, पंडितों और धार्मिक अनुष्ठानों के माध्यम से जारी है।

भारत की वाचिक परंपरा में विज्ञान का स्थान अद्वितीय और महत्वपूर्ण है। इस परंपरा ने न केवल ज्ञान के संरक्षण में मदद की है, बल्कि वैज्ञानिक उन्नतियों और आविष्कारों को भी प्रोत्साहित किया है। वैदिक साहित्य, महाकाव्य, आयुर्वेद, गणित और खगोल विज्ञान जैसे विभिन्न क्षेत्रों में वाचिक परंपरा के योगदान को समझना और उसका मूल्यांकन करना आवश्यक है। वाचिक परंपरा की इस धरोहर को संरक्षित करना और नई पीढ़ियों को इससे अवगत कराना हमारी सांस्कृतिक और वैज्ञानिक धरोहर की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है।

महाकाव्यों में विज्ञान

भारतीय महाकाव्यों में विज्ञान का उल्लेख स्पष्ट और विस्तृत रूप से मिलता है। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्य न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व रखते हैं, बल्कि इनमें विज्ञान और तकनीकी उन्नति की झलक भी मिलती है। इन महाकाव्यों में विभिन्न प्रकार की वैज्ञानिक अवधारणाओं और आविष्कारों का वर्णन है, जो उस समय के वैज्ञानिक दृष्टिकोण और प्रगति को दर्शाते हैं।

रामायण में विज्ञान

रामायण में विज्ञान और तकनीकी उन्नति का वर्णन विशेष रूप से अद्वितीय है। वाल्मीकि द्वारा रचित इस महाकाव्य में कई वैज्ञानिक तथ्यों का उल्लेख मिलता है। सबसे प्रमुख उदाहरण है पुष्पक विमान का वर्णन। यह विमान एक अद्वितीय उड्डयन यंत्र था, जो हवाई यात्रा करने में सक्षम था (रामायण, 1998)। पुष्पक विमान का वर्णन एक ऐसी तकनीकी उन्नति को दर्शाता है, जो उस समय के लिए अद्वितीय थी। यह विमान रावण के पास था और बाद में राम द्वारा उपयोग किया गया।

रामायण में वानर सेना और उनकी युद्ध तकनीकों का भी उल्लेख मिलता है, जो एक प्रकार की सैन्य विज्ञान की उन्नति को दर्शाता है। इसके अलावा, संजीवनी बूटी का उल्लेख भी मिलता है, जिसका उपयोग लक्ष्मण को पुनर्जीवित करने के लिए किया गया था। यह आयुर्वेदिक चिकित्सा विज्ञान का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है (रामायण, 1998)।

महाभारत में विज्ञान

महाभारत में भी विज्ञान और तकनीकी उन्नति का विस्तृत वर्णन मिलता है। यह महाकाव्य वेदव्यास द्वारा रचित है और इसमें कई वैज्ञानिक तथ्यों और अवधारणाओं का उल्लेख है। महाभारत में कर्ण के जन्म की कथा विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। कर्ण का जन्म कुंती द्वारा सूर्य से हुआ था, जो एक

प्रकार की जनन विज्ञान की उन्नति को दर्शाता है (महाभारत, 2000)। इसके अलावा, अर्जुन के दिव्यास्त्रों का वर्णन भी महाभारत में मिलता है। ये दिव्यास्त्र एक प्रकार के अद्वितीय हथियार थे, जिनमें अत्यधिक विनाशकारी शक्ति थी।

महाभारत में भीम द्वारा चक्रव्यूह को तोड़ने की कला का वर्णन एक प्रकार की सैन्य विज्ञान की उन्नति को दर्शाता है। इसके अलावा, द्रोणाचार्य द्वारा पांडवों और कौरवों को दी गई शिक्षा भी एक प्रकार की युद्ध विज्ञान की उन्नति को दर्शाती है। इस महाकाव्य में कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया गीता उपदेश भी एक प्रकार का मानसिक और आध्यात्मिक विज्ञान है, जिसमें जीवन के गूढ़ रहस्यों और उनके समाधानों का वर्णन है (महाभारत, 2000)।

आयुर्वेद और चिकित्सा

महाकाव्यों में आयुर्वेद और चिकित्सा विज्ञान का भी उल्लेख मिलता है। रामायण में संजीवनी बूटी का उल्लेख, जिसका उपयोग लक्ष्मण को पुनर्जीवित करने के लिए किया गया था, आयुर्वेदिक चिकित्सा विज्ञान का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है (रामायण, 1998)। महाभारत में भी द्रोणाचार्य और अन्य योद्धाओं के इलाज के लिए आयुर्वेदिक औषधियों का उपयोग किया गया था। यह दर्शाता है कि उस समय चिकित्सा विज्ञान कितना विकसित था और इसका प्रभाव कितना व्यापक था।

खगोल विज्ञान

महाकाव्यों में खगोल विज्ञान का भी उल्लेख मिलता है। रामायण में कई

स्थानों पर ग्रहों और नक्षत्रों की स्थिति का वर्णन है, जो उस समय के खगोल विज्ञान की गहरी समझ को दर्शाता है (रामायण, 1998)। महाभारत में भी ग्रहण और ग्रहों की चाल का उल्लेख मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय खगोल विज्ञान का ज्ञान कितना विस्तृत और सटीक था (महाभारत, 2000)।

अंतत: यह कहा जा सकता है कि महाकाव्य रामायण और महाभारत में विज्ञान और तकनीकी उन्नति का व्यापक और विस्तृत वर्णन मिलता है। इन महाकाव्यों में उड्डयन, सैन्य विज्ञान, आयुर्वेदिक चिकित्सा, खगोल विज्ञान और जनन विज्ञान जैसे विभिन्न वैज्ञानिक अवधारणाओं का उल्लेख है। यह दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय समाज में विज्ञान का कितना महत्वपूर्ण स्थान था और उस समय के लोग विज्ञान की गहरी समझ और प्रगति से परिपूर्ण थे। इन महाकाव्यों के माध्यम से हमें उस समय की वैज्ञानिक उपलब्धियों और उनकी महत्ता का ज्ञान होता है, जो आज भी हमारे लिए प्रेरणा स्रोत हैं।

आयुर्वेद और वाचिक परंपरा

आयुर्वेद, जिसे भारतीय चिकित्सा प्रणाली का आधार माना जाता है, का इतिहास प्राचीन काल से जुड़ा हुआ है। आयुर्वेद का विकास वैदिक काल में हुआ और इसे वाचिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संचारित किया गया। वाचिक परंपरा के माध्यम से आयुर्वेदिक ज्ञान का संरक्षण और संवर्धन किया गया, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि यह ज्ञान सुरक्षित रहे और आने वाली पीढ़ियों को हस्तांतरित हो सके।

आयुर्वेद का परिचय

आयुर्वेद का शाब्दिक अर्थ है 'जीवन का विज्ञान'। यह चिकित्सा पद्धति न केवल रोगों के उपचार पर केंद्रित है, बल्कि स्वस्थ जीवनशैली और रोगों की रोकथाम पर भी ध्यान देती है। आयुर्वेद के मुख्य स्रोत चरक संहिता और सुश्रुत संहिता हैं, जो आचार्य चरक और आचार्य सुश्रुत द्वारा रचित हैं। इन ग्रंथों में आयुर्वेदिक चिकित्सा के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत वर्णन मिलता है (चरक, 2007; सुश्रुत, 2008)।

महाभारत में भी विज्ञान और तकनीकी उन्नति का विस्तृत वर्णन मिलता है। यह महाकाव्य वेदव्यास द्वारा रचित है और इसमें कई वैज्ञानिक तथ्यों और अवधारणाओं का उल्लेख है। महाभारत में भीम द्वारा चक्रव्यूह को तोड़ने की कला का वर्णन एक प्रकार की सैन्य विज्ञान की उन्नति को दर्शाता है। इसके अलावा, द्रोणाचार्य द्वारा पांडवों और कौरवों को दी गई शिक्षा भी एक प्रकार की युद्ध विज्ञान की उन्नति को दर्शाती है। इस महाकाव्य में कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया गीता उपदेश भी एक प्रकार का मानसिक और आध्यात्मिक विज्ञान है, जिसमें जीवन के गूढ़ रहस्यों और उनके समाधानों का वर्णन है।

चरक संहिता और वाचिक परंपरा

चरक संहिता आयुर्वेद का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसे आचार्य चरक ने संकलित और संचारित किया। इस ग्रंथ में चिकित्सा विज्ञान के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत वर्णन है, जिसमें रोगों के निदान, उपचार और रोकथाम के तरीकों का उल्लेख है। चरक संहिता में औषधियों के निर्माण और उनके उपयोग के भी विस्तृत विवरण मिलते हैं। आचार्य चरक ने इस ज्ञान को मौखिक रूप से संजोया और उनके शिष्यों ने इसे आगे बढ़ाया (चरक, 2007)।

सुश्रुत संहिता और शल्य चिकित्सा

सुश्रुत संहिता, जो आचार्य सुश्रुत द्वारा रचित है, शल्य चिकित्सा के विभिन्न पहलुओं को कवर करती है। आचार्य सुश्रुत को भारतीय शल्य चिकित्सा का जनक माना जाता है। उनकी संहिता में शल्य चिकित्सा की तकनीकों, औजारों और प्रक्रियाओं का विस्तृत वर्णन है। सुश्रुत संहिता में प्लास्टिक सर्जरी, मोतियाबिंद की शल्य चिकित्सा, और हड्डियों की चिकित्सा जैसे उन्नत शल्य चिकित्सा तकनीकों का उल्लेख है (सुश्रुत, 2008)। इस ग्रंथ को भी वाचिक परंपरा के माध्यम से संरक्षित किया गया और उनके शिष्यों ने इसे आगे बढ़ाया।

आयुर्वेदिक औषधियाँ और वनस्पति विज्ञान

आयुर्वेद में विभिन्न प्रकार की औषधियों का उल्लेख है, जो प्राकृतिक वनस्पतियों से प्राप्त होती हैं। आयुर्वेदिक औषधियाँ न केवल रोगों के उपचार में उपयोगी हैं, बल्कि ये रोगों की रोकथाम में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यजुर्वेद और अथर्ववेद में औषधीय पौधों और उनके उपयोग का विस्तृत वर्णन मिलता है (यजुर्वेद, 2006; अथर्ववेद, 2006)। आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण और उनके उपयोग के तरीकों को वाचिक परंपरा के माध्यम से संरक्षित और संचारित किया गया।

रोगों का निदान और उपचार

आयुर्वेद में रोगों का निदान और उपचार भी महत्वपूर्ण है। चरक संहिता में विभिन्न प्रकार के रोगों के लक्षण, उनके कारण और उपचार के तरीकों का विस्तृत वर्णन है (चरक, 2007)। इसी प्रकार, सुश्रुत संहिता में शल्य चिकित्सा के माध्यम से रोगों के उपचार का उल्लेख है (सुश्रुत, 2008)। आयुर्वेदिक चिकित्सक अपने ज्ञान को मौखिक रूप से संचारित करते थे और इस प्रकार यह ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता था।

वाचिक परंपरा में आयुर्वेद का संरक्षण

वाचिक परंपरा ने आयुर्वेदिक ज्ञान के संरक्षण और संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आचार्य चरक और सुश्रुत ने अपने ज्ञान को मौखिक रूप से संजोया और उनके शिष्यों ने इसे आगे बढ़ाया। यह परंपरा सुनिश्चित करती थी कि आयुर्वेदिक ज्ञान का कोई अंश लुप्त न हो और यह सुरक्षित रूप से अगली पीढ़ियों तक पहुंच सके। वाचिक परंपरा ने आयुर्वेदिक ज्ञान को सुरक्षित रखने के साथ-साथ इसे समय के साथ अद्यतन करने और सुधारने में भी मदद की।

आधुनिक आयुर्वेद और वाचिक परंपरा

आज भी, आयुर्वेद का महत्व बरकरार है और इसे आधुनिक चिकित्सा के साथ एकीकृत करने के प्रयास किए जा रहे हैं। आधुनिक तकनीकी उन्नतियों ने आयुर्वेदिक ज्ञान के दस्तावेजीकरण और संरक्षण के नए माध्यम प्रदान किए हैं।

हालांकि, वाचिक परंपरा का सांस्कृतिक और शैक्षिक महत्व अभी भी कायम है। आयुर्वेदिक चिकित्सक और विद्वान अपने ज्ञान को मौखिक रूप से संचारित करते रहते हैं और इस प्रकार वाचिक परंपरा को जीवित रखते हैं।

यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि आयुर्वेद और वाचिक परंपरा का संबंध अत्यंत गहरा और महत्वपूर्ण है। वाचिक परंपरा ने आयुर्वेदिक ज्ञान को संरक्षित और संवर्धित किया, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि यह ज्ञान सुरक्षित रहे और आने वाली पीढ़ियों को हस्तांतरित हो सके। चरक संहिता और सुश्रुत संहिता जैसे ग्रंथों में आयुर्वेदिक चिकित्सा के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत वर्णन है। आयुर्वेदिक औषधियों, शल्य चिकित्सा और रोगों के निदान और उपचार में वाचिक परंपरा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आज भी, आयुर्वेद और वाचिक परंपरा का महत्व बरकरार है और यह हमारी सांस्कृतिक और वैज्ञानिक धरोहर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

गणित और शुल्ब सूत्र

भारतीय गणित का इतिहास अत्यंत प्राचीन और समृद्ध है। इसका एक महत्वपूर्ण हिस्सा शुल्ब सूत्रों में निहित है, जो वैदिक यज्ञ वेदियों के निर्माण के लिए आवश्यक ज्यामितीय सिद्धांतों और गणितीय गणनाओं का संग्रह है। शुल्ब सूत्रों में वर्णित गणितीय ज्ञान ने न केवल भारतीय गणित की नींव रखी, बल्कि यह विश्व के गणितीय विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान देने में सफल रहा है। इस खंड में हम शुल्ब सूत्रों और भारतीय गणित के योगदान का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

शुल्ब सूत्र का परिचय

शुल्ब सूत्र वैदिक युग के गणितीय ग्रंथ हैं, जो यज्ञ वेदियों के निर्माण के लिए आवश्यक ज्यामितीय विधियों और गणनाओं का वर्णन करते हैं। ये सूत्र यज्ञों के आयोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे और इसमें उपयोग किए गए ज्यामितीय सिद्धांत अत्यधिक उन्नत थे। प्रमुख शुल्ब सूत्रकारों में बौधायन, अपस्तम्ब और कात्यायन शामिल हैं, जिन्होंने अपने गणितीय ज्ञान को शुल्ब सूत्रों के माध्यम से संरक्षित किया (शुल्ब सूत्र, 2003)।

बौधायन शुल्ब सूत्र

बौधायन शुल्ब सूत्र सबसे प्राचीन और महत्वपूर्ण शुल्ब सूत्रों में से एक है। इसमें पाई के मान का उल्लेख मिलता है, जो 3.088 और 3.125 के बीच है। यह प्राचीन भारतीय गणितज्ञों की उन्नत गणितीय समझ को दर्शाता है (बौधायन शुल्ब सूत्र, 2003)[21]। इसके अलावा, बौधायन शुल्ब सूत्र में पाइथागोरस प्रमेय का भी उल्लेख है, जिसे बौधायन प्रमेय के नाम से जाना जाता है। इसमें कहा गया है कि एक समकोण त्रिभुज के वर्गों का योग उसकी कर्ण का वर्ग होता है, जो बाद में पाइथागोरस प्रमेय के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

अपस्तम्ब शुल्ब सूत्र

अपस्तम्ब शुल्ब सूत्र भी एक महत्वपूर्ण गणितीय ग्रंथ है, जिसमें ज्यामितीय और गणितीय सिद्धांतों का विस्तृत वर्णन है। इसमें वृत्त की परिधि और व्यास के अनुपात का उल्लेख मिलता है, जो पाई के मान को दर्शाता है (अपस्तम्ब शुल्ब सूत्र, 2003)[22]। अपस्तम्ब ने यज्ञ वेदियों के निर्माण के लिए विभिन्न ज्यामितीय आकृतियों का उपयोग किया और उनकी गणना की विधियाँ भी बताईं।

कात्यायन शुल्ब सूत्र

कात्यायन शुल्ब सूत्र भी गणितीय ज्ञान का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इसमें यज्ञ वेदियों के निर्माण के लिए आवश्यक ज्यामितीय विधियों और गणनाओं का विस्तृत वर्णन है। कात्यायन ने अपने सूत्रों में विभिन्न प्रकार की यज्ञ वेदियों के निर्माण की विधियाँ बताईं और उनमें उपयोग किए गए ज्यामितीय सिद्धांतों का विवरण दिया (कात्यायन शुल्ब सूत्र, 2003)[23]। इन सूत्रों में त्रिभुज, चतुर्भुज और वृत्त जैसी आकृतियों की गणना की विधियाँ शामिल हैं।

भारतीय गणित और शुल्ब सूत्रों का योगदान

शुल्ब सूत्रों का योगदान केवल यज्ञ वेदियों के निर्माण तक ही सीमित नहीं था, बल्कि इन सूत्रों ने भारतीय गणित की नींव भी रखी। शुल्ब सूत्रों में वर्णित गणितीय सिद्धांत और विधियाँ बाद के गणितज्ञों के लिए प्रेरणा स्रोत बनीं। उदाहरण के लिए, आर्यभट, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य जैसे गणितज्ञों ने शुल्ब सूत्रों में वर्णित गणितीय सिद्धांतों का उपयोग किया और उन्हें और अधिक विकसित किया।

शुल्ब सूत्रों का अंतरराष्ट्रीय प्रभाव

शुल्ब सूत्रों का प्रभाव केवल भारतीय गणित तक ही सीमित नहीं रहा,

शुल्ब सूत्रों का योगदान केवल यज्ञ वेदियों के निर्माण तक ही सीमित नहीं था, बल्कि इन सूत्रों ने भारतीय गणित की नींव भी रखी। शुल्ब सूत्रों में वर्णित गणितीय सिद्धांत और विधियाँ बाद के गणितज्ञों के लिए प्रेरणा स्रोत बनीं। उदाहरण के लिए, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य जैसे गणितज्ञों ने शुल्ब सूत्रों में वर्णित गणितीय सिद्धांतों का उपयोग किया और उन्हें और अधिक विकसित किया। शुल्ब सूत्रों का प्रभाव केवल भारतीय गणित तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि यह अंतर्राष्ट्रीय गणितीय समुदाय में भी फैल गया। पाइथागोरस प्रमेय, जो बौधायन प्रमेय के रूप में पहले ही शुल्ब सूत्रों में वर्णित था, इसका एक प्रमुख उदाहरण है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय गणितज्ञों का ज्ञान और उनके गणितीय सिद्धांत विश्व स्तर पर प्रभावशाली थे।

बल्कि यह अंतर्राष्ट्रीय गणितीय समुदाय में भी फैल गया। पाइथागोरस प्रमेय, जो बौधायन प्रमेय के रूप में पहले ही शुल्ब सूत्रों में वर्णित था, इसका एक प्रमुख उदाहरण है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय गणितज्ञों का ज्ञान और उनके गणितीय सिद्धांत विश्व स्तर पर प्रभावशाली थे (जोसेफ, 2011)।[24]

वाचिक परंपरा में शुल्ब सूत्रों का संरक्षण

वाचिक परंपरा ने शुल्ब सूत्रों के गणितीय ज्ञान को संरक्षित और संवर्धित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्राचीन भारतीय समाज में, ज्ञान का संचारण मौखिक रूप से किया जाता था। गणितज्ञ अपने शिष्यों को मौखिक रूप से शुल्ब सूत्रों का ज्ञान संचारित करते थे, जिससे यह सुनिश्चित होता था कि यह ज्ञान सुरक्षित रहे और आने वाली पीढ़ियों को हस्तांतरित हो सके। इस मौखिक परंपरा ने गणितीय ज्ञान को संरक्षित रखने के साथ-साथ इसे समय के साथ अद्यतन करने और सुधारने में भी मदद की (डेविड, 1994)।[25]

यह कहा जा सकता है कि शुल्ब सूत्र और भारतीय गणित का इतिहास अत्यंत समृद्ध और महत्वपूर्ण है। शुल्ब सूत्रों में वर्णित गणितीय सिद्धांत और विधियाँ न केवल भारतीय गणित की नींव रखती हैं, बल्कि यह विश्व के गणितीय विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। वाचिक परंपरा ने शुल्ब सूत्रों के ज्ञान को संरक्षित और संचारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि यह ज्ञान सुरक्षित रहे और आने वाली पीढ़ियों को हस्तांतरित हो सके। शुल्ब सूत्रों का अध्ययन और उनका महत्व आज भी गणितीय अनुसंधान और शिक्षा में प्रासंगिक है।

भारत की वाचिक परंपरा ने विज्ञान और तकनीकी ज्ञान के संरक्षण और संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह परंपरा हजारों वर्षों से चली आ रही है और इसमें ज्ञान का संचारण मौखिक रूप से किया गया। वाचिक परंपरा के माध्यम से वैज्ञानिक अवधारणाओं और सिद्धांतों को पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित रखा गया, जिससे यह सुनिश्चित हो सका कि यह ज्ञान सुरक्षित रहे और अगली पीढ़ियों तक पहुँच सके।

प्राचीन वाचिक परंपरा के माध्यम से वैदिक साहित्य, जिसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद शामिल हैं, का संकलन और संचारण किया गया। इन ग्रंथों में खगोल विज्ञान, गणित, चिकित्सा और कृषि विज्ञान जैसे विभिन्न विषयों का विस्तृत वर्णन है। वैदिक युग में खगोल विज्ञान, गणित और चिकित्सा विज्ञान का उन्नत विकास हुआ और यह ज्ञान वाचिक परंपरा के माध्यम से संजोया गया।

रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में विज्ञान और तकनीकी उन्नति का उल्लेख मिलता है। रामायण में पुष्पक विमान और संजीवनी बूटी का वर्णन है, जबकि महाभारत में कर्ण के जन्म की कथा और अर्जुन के दिव्यास्त्रों का उल्लेख है। इन महाकाव्यों ने वैज्ञानिक सिद्धांतों और आविष्कारों को वाचिक परंपरा के माध्यम से संरक्षित किया।

आयुर्वेद, जिसे भारतीय चिकित्सा प्रणाली का आधार माना जाता है, का विकास भी वाचिक परंपरा के माध्यम से हुआ। आचार्य चरक और सुश्रुत ने अपने चिकित्सा ज्ञान को मौखिक रूप से संजोया और उनके शिष्यों ने इसे आगे बढ़ाया। चरक संहिता और सुश्रुत संहिता में चिकित्सा विज्ञान के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत वर्णन है। वाचिक परंपरा ने आयुर्वेदिक ज्ञान को सुरक्षित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

शुल्ब सूत्र भारतीय गणित का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इन सूत्रों में ज्यामिति और अंकगणित के सिद्धांतों का वर्णन है। बौधायन, अपस्तम्ब और कात्यायन जैसे गणितज्ञों ने शुल्ब सूत्रों के माध्यम से गणितीय ज्ञान को वाचिक परंपरा के द्वारा संरक्षित किया। पाई के मान का सटीक वर्णन और ज्यामितीय आंकलन की विधियों का उल्लेख शुल्ब सूत्रों में मिलता है।

वाचिक परंपरा ने भारतीय समाज में ज्ञान के संरक्षण और संचारण का एक प्रभावी साधन प्रदान किया। इस परंपरा ने न केवल वैज्ञानिक उन्नतियों और आविष्कारों को संरक्षित किया, बल्कि समाज में नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों को भी स्थापित किया। आज भी, वाचिक परंपरा का सांस्कृतिक और शैक्षिक महत्व बरकरार है और यह हमारी सांस्कृतिक और वैज्ञानिक धरोहर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

भारत की वाचिक परंपरा में विज्ञान का स्थान अद्वितीय और महत्वपूर्ण है। इस परंपरा ने ज्ञान के संरक्षण और संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वैदिक साहित्य, महाकाव्य, आयुर्वेद, गणित और खगोल विज्ञान जैसे विभिन्न क्षेत्रों में वाचिक परंपरा के योगदान को समझना और उसका मूल्यांकन करना आवश्यक है। वाचिक परंपरा की इस धरोहर को संरक्षित करना और नई पीढ़ियों को इससे अवगत कराना हमारी सांस्कृतिक और वैज्ञानिक धरोहर की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है।

संदर्भ

1. ऋग्वेद. (2005). ऋग्वेद संहिता. गोपालराम बिबेकानन्द।
2. यजुर्वेद. (2006). यजुर्वेद संहिता. चौखम्बा विद्याभवन।
3. अथर्ववेद. (2006). अथर्ववेद संहिता. चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
4. सामवेद. (2007). सामवेद संहिता. चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
5. रामायण. (1998). रामायण. गोस्वामी तुलसीदास।
6. महाभारत. (2000). महाभारत. व्यास।
7. चरक, आचार्य. (2007). चरक संहिता. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान।
8. सुश्रुत, आचार्य. (2008). सुश्रुत संहिता. चौखम्बा विद्याभवन।
9. शुल्ब सूत्र. (2003). शुल्ब सूत्र. भारतीय गणित परिषद।
10. शर्मा, आर. (2004). प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय।
11. ऋग्वेद. (2005). ऋग्वेद संहिता. गोपालराम बिबेकानन्द।
12. यजुर्वेद. (2006). यजुर्वेद संहिता. चौखम्बा विद्याभवन।
13. सामवेद. (2007). सामवेद संहिता. चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
14. रामायण. (1998). रामायण. गोस्वामी तुलसीदास।
15. महाभारत. (2000). महाभारत. व्यास।
16. चरक, आचार्य. (2007). चरक संहिता. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान।
17. शुल्ब सूत्र. (2003). शुल्ब सूत्र. भारतीय गणित परिषद।
18. सुश्रुत, आचार्य. (2008). सुश्रुत संहिता. चौखम्बा विद्याभवन।
19. आर्यभट. (1997). आर्यभटीयम. भारतीय ज्योतिष परिषद।
20. वराहमिहिर. (2003). बृहत्संहिता. चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
21. बौधायन शुल्ब सूत्र. (2003). शुल्ब सूत्र. भारतीय गणित परिषद।
22. अपस्तम्ब शुल्ब सूत्र. (2003). शुल्ब सूत्र. भारतीय गणित परिषद।
23. कात्यायन शुल्ब सूत्र. (2003). शुल्ब सूत्र. भारतीय गणित परिषद।
24. जोसेफ, जी. जी. (2011). द क्रेस्ट ऑफ द पीकॉक: नॉन-यूरोपियन रूट्स ऑफ मैथमेटिक्स. प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
25. डेविड, एफ. (1994). हिस्ट्री ऑफ मैथेमेटिक्स. पेंगुइन बुक्स।

———•••———

सदस्य सचिव, नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति,
पन्ना (मध्य प्रदेश) एवं राजभाषा अधिकारी,
एनएमडीसी लिमिटेड

मालवी लोकगीतों में कृषि विज्ञान

— डॉ. प्रीति पाण्डे

भारतीय संस्कृति विविधताओं से परिपूर्ण है। भारतीय संस्कृति के वैविध्य की उपमा हम रंग बिरंगी सजीली चुनरी से कर सकते हैं जिसका प्रत्येक रंग अपना वैशिष्ट्य लिये हुये है। इन्हीं विविध रंगों में एक रंग लोकगीतों का है जिसकी प्रकृति नैसर्गिक है। नदी की भाँति उच्छृंखल नदी विहार करती हुई अपने उद्गम स्थल से न जाने कितनी लम्बी दूरी तय करती है और इसी आत्मसात् कर लेती है। भारत के प्रत्येक कोने में विविध लोकभाषाऐं हैं और उनके भीतर एक विशेषता रहती है कि वह सहज ही अपनी अभिव्यक्ति कर देती हैं। साथ ही उसमें प्राचीन परम्पराओं, इतिहास एवं तीज-त्यौहारों की पर्याप्त जानकारी होती है इसी दृष्टिकोण से आजकल लोकख्यानों एवं लोकगीतों, कथाओं आदि को वर्तमान में इतिहास का एक महत्वपूर्ण स्रोत माना जा रहा है।

मूलतः लोकगीत आनन्दप्रेरित मानव हृदय की रसात्मक अनुभूति की रागमय अभिव्यक्ति है। पश्चिम के लोकगीत चिन्तकों ने भी लोकगीतों को ''मानव हृदय का उद्वेलित एवं स्वतः स्फूर्जित संगीत कहा है।''1 वहीं देवेन्द्र सत्यर्थी के अनुसार ''लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र है।''2 मानव हृदय की रागात्मक एवं आनन्दात्मक अभिव्यक्ति लोकगीत है। भारत की विविध लोकभाषाओं मे से एक विशिष्ट लोकभाषा मालवी का साहित्य भी अत्यन्त समृद्ध है। पश्चिमी भारत का एक बड़ा भू-भाग मालवी बोली का उपयोग कर रहा है जिसमें मध्यप्रदेश का पश्चिमी भाग एवं पूर्वी राजस्थान की समीपवर्ती क्षेत्र सम्मिलित है।

मालवा एक सांस्कृतिक इकाई है क्योंकि मालवी बोली का प्रसार मध्यप्रदेश से राजस्थान एवं उत्तारी गुजरात तक विस्तृत है। मालवी बोली में भी कई गुजराती एवं राजस्थानी शब्दों का मेल है। लगभग 47,760 वर्ग कि.मी. में विस्तृत यह भू-भाग के अन्तर्गत मध्यप्रदेश के धार, झाबुआ, रतलाम, इंदौर, देवास, उज्जैन, मंदसौर, सिहोर, शाजापुर, रायसेन एवं विदिशा सम्मिलित हैं।3 काली मिट्टी से समृद्ध यह भौगोलिक क्षेत्र माही, चम्बल, बेतवा, नर्मदा, क्षिप्रा आदि नदियों से सिंचित अत्यन्त उपजाऊ है। इस परिक्षेत्र में औसत वर्षा 85 से 110 से.मी. है। यहाँ पर ज्वार, कपास, गन्ना, गेहूँ, चना एवं वर्तमान में सोयाबीन की नकदी फसल प्राप्त की जाती है। यह एक पठारी क्षेत्र है हर काल में यह क्षेत्र एक संपन्न एवं समृद्ध परिक्षेत्र कहलाता रहा है जिसमें जीविकोपार्जन अत्यन्त सुलभ था ऐसे में सामान्य जन खुशहाली एवं आनन्द का जीवन व्यतीत कर रहा था एवं इसी परिवेश में लोकगीतों का सृजन होता है। मालवी लोकगीतों की पोषित परम्परा है जो कि वर्तमान तक निरंतर है। मालवी भाषा में लाक्षणिकता अत्यधिक होने के कारण किसी भी वृत्तान्त को काव्यात्मकता के साथ-साथ वह विविधता भी हैं अर्थात् लोक जीवन के लगभग सभी पक्षों पर ये गीत सृजित किये गये हैं।

नवीन एवं प्राचीन समस्त गीतों में

हमें महत्त्वपूर्ण सूचनाऐं प्राप्त होती हैं। इसी क्रम में मालवी लोकगीतों में कृषि विज्ञान के प्रमुख पक्षों पर भी विचार किया जाना इस शोध पत्र का प्रमुख अभीष्ट है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। प्राचीन काल से कृषि ही अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार रहा है। कृषि के अतिरिक्त उत्पादन से ही बाद में शिल्प, व्यापार आदि विकसित हुये। इसी कारण से ही प्राचीन काल से ही कृषि विज्ञान अत्यन्त समृद्ध रहा है। इसी निरन्तरता में यदि हम मालवा में देखते है तो उन्नत कृषि भी इसी ओर इंगित करती है कि इस परिक्षेत्र में भी कृषि विज्ञान का एक उत्कृष्ट इतिहास रहा होगा। इस परम्परागत कृषि विज्ञान की जानकारी हमें मालवी लोकगीतों से प्राप्त होती है। मालवी लोकगीतों में कृषि विज्ञान हम निम्नलिखित बिन्दु में देख सकते हैं-

1. भूमि की उर्वरता सम्बन्धी गीत- मालवा की भूमि की उर्वरता की वर्णन कई मालवी लोकगीतों में मिलता है। इस क्षेत्र को रत्नगर्भा इसी कारण कहा जाता है। विपुल उर्वरता के कारण ही इस परिक्षेत्र के प्रत्येक ऐतिहासिक कालखण्ड में हमें मालवा की उन्नत आर्थिक स्थिति के दर्शन होते है। काली उपजाऊ मिट्टी वाले इस क्षेत्र में मिट्टी भूमि की नमी को लम्बे समय तक बनाये रखती है यही कारण है कि कम वर्षा में भी यहाँ अत्यधिक फसल प्राप्त होती है। इसका वर्णन करते हुये मालवी कवि कहता है-

''मालवे न धरती, सेली, भली, गूजर
महान महोरती बिन पानी,
मक्का पकावे
ने पानी जुआरियो पकावे,
महान महोरती.....''4

मालवा की भूमि की उर्वरता का वर्णन कई मालवी लोकगीतों में मिलता है। इस क्षेत्र को रत्नगर्भा इसी कारण कहा जाता है। विपुल उर्वरता के कारण ही इस परिक्षेत्र के प्रत्येक ऐतिहासिक कालखण्ड में हमें मालवा की उन्नत आर्थिक स्थिति के दर्शन होते हैं। मालवा में उगाई जाने वाली मेंहदी का रंग आस-पास के राज्यों तक भी पहुँचता है अर्थात् मेंहदी जैसे कई कृषि उत्पाद समीपवर्ती राज्यों तक भी पहुँचते हैं- मेंदी तो बावी मालवे, ऐनो रंग गयो गुजरात। अर्थात् मालवा में मेंहदी को बोया लेकिन उसका रंग गुजरात तक चढ़ गया। अर्थात् वहाँ तक मेंहदी की फसल पहुँच गयी।

अर्थात् मालवा की ये भूमि जो कि उपजाऊ है बड़ी भल है ऐसी महान भूमि में बिना पानी के मक्का को उगाया जा सकता है एवं थोड़ी सी वर्षा हो जाये तो ज्वार भी पक जाती है।

उर्वरता के कारण इतना अधिक उत्पादन है कि मालवा में उगाई जाने वाली मेंहदी का रंग आस-पास के राज्यों तक भी पहुँचता है अर्थात् मेंहदी जैसे कई कृषि उत्पाद समीपवर्ती राज्यों तक भी पहुँचते है- मेंदी तो बावी मालवे, ऐनो रंग गयो गुजरात5। अर्थात् मालवा में मेंहदी को बोया लेकिन उसका रंग गुजरात तक चढ़ गया। अर्थात् वहाँ तक मेंहदी की फसल पहुँच गयी। इसी प्रकार राजस्थानी महिलाएँ वर और वधू के लिये विवाह के अवसर पर उबटन आदि के निमित्ता मालवा में उत्पन्न होने वाली उत्कृष्ट रंग की हल्दी का उल्लेख करती है- ''म्हारी हल्दी रो रंग सुरंग निपजे मालवें.....''6।

2. जलवायु, ऋतु एवं वर्षा सम्बन्धी गीत- मालवा के लोगों को ऋतु, जलवायु आदि का सम्पूर्ण ज्ञान था। गीतों में पिरोकर हिन्दी मासों के नाम सर्वसामान्य को रटा दिये जाते थे। इन लोकगीतों को बारहमासा कहा जाता था। जैसे प्रथम दो पंक्ति इस प्रकार है-

''आसाढ़ मास करी हमारी,
अन्नी पानी उई आवेजी
जाय मिले कुब्जा से श्याम
जो भंग पिलावे रे.....
सावन अखन के गये सजनि
सब सखी तीरत मनावे रे''।7

इसी प्रकार भादव, कुंआर, कार्तिक, अगहन, पौस, वसंत, फागन, चैत्र, वैशाख, जेठ आदि बारह महीने के लक्षणों को एक उदाहरण के द्वारा समझाया है जो कि कहीं न कहीं मालवी गीतों में जलवायु एवं मौसम सम्बन्धी ज्ञान को स्पष्ट करते है।

ऋतुओं से सम्बन्धित गीतों में जन्य व्यवहार, दाम्पत्य व्यवहार एवं श्रृंगार

रस आदि विषयों पर विवरण मिलता है। यहाँ तक की विभिन्न ऋतुओं के विभिन्न गीत मिलते है। वसंतकालीन लोकगीतों में फाग, राधाकृष्ण की प्रणय कथायें, उद्यानगी, फूलपंति आदि इसी प्रकार वर्षा काल में झूलागीत, जाम्बू नींबू, असाढ़ी आदि गीत प्रमुख हैं। शरद कल के घूमर एवं गरबे आदि गीत प्रमुख हैं। विभिन्न ऋतुओं के ये गीत मालवी जनमानस के ऋतु ज्ञान एव उसका सामान्य जीवन एवं कृषि से सम्बन्ध स्पष्ट रूप से दिखाता है।

3. प्रमुख फसलें- भारत के अन्य स्थलों की भाँति यहाँ रबी एवं खरीफ दो फसलें ली जाती है इसी प्रकार सिंचाई करके सब्जियों की भी खेती की जाती थी। लोकगीतों में बाड़ी की बागर एवं खेत की रखवाली के नाम आता मानव द्वारा की गई सिंचाई वाले खेत को बाड़ी कहते थे। जिनमें प्रायः सब्जी अथवा गन्ना लगाया जाता था। प्रमुख फसलें ज्वार, बाजरा, मक्का, गेहूँ, मसूर, कपास, तिल आदि फसलें ली जाती थी। दो प्रकार की भूमि होती थी प्राकृतिक वर्षा से जहाँ सिंचाई होते उसे खेत कहते थे वहीं जहाँ सिंचाई से गन्ना अथवा सब्जी लगाई जाती थी उन्हें बाड़ी, बाड़ अथवा सांटा की बाड़ी कहते थे। बाड़ी की रखवाली की जिम्मेदारी किसान भगवान राम पर छोड़ देता है-

''कूण करेगा बाड़ी की बागर,
कूण करेगा रखवाली
राम करेगा बाड़ी की बागर,
लक्षमन करेगा रखवाली।।''8

कृषि कार्य को कष्ट साध्य माना गया है। किसान के घर विवाह करने वाली स्त्री को खेत नींदते समय अनुभव वाले कष्ट का अनुभव होते है-

मांजी म्हारे किसाण्या घर मति दीजै
हूं तो खेत नींदता हारी
टंकारयो रंगरूडो म्हारो।।9

मक्के की फसल एवं उसके प्रिय अनाज माने जाने के प्रमाण लोकगीतों में भी मिलता है। ''मालवा ना प्यारा भोजन धन-धन मक्का की राबड़ी।।10 इसी प्रकार मालवी नारी वसंत में अपने प्रियतम से भांग के बीज एवं महुआ बोने के लिये आग्रह करती है-

उदयापुर से सायबा बीज मंगाय
अब ये बोवो हो केसरिया सायबा,
भांगड़ी हो राज।11

मउड़ी बोवोरी कलालन, म्हारा केसरिया भरतार दारूड़ी तोड़ीखाजो।।12

जीरा बोने का भी उल्लेख मिलता है। गाड़ा तले जीरो बोयो सात सहेलियां हो गाड़ी रड़क्यो कूं चल भागी।13

गेहूँ जैसे अनाज का उपयोग अतिथियों के आने विशेष अवसर अथवा पुत्र जन्मोत्सव आदि पर ही होता था-

''बईओ दूधां केरां आदण देवाव म्हारा गाढया गऊ की घूघरी।

बीरा से हेडू म्हारा गंगा जमनी खेत हूँ नत की रादूँ घूघरी।।14 स्वाद अच्छा होने से मक्के की बजाय गेहूँ के खाने पर भी व्यंग्य मिलता है-

कोठी में का गऊँड़ा, हेड़या ,

चुन-चुन बोनी कांकरिया हाय रंगीली सांकरिया।।15

गेहूँ, मक्का और ज्वार में पीसने और बनाने में गेहूँ की सुविधा का भी वर्णन मिलता है-

''मक्का कायकू लाया बालम,
गऊँड़ा तो हूँ झट-झट पीसूँ,
जुआर चोटी चोटी जाय,
मक्का रांडने पीसन बैठी
सारा जगायो सेर''16।

चावल का भी वर्णन मिलता है किन्तु सीमित केवल अतिथि सत्कार में-''चोखा रंदाडू ओ इन्दर राजा उपरा, हरिया घोरा नी ओ मूंग।।17

4. वृक्ष, लता एवं पुष्प की कृषि- लोकगीतों में वृक्ष पुष्प आदि का विशद् वर्णन मिलता है-आम इमली, नीम, खजूर, खेजड़ी (शमी वृक्ष), सीताफल, केला आदि का वर्णन मिलता है-

''म्हारा घर पाछे आमली रे''18

''गलियारे घर थारो ए लीमतले घर म्हारो ए।''19

''बाज खजूर भली थी गई, खोड़या कटाया था।''20

''आकच-कूकच खेजड़ी रे''21

''सीताफल को रूरखेड़ा''।22

मालवा की हल्दी का महत्व राजस्थान में भी दिखता है -''म्हारी हल्दी रो रंग सुरंग निपजै मालवे। 23 पीपल के वृक्ष में पूर्वजों, मृतात्माओं आदि के वास का विश्वास है वहीं पीपल-पूजन से भगवान मिलने का भी संदेश है-

म्हारा पिछवाड़े पूरब जों री पीपली, डाल्या ओं डाल्या दिवा बड़े।''

''पीपल पूजने म्है गई आपणा कुल की लाज

पीपल पूजतों हरि मिल्या एक पंथ दोऊ काज।।24

इसी प्रकार विभिन्न लताओं की भी जानकारी कुछ लोकगीतों में मिलती है जिसमें पता चलता है कि कृषि भी की जाती थी।

चम्पा की लताओं से नायिका की लचक की तुलना की जाती है - ''बइयाँ चम्पा री डाल''।25

कुशल नायिकाऐं अपने आँगन में इलायची, और नागर बेल अवश्य लगाती हैं जिससे उनका प्रियतम आकर झलक दिखला जायेगा।

''आँगण बोऊँ एलची,

कंवले नागर बेल,

बीड़ा के मिस आवजो, लीजो मुजरो झेल।''26 इसी प्रकार विभिन्न पुष्पों की भी चर्चा लोकगीत में होती है। यूं भी मालवा की जलवायु पुष्पोत्पादन के लिये सर्वथा उपयुक्त है।

''सायब मेरा बाग की चम्पा27

इसी प्रकार

''हरिया बागा केवड़ा''28

केवड़ा, चम्पा, हरसिंगार, जूही, चमेली, मरवा, मोगरा, गुलदावदी, गुलाब, कनेर, गेंदा आदि पुष्पों की कृषि

के लिये मालवा जाना जाता है। प्रेम-प्रदर्शन के लिये गुलाब को उपयुक्त माना है-

''इ तो बायजी रा बीरा बालम रसिया

गेरो जी फल गुलाब को''।29

विवाह के अवसर पर पुष्पों के नाम भी गिनाये है जिनमें चम्पा, चमेली, मरवा, मोगरा, गुलदावदी है।

''चम्पो, चमेली, मरबो, मोगरो ए मालनी

चैंथो गुलदावदी रो फूल''।30

5. कृषि सम्बन्धी पषुपालन- मालवा कृषि प्रधान क्षेत्र है किन्तु बिना पशुओं की सहायता के कृषि कार्य संभव नहीं है इसलिये गौवंश मालवा के लोगों के प्रमुख पशु थे जिनका पालन किया गया।

कृषि कर्म के लिये उपयोग किये जाने वाले बैल पर कई लोकगीत बने हैं। गोमाता के इन अनमोल रत्नों से खेत में चाँस खींचते (जुताई) है-

''धन धन ओ गउतरी गाता, त्हने रतन उघाड्या दुनिया माय

त्हारा जाया मातेसरी हल चले, खँचे हारम की चाँस''।31

बैलों का प्रयोग परिवहन में भी किया जाता था। भलीभाँति उनको रंग कर एवं सजाकर गाँव से बाहर ले जाते थे।

''गाड़ो तो रड़क्यो खेत मे रे बीरा, गगना उड़ रही गरे

चालो उतावल घोरड़ी रे, म्हारा बेन्याबई जोवे बाट

घोरी रा चक्कया सींगड़ा रे.....''32

भैंस को भी दूध के लिये पाला जाता था लेकिन भैंस अगर पाड़ा अर्थात नर भैंस को जन्म दे तो यह गहरा पश्चाताप का कारण था।

''हँसली बेच के भैस आणी

भैंस बियाणी पाड़ो रे, चलती का नाम गाड़ो रे''।33

कृषि के विभिन्न उपांगों के न जाने कितने ही गीत मालवा में प्रचलित हैं। प्राचीन लोकगीतों के साथ वर्तमान लेखक भी इस परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं और मालवी लोकगीत रच रहे हैं। यूँ तो प्राचीन कृषि विज्ञान की परम्परा अपने आप में एक जीवन्त धरोहर है जिस पर अध्ययन-अनुसंधान होते रहते हैं किन्तु लोकअंचलों में कृषि के समस्त पक्षों को वाचिक परम्परा में लोकगीतों में अत्यन्त सुंदरता से सजोया हुआ है। ऐसे में कृषि परम्परा भी धरोहर है एवं लोकगीत भी जीवन्त धरोहरों में आते है। मालवी की मिठास भरे लोकगीतों में न जाने कितने ही कृषि सम्बन्धित पक्ष बिखरे पड़े हैं, जो कि इस की पंचमेल संस्कृति के साथ इसके वैज्ञानिक पहलुओं को भी उजागर करते हैं।

संदर्भ

1. The Primitive spontaneous music ha been called folk songs; encyclopedia britanica, vol9-page 447
2. आजकल (दिल्ली) संख्या7, नवंबर 1951 का अंक।
3. मिश्रा, एस.डी. छंजनतंस तमहपवदे व जिम प्दकपंद नइबवदजपदमदजए चंहम दवण्. 108
4. उपाध्याय चिंतामणि, मालवी लोकगीत एक विवेचनात्मक अध्ययन, पृ.सं. 29
5. मेघानी झवेरचंद, रढ़ियाली रात, भाग1-, पृ.सं. 17
6. मेघानी झवेरचंद, चूंदड़ी, भाग2-, पृ.50।
7. उपाध्याय, चिंतामणि, पूर्ववत्, पृ.सं 418
8. मेघानी झवेरचंद चूंदड़ी, भाग81/2 ,2-
9. पूर्ववत्, 227/1।
10. उज्जैन के बड़नगर.....11/2
11. मेघानी झवेरचंद चूंदड़ी; भाग193/1 ,2-
12. मेघानी झवेरचंद चूंदड़ी, भाग192/1 ;2-
13. पूर्ववत् ; 10/1
14. मालवी लोकगीत; पृ.17
15. मेघानी झवेरचंद चूंदड़ी..... पृ.सं.11/2
16. पूर्ववत् 13/2
17. पूर्ववत् 260/1
18. पूर्ववत् 610/1
19. पूर्ववत् 162/1
20. पूर्ववत् 9/1
21. पूर्ववत् 84/2
22. पूर्ववत् 40/2
23. राजस्थान के लोकगीत पृ. 136
24. मेघानी झवेरचंद चूंदड़ी.....55/1 एवं 11/2
25. कुलदेवी का गीत, पृ.सं. 71/1
26. उपाध्याय चिंतामणि, पूर्ववत्.....पृ. 405
27. मेघानी झवेरचंद चूंदड़ी..... पृ.सं. 218/1
28. पूर्ववत् 79/3
29. बालिकाओं का प्रचलित गीत
30. ग्यारस की गीतों से प्राप्त।
31. मालवी लोकगीत.....पृ.सं. 18/3
32. मालवी लोकगीत.....पृ.सं. 15/2
33. पूर्ववत् पृ.सं. 107/2

———•••———

प्राध्यापक, प्रा.भा.इति.सं.एवं
पुरातत्तव अध्ययनषाला, विक्रम विश्वविद्यालय,
उज्जैन (म.प्र.)

भारतीय ज्ञान परंपरा में कृषि: कल, आज और कल

—डॉ. अरविंद कुमार पाल[1]
श्री प्रकाश पाल[2]

भारतीय ज्ञान परंपरा हमारी सबसे बड़ी पूँजी है। दुनिया के लोग भारत में ज्ञान प्राप्त करने के लिए आते रहे हैं। इस महामारी ने व्यक्ति, समाज और सरकार को एक बार फिर गांव, कृषि और किसान की महत्ता, मजबूती, आर्थिक व्यवस्था और उसके मूल्य का बोध कराया है। कृषि भारतीय समाज व्यवस्था का मुख्य आर्थिक अंग था, है और आगे भी बना रहेगा। भारत गांवों का देश है और गांव आज भी कृषि और किसानी से चलते आ रहे है। कृषि और कृषि आधारित उत्पाद मनुष्य की भोजन और पोषण की मूलभूत अवश्यकता को पूरा करने के साथ रोजगार, आर्थिक क्रियाकलाप और समाज व्यवस्था की मजबूती के मजबूत आधार स्तम्भ है। मिश्र, (2020) के अनुसार "भारतीय ज्ञान धारा में भारत का जो थोड़ा बहुत प्रवेश हुआ भी वह उसका पाश्चात्य संस्करण था जिसमें दुराग्रहपूर्ण और गलत व्याख्याएं भी शामिल थीं।"

दूसरी ओर भारतीय समाज को पश्चिमी सिद्धांतों की परीक्षा के लिए नमूना (सैंपल) माना जाता रहा। इस पूरी प्रक्रिया में हमने गांधी जी की सीख भुला दी कि हमें अपनी जमीन पर ही पांव टिकाए रखने हैं। हां, खिड़कियां जरूर खुली रखनी हैं ताकि बाहर की बयार आती-जाती रहे। हम यह भी भूल गए कि शिक्षा को समग्र व्यक्तित्व के विकास से जुड़ा होना चाहिए ताकि हाथ, दिल और दिमाग सभी कार्यरत रहें। इनको एक सूत्र में पिरोने का काम भारतीय ज्ञान परंपरा करती आयी है और उसे सहेजते हुए अपनी आगे की पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करता रहता है, उसे ज्ञान परंपरा कहते है। ज्ञान परंपरा में सृजित ज्ञान एवं उपयोगिता का तत्व निहित होता है, जो मानव समाज की व्यवस्था को चलायमान बनाए रखने में मार्ग प्रसस्थ करती रहती है। हलाकि परिवर्तन इस संसार का नियम है, जिसमें

कृषि सम्पत्ति और मेधा प्रदान करती है तथा कृषि ही मानव जीवन का आधार है। ऋषि पराशर ने लिखा है, अन्न प्राणा बलं चान्नमन्नं सर्वार्थसाधनम्। देवासुरमनुष्याश्च सर्वे चान्नोपजीविनः। अन्नं हि धान्यसंजातं धान्यं कृपया विना न च। तस्मात् सर्वं परित्यज्य कृषिं यत्नेन कारयेत्। अर्थात अन्न ही प्राण है बल है अन्न ही समस्त अर्थ का साधन है। देवता, असुर, मनुष्य सभी अन्न से जीवित हैं तथा अन्न धान्य से उत्पन्न होता है और धान्य बिना कृषि के नहीं होता। इसलिए सभी कर्म छोड़कर कृषि कर्म ही करना चाहिए।

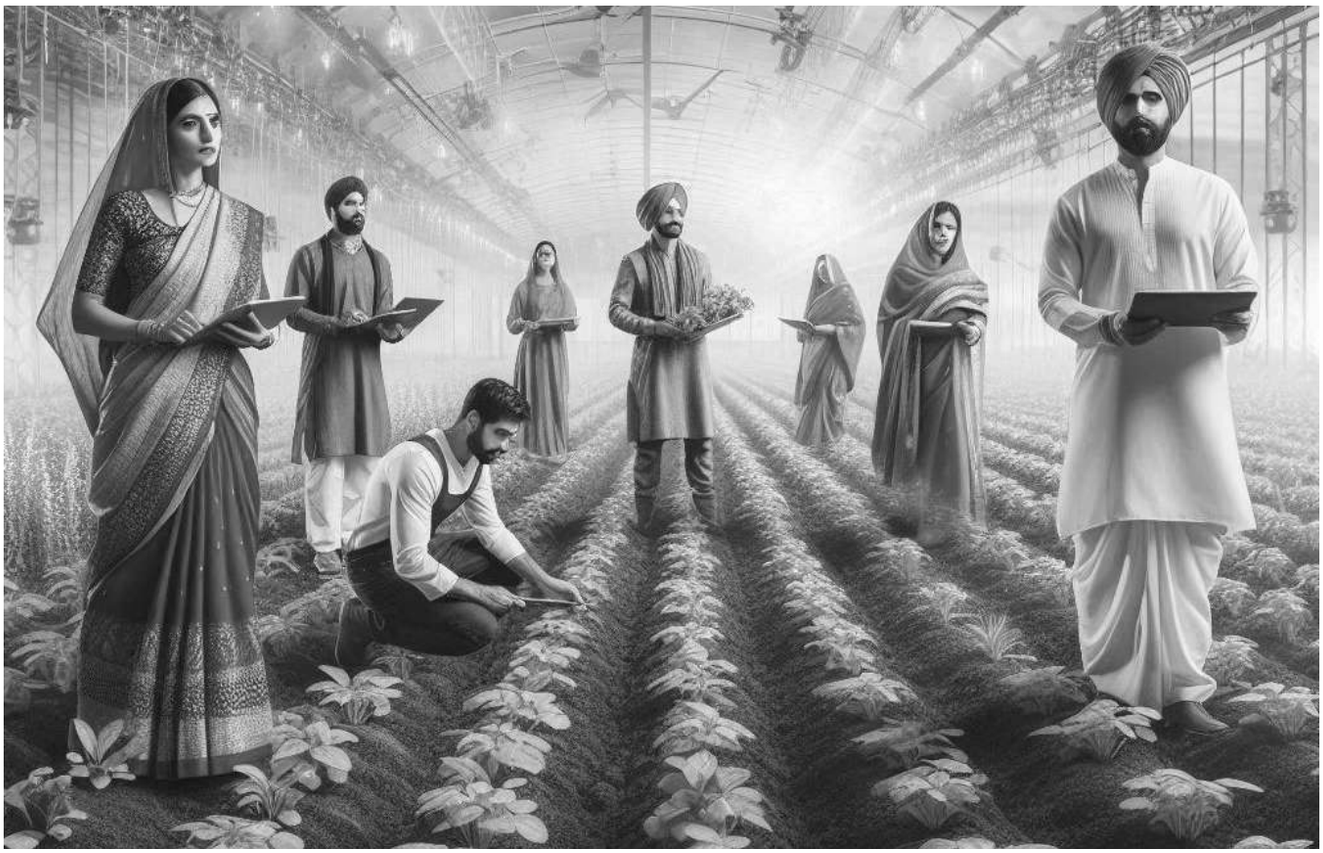

समय, काल एवं अवश्यकता के अनुरूप नवीन परंपराओं का जन्म भी होता रहता है। लेकिन अपने परंपरागत ज्ञान, कौशल, अनुभव और उसमें निहित मूल्य को सजोकर रखना भी हमारी जिम्मेदारी है। इस आलेख में भारतीय ज्ञान परंपरा में कृषि: कल, आज और कल को जानने, समझने और चिंतन करने का प्रयास किया गया है।

भारत की समृद्ध ज्ञान संपदा और उसकी अभिव्यक्ति को भी अतीत में अंग्रेजों के पास बंधक रख दिया गया, पर परेशानी यह है कि उसके एवज में जो लिया गया या मिला उसकी परिधि में ही शिक्षा का आयोजन हुआ और अभ्यास वश उसके मोहक भ्रम में हम सब कुछ ऐसे गाफिल हुए कि अपनी संपदा को अपनाना तो दूर उसे पहचानने से भी इन्कार करते रहे। मैकाले साहब ने जो तजबीज भारत के लिए की उसे हमने कुछ इस तरह कुबूल कर अपनाया कि स्मृति-भ्रंश जैसा होने लगा और विकल्पहीन होते गए। इसके चलते अपने स्वभाव के अनुसार सोचने-विचारने पर ऐसा प्रतिबंध लगा कि कोल्हू के बैल की भांति पीढ़ी-दर-पीढ़ी पराई दृष्टि के पीछे ही चलते रहे।

इसमें हमारी महत्वपूर्ण कृषि की ज्ञान परंपरा भी सम्मिलित है, जो परंपरागत समाज की हजारों वर्ष की लंबी यात्रा और अनुभव पर आधारित थी। हमारी कृषि परंपरा में प्रकृति, पर्यावरण, आसमानी संकेत, जल, भूमि, बीज एवं पशुपालन के मिश्रण के साथ समाज में उसके प्रति विधि-विधान, समाज चिंतन, आदर्श, मर्यादाएं, दायित्व, आत्मीयता, परस्परता और समावेशी की परंपरा थी। इसके चलते कृषि समृद्ध थी और गांव खुशहाल। इस कारण कृषि भारत में अधिक सम्मानजनक व्यवसाय बन गया था। जिसको कालजयी कहावत से समझा जा सकता है, कहावतें आज भी परंपरागत ज्ञान में मार्गदर्शक, अनुभव और सिद्धांत की तरह प्रयोग होती आ रही है।

"उत्तम खेती मध्यम बान,
निकृष्ट चाकरी भीख निदान"

अर्थात खेती को उत्तम व्यवसाय की प्राथमिकता दी गई तथा व्यवसाय को मध्यम कोटी का माना गया। नौकरी को निकृष्ट तथा भीख मांग कर जीवन यापन को निम्न कोटी का समझा गया।

"अक्षैर्मा दीव्य: कृषिमित् कृषस्व
वित्ते रमस्व बहुमन्यमान"
(ऋग्वेद- 34-13)

प्राचीन पवित्र ऋग्वेद ग्रंथ में कृषि की महत्ता प्रदर्शित की गई है और कहा गया है कि जुआ मत खेलो, कृषि करो और सम्मान के साथ धन पाओ। कृषि पराशर जो कृषि की दृष्टि में एक मान्य ग्रंथ माना जाता है, उसमें विशेष वर्णन मिलता है।

"कृषिर्धन्या कृषिर्मेध्या जन्तूनां जीवनं कृषि" (कृषि पाराशर-श्लोक-7)

अर्थात कृषि सम्पत्ति और मेधा प्रदान करती है तथा कृषि ही मानव जीवन का आधार है। ऋषि पराशर ने लिखा है, अन्न प्राणा बलं चान्नमन्नं सर्वार्थसाधनम्। देवासुरमनुष्याश्च सर्वे चान्नोपजीविनः। अन्नं हि धान्यसंजातं धान्यं कृपया विना न च। तस्मात् सर्वं परित्यज्य कृषिं यत्नेन कारयेत्। अर्थात अन्न ही प्राण है बल है अन्न ही समस्त अर्थ का साधन है। देवता, असुर, मनुष्य सभी अन्न से जीवित हैं तथा अन्न धान्य से उत्पन्न होता है और धान्य बिना कृषि के नहीं होता। इसलिए सभी कर्म छोड़कर कृषि कर्म ही करना चाहिए।

भारतीय ज्ञान परंपरा में कृषि: कल

भारतीय कृषि परंपरा में कृषि आधारित ज्ञान, समझ, अनुभव एवं सीख को कहावतों के माध्यम से भी सहेजा जाता था और वह कहावतें गांव के हर किसान के जबान पर होती थी। किसान उन कहावतों से सीख लेते हुए खेती की तैयारी करना, मौसम का अनुमान, बैल खरीदना, खेत जोतना, बीज बोना एवं फसल काटना इत्यादि अपनी कृषि में करता था। प्राचीन समय के महाकवि घाघ ने ऐसी कई कहावते कही हैं, जो कृषि के संदर्भ में सटीक मानी जाती थी और वह किसान की जिह्वा पर याद होती थी। अतः प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में समृद्ध खेती की परंपरा थी। जिसे प्राकृतिक खेती, जैविक खेती, जीरो बजट खेती के संदर्भ में समझा जा सकता है। इस खेती के कई लाभ थे, जो गोबर की खाद से मिट्टी को उर्वरक एवं उपजाऊ बनाती थी। जो फसल विविधता के कारण ग्लोबल वार्मिंग से मुक्त थी।

यह गौपालन से किसान को कृषि का आधार देती थी। जो प्राकृतिक खाद के उपयोग एवं फसल विविधता से जल बचाती थी। जिससे उत्पादित अन्न में पोषण की मात्रा अधिक होती थी और खाने वाला स्वस्थ्य, हृष्ट-पुष्ट के साथ लंबी आयु का जीवन पाता था। इन सबके साथ अन्न पैदा करने वाला किसान भी स्वस्थ्य एवं समृद्ध रह कर समाज व्यवस्था में गांव को मजबूती प्रदान करता था। जिसमें किसान अपने उत्पादित अनाज की कीमत तय करने का अधिकार रखता था।

गांव का पैसा गांव में रहता था। लेकिन कई वर्षों बाद इसमें गिरावट आने लगी। गिरावट का प्रमुख कारण अंग्रेजी शासन था। अंग्रेजी शासन यहां की समृद्धि और संपन्नता और अपने उपनिवेशवाद के लालच में पहले यहां के राजा महाराजाओं को अपने जाल में फसाया फिर उनके द्वारा प्रजा के कल्याण में खर्च होने वाली राशि को कम कराया और लगान अधिक वसूलने पर बल दिया। वह लगातार अपनी नीतियां समाज पर थोपते रहे, अपने राजस्व को बढ़ाने के लिए कई विभाग बनाये और उनके माध्यम से अधिक लगान इकट्ठा करने लगे। साथ ही कृषि कल्याण का हिस्सा काटते-छाटते गए। जिससे किसान कमजोर होने लगे। अंग्रेजों के द्वारा सर्वाधिक क्षति पहुचाने के बाद भी भारतीय किसान आजादी के बाद तक इस ज्ञान परंपरा को संजोते हुए खेती करते रहे। जो भारतीय सकल घरेलू उत्पाद में लगभग पचपन प्रतिशत योगदान के साथ नंबर एक पर बनी रही।

भारतीय ज्ञान परंपरा में कृषि: आज

भारत का खाद्यान्न उत्पादन प्रत्येक वर्ष बढ़ रहा है और देश गेहूं, चावल,

प्राचीन समय के महाकवि घाघ ने ऐसी कई कहावते कही हैं, जो कृषि के संदर्भ में सटीक मानी जाती थी और वह किसान की जिह्वा पर याद होती थी। अतः प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में समृद्ध खेती की परंपरा थी। जिसे प्राकृतिक खेती, जैविक खेती, जीरो बजट खेती के संदर्भ में समझा जा सकता है। इस खेती के कई लाभ थे, जो गोबर की खाद से मिट्टी को उर्वरक एवं उपजाऊ बनाती थी। जो फसल विविधता के कारण ग्लोबल वार्मिंग से मुक्त थी।

दालों, गन्ने और कपास जैसी फसलों के मुख्य उत्पादकों में से एक है। यह दूध उत्पादन में पहले और फलों एवं सब्जियों के उत्पादन में दूसरे स्थान पर है। 2013 में भारत ने दाल उत्पादन में 25% का योगदान दिया जोकि किसी एक देश के लिहाज से सबसे अधिक है। इसके अतिरिक्त चावल उत्पादन में भारत की हिस्सेदारी 22% और गेहूं उत्पादन में 13% थी। पिछले अनेक वर्षों से दूसरे सबसे बड़े कपास निर्यातक होने के साथ-साथ कुल कपास उत्पादन में भारत की हिस्सेदारी 25% है। भारत का खाद्यान्न उत्पादन प्रत्येक वर्ष बढ़ रहा है और देश गेहूं, चावल, दाल, गन्ना और कपास जैसी फसलों के मुख्य उत्पादकों में से एक है। यह दूध उत्पादन में पहले और फलों एवं सब्जियों के उत्पादन में दूसरे स्थान पर है। 2013 में भारत ने दाल उत्पादन में 25% का योगदान दिया जोकि किसी एक देश के लिहाज से सबसे अधिक है। इसके अतिरिक्त चावल उत्पादन में भारत की हिस्सेदारी 22% और गेहूं उत्पादन में 13% थी। पिछले अनेक वर्षों से दूसरे सबसे बड़े कपास निर्यातक होने के साथ-साथ कुल कपास उत्पादन में भारत की हिस्सेदारी 25% है।

आज खेती समाज में निम्न दर्जे का कार्य क्षेत्र माना जाने लगा है। आज के समय में नौकरी सर्वोत्तम कार्य, उसके बाद व्यापार और सबसे अंत में खेती को गिना जाने लगा है। जबकि खेती में प्रकृति और समाज के प्रति समंजस्य, सहजीवन और सहयोग का बोध था, इसमें कोई प्रतिस्पर्धा नहीं थी। वही आज नौकरी एवं व्यापार में प्रतिस्पर्धा एवं प्राकृतिक दोहन सर्वाधिक देखने को मिलता है।

आज भारतीय खेती या कहे तो कृषि का हिस्सा सकल घरेलू उत्पाद में सत्रह प्रतिशत योगदान के साथ तीसरे नंबर पर है। आज खेती समाज में निम्न दर्जे का कार्य क्षेत्र माना जाने लगा है। आज के समय में नौकरी सर्वोत्तम कार्य, उसके बाद व्यापार और सबसे अंत में खेती को गिना जाने लगा है। जबकि खेती में प्रकृति और समाज के प्रति समंजस्य, सहजीवन और सहयोग का बोध था, इसमें कोई प्रतिस्पर्धा नहीं थी। वही आज नौकरी एवं व्यापार में प्रतिस्पर्धा एवं प्राकृतिक दोहन सर्वाधिक देखने को मिलता है। उन्नीस सौ साठ के पहले तक खेती में परंपरागत तकनीक, उपकरण, फसलों की देशी किस्म की प्रजाति स्थानीय एवं परंपरागत थी।

सरकार के द्वारा साठ के दशक में अपनायी गई हरित क्रांति ने कृषि की तकनीक, उपकरण, फसलों की प्रजाति में बदलाव किए। जिसका सीधा असर खेती की परंपरागत व्यवस्था पर पड़ा। इस बदलाव से खेती कारपोरेट के माध्यम से बाजार आधारित व्यवस्था में बदल गई। खेती के लिए बीज, उर्वरक, कीटनाशक, उपकरण, पशुओं की प्रजाति, पशु आहार गांव के बाहर से आने लगे। जिससे किसान का अधिकतर पैसा गांव से बाहर जाने लगा और स्थानीय कारीगर एवं खेतिहर मजदूर मुख्यधारा से दूर होने लगे। पशुपालन कम होने लगा और गांवों में सार्वजनिक चरागाह भूमि की बंदरबांट होने लगी। स्थानीय पशुओं की उपेक्षा से उनकी प्रजातियां विलुप्तता के कगार पर पहुच गई। स्थानीयता का अभाव, जलवायु परिवर्तन की मार, बाजार व्यवस्था की मजबूती एवं सरकारी समर्थन मूल्य की अलाभकारी नीति ने किसानों को कर्ज के जाल में झोकना आरंभ कर दिया। जिसका परिणाम आज

किसानों की अत्महत्या आम बात हो गई है।

इस परंपरा ने बड़ी जोत के किसान को तो कुछ हद तक राहत दी, लेकिन छोटी जोत के किसानों, खेतिहर मजदूरों एवं कारीगरों को गांव से शहरों में पलायन करने और रोजगार तलाशने को विवश किया। उनके लिए आधुनिक महंगे उपकरण, उर्वरक, कीटनाशक, बीज खरीदना कठिन हो गया। हरित क्रांति से देश में चावल और गेंहू का उत्पादन तो बढ़ गया लेकिन सीमित राज्यों तक। समूचे राज्यों में यह क्रांति नही फैल पायी ना ही अन्य मोटे अनाज, दाल के उत्पादन को बढ़ा पायी। इस व्यवस्था में अत्यधिक मात्रा में उर्वरक एवं कीटनाशक के उपयोग से अनाज में पोषण की मात्रा घटने लगी, लोग स्वास्थ्य संबंधी कठिन समस्याओं का शिकार होने लगे, मनुष्य की औसत आयु घटने लगी, मिट्टी की उर्वरा शक्ति खत्म होने लगी, मिट्टी में जल संग्रह की क्षमता को कमजोर किया और सिंचाई की अधिकता को बढ़ाया। देशीय बीज विलुप्त हुए, उनको रखने की परंपरा खत्म हुई।

इसकी तकनीक एवं उपकरण ने मिट्टी के अंदर एवं बाहर रहने वाले जीव-जन्तु को समाप्त किए साथ ही भूगर्भीय जल संकट को भी बढ़ाया। पानी निकालने की नई तकनीकों ने गांव में तालाब और कुओं की परंपरा को नुकसान पहुचाया और उनके प्रबंधन, मरम्मत, निर्माण की उपेक्षा होने से शहरों की तरह आज गांव में भी भूगर्भीय जल स्तर का संकट पैदा हो गया है। खेती की इस ज्ञान परंपरा में प्रकृति के साथ समंजस्य टूटा और उसका असंतुलित दोहन आरंभ हो गया। जो आने वाली पीढ़ी एवं जीवन पर गंभीर परिणाम की ओर इंगित करता है।

खेती की इस आधुनिक ज्ञान परंपरा ने कृषि, किसान, प्रकृति के साथ सम्पूर्ण मानव समाज को भारी नुकसान पहुचाया है। समाज में होने वाली स्वास्थ्य संबंधी दु:साध्य समस्याएं, अनाज में बढ़ते विष और पोषण की घटती गुणवत्ता के साथ प्रकृतिक क्षति को देखते हुए समाज वैज्ञानिकों, चिंतकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं का ध्यान फिर से अपनी प्राचीन एवं परंपरागत (जैविक खेती, प्रकृतिक खेती, शून्य लागत खेती) खेती की पद्धतियों की तरफ गया है। आज उसे अपनाने और उसे बढ़ावा देने पर बल दिया जा रहा है। परंपरागत कृषि ज्ञान आज के वैज्ञानिक कहे जाने वाले कृषि ज्ञान की तुलना में ज्यादा टिकाऊ एवं पर्यावरण अनुकूल था, जिसे अपनाकर आज का किसान समृद्ध एवं खुशहाल बन सकता है।

एक लंबे अंतराल के बाद अब सरकार का सहयोग भी इस खेती की तरफ बढ़ रहा है। लेकिन तात्कालिक रूप से उसे अभी सर्वमान्य मान्यता नहीं मिल पायी है। उसके कई कारण हो सकते है, जैसे बाजार व्यवस्था, उत्पादन, स्थापित परंपरा से निकलने की मनोवृत्ति, लगने वाला समय, सरकारी सहयोग और प्रोत्साहन इत्यादि। लेकिन धीरे-धीरे ही सही इस दिशा में प्रयास जारी है।

देश का सिक्किम राज्य पूर्ण रूप से जैविक खेती वाला राज्य बन चुका है। अन्य कई राज्य भी इसे बढ़ावा देने में लगे है। सरकार के द्वारा अपने बजट में इस विधि से खेती को बढ़ावा देने के लिए प्रावधान किए जा रहे है। आज सर्वसाधारण के अंदर भी जैविक उत्पाद, अनाज, फल एवं सब्जियों के प्रति जागरूकता आई है वह उसके लाभ के महत्व को समझते हुए उसके उपभोग के प्रति सतर्क हो रहे है।

कृषि एवं किसान के गौरव को वापस लाने और उनके जीविकोपार्जन की बेहतर दशाओं के निर्माण के साथ प्रकृतिक संतुलन को बनाए रखने के लिए हमें कई उपाय तलाशने की आवश्यकता है। इइसमें बाजार आधारित व्यवस्था और सरकारी नीति, नियोजन एवं दृष्टिकोण में सुधार करना होगा। जैविक खेती, प्राकृतिक खेती एवं शून्य लागत खेती की आवश्यक दशाओं के साथ उनके लिए एक बेहतर बाजार व्यवस्था का निर्माण करना होगा। बढ़ते तापमान के कारण जैव विविधता को बनाए रखने के लिए जलवायु अनुकूल स्थानीय बीजों एवं जानवरों की नस्लीय प्रजातियों को बढ़ावा, संरक्षण और उनका विस्तार करना होगा।

भारतीय ज्ञान परंपरा में कृषि: कल

कृषि एवं किसान के गौरव को वापस लाने और उनके जीविकोपार्जन की बेहतर दशाओं के निर्माण के साथ प्रकृतिक संतुलन को बनाए रखने के लिए हमें कई उपाय तलाशने की आवश्यकता है। इइसमें बाजार आधारित व्यवस्था और सरकारी नीति, नियोजन एवं दृष्टिकोण में सुधार करना होगा। जैविक खेती, प्राकृतिक खेती एवं शून्य लागत खेती की आवश्यक दशाओं के साथ उनके लिए एक बेहतर बाजार व्यवस्था का निर्माण करना होगा। बढ़ते तापमान के कारण जैव विविधता को बनाए रखने के लिए जलवायु अनुकूल स्थानीय बीजों एवं जानवरों की नस्लीय प्रजातियों को बढ़ावा, संरक्षण और उनका विस्तार करना होगा। छोटे किसानों के अनुकूल कम कीमत के छोटे-छोटे उपकरण, तकनीक का विकास कर उनकी खेती को मजबूती देनी होंगी, जिसमें सामुदायिक अथवा समूह आधारित कस्टम हायरिंग सेंटर की भूमिका सहायक हो सकती है।

रसायनिक खाद की जगह प्रकृतिक खाद के निर्माण, उपयोग, प्रबंधन की आवश्यक दशाओं का निर्माण करना होगा, जिससे कि जहर मुक्त एवं पोषण युक्त अनाज से स्वास्थ्य समस्याओं को कम किया जा सके। जल संरक्षण एवं भूगर्भीय जल को बढ़ाने के लिए तालाबों के निर्माण, प्रबंधन के साथ आधुनिक भूगर्भीय जल दोहन के लिए समन्वित रणनीति अपनानी होगी, जिससे कि आने वाली पीढ़ी को पोषण युक्त, जहर मुक्त अन्न के साथ प्रकृतिक संतुलन बना रहे और कृषि का एक समन्वित मॉडल विकसित हो सके। समन्वित मॉडल की कृषि में कल और आज की ज्ञान परंपरा, उसकी उपयोगिता एवं चिंतन की महत्ता का ध्यान रखना होगा। जिसमें कृषि एवं किसान के सम्मान और समृद्धि का आधार हो। साथ ही कृषिगत ज्ञान परंपरा की विधि, ज्ञान, कौशल, अनुभव, बीज, प्रजाति इत्यादि को भी सहेजने, समृद्ध करने के साथ उसके हस्तांतरण की परंपरा का समावेश होना चाहिए। जो आने वाली पीढ़ी को अपनी कृषिगत ज्ञान परंपरा एवं उसकी महत्ता से परिचय करा सके।

भारतीय ज्ञान परंपरा में कृषि समृद्ध थी, क्योकि उसमें प्रकृतिक सामंजस्य और स्थानीयता का बोध था। वह आज की वैज्ञानिक कहे जाने वाली कृषि ज्ञान की अपेक्षा ज्यादा टिकाऊ एवं पर्यावरण अनुकूल थी। इससे किसान आत्मनिर्भर और खुशहाल रहता था। परंपरागत कृषिगत दशाओं की चिंता, प्रबंधन, निर्माण इत्यादि के प्रति समाज में कर्तव्य बोध, दायित्व, परस्परिक सहयोग, सामुदायिक नियम, उपबंध, संरक्षण एवं हस्तांतरण की भावना रहती थी। आज की कृषि में बाजार और सरकारी नीति ने कृषि-किसान के साथ प्राकृतिक शोषण को भी बढ़ा दिया है। अपने नए-

नए आविष्कार से अनाज का उत्पादन बढ़ाकर कर गोदामों को तो भरा है, लेकिन उसी आविष्कार से किसान बदहाल स्थिति का सामना भी कर रहे है। पोषण की कमी, बढ़ती स्वास्थ्य समस्या, मिट्टी की घटती उर्वरा और बढ़ते जल संकट के साथ खत्म होती स्थानीय प्रजातियों के रूप में इसे देखा जा सकता है। आज गांव का पैसा गांव में नहीं है, किसान को सभी कृषिगत उपक्रम बाहर से लाना पड़ रहा है। कल की आने वाली पीढ़ी के लिए हमें आज चिंतित होने की अवश्यकता है। जिसमें कृषि के समन्वित मॉडल की अवश्यकता पर विचार करने की जरूरत है, जिसमें परंपरागत कृषि ज्ञान और आज की ज्ञान परंपरा का मिश्रण हो। जिसमें प्रकृतिक समंजस्य पर विशेष ध्यान देने के साथ टिकाऊ एवं पर्यावरण अनुकूल कृषि दशाओं का विकास सम्मलित हो। जिसमें विषमुक्त पोषणयुक्त अन्न की व्यवस्था के साथ किसान के गौरव और सम्मान में बढ़ोतरी का आधार समाहित हो।

संदर्भ

1. अक्षरा वाइस. (2017 अगस्त 27). विचार, भारतीय ज्ञान, परम्परा और "वसुधैव कुटुम्बकम्". Retrieved जुलाई 2, 2020, from https://www.youtube.com/watch?v=OvBMD4DB9Ig
2. आलओटीओएक्स इंडिया. (19 सितंबर 2019). भारतीय कृषि व्यवस्था : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं भविष्य की योजना. Retrieved जुलाई 5, 2020, from https://ballotboxindia.com/ap/E/5182186549/?bustcode=lmdz3uct3aym9uewslh5
3. कृषि जागरण डॉट कॉम. (25 मई 2020). भारतीय कृषि और किसान की दशा व मजबूरी. Retrieved जुलाई 10, 2020, from https://hindi.krishijagran.com/editorial/the-condition-and-compulsion-of-indian-agriculture-and-farmers/
4. कोसंबी दामोदर धर्मानंद. (2016). प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
5. पंचगव्य गुरुकुलम. (1 दिसंबर 2017). "उत्तम खेती मध्यम बान, नीच चाकरी कुक्कर निदान". Retrieved जुलाई 5, 2020, from https://www.panchgavya.org/vivid_topic/%e0%a4%89%e0%a4%a4%e0%a5%8d%e0%a4%a4%e0%a4%ae-%e0%a4%96%e0%a5%87%e0%a4%a4%e0%a5%
6. प्रवक्ता.कॉम. (2016). जनकवि घाघ की सटीक कहावतें. Retrieved जुलाई 10, 2020, from https://www.pravakta.com/the-exact-jankavi-consummate-sayings/
7. भारतीय धरोहर. (2020) भारतीय कृषि पद्धति से होगा देश का सर्वागीण विकास. Retrieved जुलाई 5, 2020, fromhttps://www.bhartiyadharohar.com/%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A4%E0%A5%80%E0%A4%AF-%E0%A4%95%E0%A5%83%
8. मिश्र, गि. (2020), भारतीय ज्ञान परंपरा को पहचानने का समय, https://ensembleias.com/editorial/indian-wisdom-tradition/
9. लोक सभा टीवी. (2018 मार्च 3). भारत दृष्टि : हमारी ज्ञान परम्परा. Retrieved जुलाई 2, 2020, from https://www.youtube.com/watch?v=Xgn6_W_6bs4
10. विश्व संवाद केंद्र मध्य प्रदेश. (2019 दिसंबर 2). भारतीय ज्ञान परंपरा और वैज्ञानिक दृष्टिकोण. Retrieved जुलाई 2, 2020, from https://www.youtube.com/watch?v=tytXOwB9jHo
11. शर्मा कृष्ण गोपाल, एवं जैन डॉ. हुकम चंद. (2016). भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास. जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी.
12. श्री राजीव दीक्षित जी. (2019 जून 26). 200 साल पहले भारत में कृषि की स्थिति कैसी थी. Retrieved जुलाई 2, 2020, from https://www.youtube.com/watch?v=96UnmwSIJDI
13. सबलोग. (19 मई 2020). उत्तम खेती, मध्यम बान : निकृष्ट चाकरी, भीख निदान. Retrieved जुलाई 5, 2020, from https://sablog.in/good-farming-medium-scale-bad-food-begging-diagnosis-may-2020/
14. सहाय, डॉ. शिवस्वरूप. (2014). प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
15. सुभाष नाईक. (23 जनवरी 2018). पुरातन भारत एवं कृषि. Retrieved जुलाई 12, 2020, from http:// subhashsnaik.com/%E0%A4%AA%E0%A5%81%E0%A4%B0
16. सेंटर फॉर प्रोफेसनल डेवेलपमेंट इन हायर एजुकेशन, यूजीसी ह्यूमन रेसोर्स डेवेलपमेंट सेंटर यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली. (2016). भारतीय एवं पाश्चात्य ज्ञान परम्पराएँ. नई दिल्ली: शिवालिक प्रकाशन.

———•••———

[1] सहायक प्रोफेसर, (जनसंचार विभाग), राजीव गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, रोनों हिल्स, दोईमुख, अरुणाचल प्रदेश

[2] शोधार्थी, (जनसंचार विभाग), राजीव गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, रोनों हिल्स, दोईमुख, अरुणाचल प्रदेश

संगीत आधारित लोक कथा बाँसगीत

—कुमुद रंजन मिश्र

संस्कृति मनुष्य के विकास के साथ चलती है, और समय पर पड़ते उसके पदचिह्नों को संजोती चलती है। संस्कृतियों का संरक्षण इसीलिए ज़रूरी है कि उनके पास मानव सभ्यताओं का इतिहास है, उनके पास वे सूत्र हैं जो सिखाते हैं कि कैसे एक दूसरे के साथ रहते हुए, एक दूसरे को प्रभावित करते हुए, एक दूसरे को सँवर्धित करते हुए किस तरह जिया जाता है।भारतीय समाज के विकास में बहुलता और सांस्कृतिक समन्वय की प्रबल भूमिका रही है। इसलिए यहाँ की लोक-परम्पराओं में विभिन्न जातियों के ज्ञान, विश्वासों का सतत समावेश होता रहा है। इतना ही नहीं, इनमें विभिन्न नस्लों की रचनाधर्मिता के तथ्य भी शामिल होते रहे हैं। भारत कीइस सांस्कृतिक सम्पदा में छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति इस दृष्टि से बहुत समृद्ध है, जिसमें गीत, नृत्य, और कथा-वाचन शामिल हैं। भोजली, पांडवानी, जसगीत, भरथरी लोकगाथा, बांसगीत, देवार गीत, सुआ गीत, पंथी गीत आदि यहाँ की मौखिक परम्परा के प्रमुख स्थानीय कला-रूप हैं।

दुनिया की तमाम लोक कलाएँ अपने मूल में किसी न किसी श्रम से उत्पन्न हुई हैं। उत्तर से लेकर दक्षिण भारत तक की कृषि परंपरा में खेत जोतने से लेकर, फसल की बुवाई, फसल के कटने के रोपाई गीत, निदाई के गीत, कटनी के गीत खूब गाए जाते हैं। महिलाएँ जब घर में काम करती हैं तो उसके भी गीत हैं। जात चलाते हुए (अनाज पीसते हुए)—जतसार गाया जाता है। कहार जब दुल्हन की डोली उठाते हैं तो उस वक्त कहरवा गीत गए जाते हैं। इसी तरह धोबियों के कपड़े धोने के और भुज्जियों के अनाज भूनने के अपने गीत होते हैं। बाँसगीत की उत्पत्ति को भी हम इसी क्रम में समुदाय विशेष की संपदा की दृष्टि से देख सकते हैं।

दुनिया की तमाम लोक कलाएँ अपने मूल में किसी न किसी श्रम से उत्पन्न हुई हैं। उत्तर से लेकर दक्षिण भारत तक की कृषि परंपरा में खेत जोतने से लेकर, फसल की बुवाई, फसल के कटने के रोपाई गीत, निदाई के गीत, कटनी के गीत खूब गाए जाते हैं। महिलाएँ जब घर में काम करती हैं तो उसके भी गीत हैं। जात चलाते हुए (अनाज पीसते हुए)—जतसार गाया जाता है। कहार जब दुल्हन की डोली उठाते हैं तो उस वक्त कहरवा गीत गए जाते हैं। इसी तरह धोबियों के कपड़े धोने के और भुज्जियों के अनाज भूनने के अपने गीत होते हैं। बाँसगीत की उत्पत्ति को भी हम इसी क्रम में समुदाय विशेष की संपदा की दृष्टि से देख सकते हैं।

गाय भैसों को चराने वाला समाज जब अपने पशुओं को चराने ले जाता था तब वहां समय काटने के साधन खोजते हुए उसने इस लोक शैली का विकास किया।अपनी शुरुआत में यह चरवाहा अथवा व्यक्ति तक सीमित रहा लेकिन धीरे-धीरे यह श्रम की थकान को दूर करने के साधन के रूप में सामूहिक रूप विकसित हुआ। कालांतर में अपने समाज के विभिन्न संस्कारों से जुड़कर जन्म, मृत्यु, विवाह आदि विशेष अवसरों पर प्रस्तुत किया जाने लगा।चूँकि भारत में विभिन्न कार्यों को जातियों के द्वारा निर्धारित किया गया है, इसलिए लोक गीत भी जातीय संरचना में ही मिलते हैं।

बाँसगीत मुख्यतः पशुपालन करने वाली जाति, यादव, ठेठवार और अहीर, समाज में प्रचलित है और उस समुदाय और क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान है। भारतीय सामाजिक संरचना में यादव/ठेठवार/अहीर जाति मध्यम श्रेणी में आते हैं। आज भारतीय संविधान के अनुसार यह जाति पिछड़ा वर्ग में आती है। इनका पारंपरिक पेशा पशुपालन, खेती करना, पशुओं से दूध और उनसे जुड़े उत्पादों का व्यापार करना है। यह समुदाय गीता के श्रीकृष्ण को इसी जाति का मानती है। यह जाति समाज की मुख्यधारा में रही है इसलिए जातीय चेतना और संस्कृति के स्तर पर धनी भी है। इसी संस्कृति की एक कला बाँसगीत है। यह समुदाय बाँसगीत का संबंध कृष्ण से ही जोड़ता है। लोक साहित्य में बाँसगीत एक ऐसी लोकगाथा है जिसमें भारत की आख्यान शैली का एक नमूना तो है ही साथ ही आख्यान की एक लोकवादी परंपरा का परिवर्तनगत परिणाम भी है।समय के साथ लोकवार्ता की संपदा अपने आपको बनाते-संवारते हुए अपना विकास करती है। बांसगीत की इसी तरह एक ऐतिहासिक परंपरा है। लोकगीत और लोक-गाथा जैसा स्पष्ट विभाजन बाँसगीत परम्परा के विकास-क्रम में ही देखने को मिलता है।

यह लोक शैली अपने मूल रूप में गीत रूप में विकसित होते हुए, इस लोकगाथा में सामाजिक जीवन, किसान जीवन, उससे जुड़ी लोक संवेदनाओं के समन्वय के साथ लोक-गाथा के रूप में निर्मित हुई। यानी कि अब इसमें महाकाव्यों की तरह खूब बड़ी-बड़ी प्रबंधात्मक कथाओं की प्रस्तुति की जाती है। इन कथाओं के वाचन में कई तरह के वाद्य यंत्रों को बजाते हुए कथा गायन किया जाता है। पांडवानी, भरथरी गाथाएँ इसी क़िस्म की लोक प्रचलित गाथाएँ हैं। बांस गीत या बांस-गाथा इन गाथाओं में सबसे प्राचीन हैं। वर्तमान समय में इसमें नृत्य को भी शामिल करके अधिक लोक-लुभावन बनाया गया है।

बांस गीत की प्रस्तुति बहुत रोचक दिखाई पड़ती है, जिसमें करीब चार-पांच फुट के बाँस के टुकड़े को वादक बाँसुरी

लोक के लिए सबसे अहम पृथ्वी और उससे मिलने वाले संसाधन थे, जिनसे उनकी जीविका और आर्थिक पक्ष जुड़ता था। इसीलिए पहला सुमिरन धरती, दूसरा सुमिरन गौठान(पशुओं के रहने वाली जगह), तीसरे में गौरैया और इसके बाद हनुमान को याद किया है। लोक परम्पराएँ अपने समकालीन धार्मिक राजनीतिक संस्थाओं से प्रभावित होती हैं, जिससे गीतों के कई स्वरूप निर्मित और प्रचलित रहते हैं। शाक्त संप्रदाय के प्रभाव में इस सुमरनी के कई और रूप भी प्रचलित हैं, जिसमें अपनी कुलदेवी दहिंगला, जो मूलतः तंत्रमंत्र की देवी है, की स्तुति की जाती है।

की तरह बजाता है। यह देखने में कुछ-कुछ बांसुरी की तरह लगता है, इसमें चार छिद्र और दो खुले सिरे होते हैं। गीत की प्रस्तुति में कम से कम तीन लोग लगते हैं जिनमें से एक बांस वादक, एक डेही और एक रागी होता है। कहीं-कहीं दो बाँस वादक और दो रागी के साथ इनकी संख्या पाँच हो जाती है। इनमें डेही कथा गायक को कहते हैं, यह वस्तुतः कथाकार होता है। तीसरा व्यक्ति रागी कहलाता है जो डेही को हुंकारी देता है। इस गीत को गाने का प्रचलन सिर्फ़ कुछ विशेष जातियों में ही होता है, इसलिए इसकी प्रस्तुति से जुड़ी सारी व्यवस्थाओं का ज्ञान भी उन्हीं समुदायों के पास सुरक्षित रहता है तथा पीढ़ी दर पीढ़ी उसको हस्तांतरित किया जाता है। बाँसगीत के मुख्य वाद्य-यंत्र को बनाने के लिए विशेष तरह के 'मालिन बाँस' का उपयोग किया जाता है।

बाँसगीत का स्वरूप

बांसगीत की शुरुआत सुमिरनी से होती है। सुमिरनी यानी अपने देवी-देवताओं, प्रकृति और पुरखों का स्मरण करना। यहसुमिरनी परम्परा लोक जीवन के उस जीवन-चेतना को दर्शाती है जो अपने मिथकों, अतीत-बोध और पर्यावरण-बोध को साथ लेकर चलती है। उदाहरण रूप में-

सदा भवानी मोर दुर्गा दहिंगला
काला सोहाय सिर सेंदुर भवानी
काला काजल कय रेख हो
बांस बजइया के गला पिरागे
सुनवैया के बसे दुनों कान

भरे सभा में कौन गीत छोड़ेव
कोन बैरी कौन मीते हो
पहिली सुमिरंव में धरती अउ पिरथी
दुसर में सुमिरेव में बरिख साले हो
तिसर में सुमिरंव में गौ के गोरैया हो
में तो दुद्धदारी के हनुमान ला हो।[1]

(भवानी दुर्गा जिसके सिर सिंदूर सोहे, किस की काजल रेख। बांस बनाने वाले में पीड़ा हो गई। सुनने वाले के दोनों कोनों में भरी सभा में कौन गीत छेड़ा। कौन बैरी कौन मौत पहले सुमिव करूं धरती और पृथ्वी दूसरे खरिखा साले। तीसरे में गौरिया चौथे में दूधाधारी के हनुमान।)

लोक के लिए सबसे अहम पृथ्वी और उससे मिलने वाले संसाधन थे, जिनसे उनकी जीविका और आर्थिक पक्ष जुड़ता था। इसीलिए पहला सुमिरन धरती, दूसरा सुमिरन गौठान(पशुओं के रहने वाली जगह), तीसरे में गौरैया और इसके बाद हनुमान को याद किया है। लोक परम्पराएँ अपने समकालीन धार्मिक राजनीतिक संस्थाओं से प्रभावित होती हैं, जिससे गीतों के कई स्वरूप निर्मित और प्रचलित रहते हैं। शाक्त संप्रदाय के प्रभाव में इस सुमरनी के कई और रूप भी प्रचलित हैं, जिसमें अपनी कुलदेवी दहिंगला, जो मूलतः तंत्रमंत्र की देवी है, की स्तुति की जाती है। उल्लेखनीय है कि भारत के समस्त समुदायों में शक्ति की पूजा प्रचलित रही है। इसी तरह एक और पाठ, जिसमें जातीय अस्मिता को पिरोया हुआ है, बहुत लोकप्रिय है—

पहली सुमरनी मोर धरती और पिरथी
दूसर सुमरनी गौठान हो
तीसर सुमरनी मोर माता पिता के भैया
चौथे सुमरनी अहिरान हो

इसमें धरती, गौठान, का स्मरण करने के बाद क्रमशः अपने माता-पिता और समाज को याद किया गया है। सुमिरनी के लिए जो छत्तीसगढ़ की स्थानीय भाषा में जो ठेठ शब्द उपयोग मे लाया जाता है जोहरनीन अथवा घोर। जोहरनीन—छत्तीसगढ़ी में अभिवादन के लिए प्रायः जोहार शब्द का प्रयोग किया जाता है। जबकि घोर एक तरह का ध्वन्यात्मक शब्द जो वाद्यों की गूंज का अर्थ देता है।

इस सुमरनी को हम महाकाव्यों के संदर्भ में मंगलाचरण के रूप में देख सकते हैं। बाँसगीत में अपने समुदाय के मूल्यों के अनुरूप सुमरनी करके कथा शुरू की जाती है। इन कथाओं के विविध संदर्भ होते हैं जिन्हें हम सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, जातीय-गौरव और प्रेम से जुड़े संदर्भों में देख सकते हैं। छत्तीसगढ़ में बाँसगीत के दो रूप हैं—पहला बाँसगीत और दूसरा बाँसगाथा। पहले में प्रायः संस्कारों के गीत अथवा मुक्तक दोहे आदि गाए जाते हैं, जैसे—

गीत गोविंद के भाई मोर,
मैं मरमे ल नई जानौ हो।
गीत गवैया के भईया,
मैं चोगी सपचैया अं ना,
बांसे बजैया के संगी,
चिलम देवइया हो ।।

×××

अरे गावें के देवता मोर बांसे ल काटे ना,
अउ अगिन देवता रे छेदै बांस हो
अउ सारदा माता मोर बासिन बजावें न
अउ सरसती न गावे फेर गीत हो...
अहो बन में गरजते वनसपतिया नइते,
डिलवा में गरजै नाग हो
मड़वा म गरजे मोर सातों सुवासिन,
गंगा सभा म गरजै बाँस हो...

एक गीत जिसमें वे पति-पत्नी का संवाद है, पत्नी शिकायत करती है कि राउत उसे बिल्कुल समय नहीं देता है। और ज्यादातर समय पशुओं के साथ बिताता है अतः वह अपने पति से पशुओं को बेचने को कहती है जिससे वे उन्हे पैसे मिलेंगे और वे आराम की ज़िंदगी जियेंगे—

बाँसगीत की कथाएँ अपने आरंभिक स्वरूप में यादव अथवा ठेठवार जाति के दैनिक जीवन की गतिविधियों तथा जन्म, मृत्यु, विवाह आदि संस्कार को अपने सामग्री का आधार बनाती थी। इनकी कथा भारतीय कामगार समुदाय के मनोरंजन एवं चेतना के पारंपरिक निर्माण का साधन है। परवर्ती काल में अपने समुदाय की स्थापना (असरसन) के लिए अपने समाज की बहादुरी और सजीवता की कथा के हिसाब से विभिन्न कथा को जातीय संरचना की रुचि से प्रस्तुति किया।

छेरी ला बेचव, भेंड़ी ला बेचँव,
बेचव करिया धन
गायक गोठन ल बेचव धनि मोर,
सोवव गोड़ लमाय
छेरी ला बेचव, न भेड़ी ला बेचव,
नइ बेचव करिया धन
जादा कहिबे तो तोला बेचँव,
इ कोरी खन खन
कोन करही तोर राम रसोइया,
कोन करही जेवनास
कोन करही तोर पलंग बिछौना,
कोन जोही तोर बाट
दाई करही राम रसोइया,
बहिनी हा जेवनास
सुलरवी चेरिया, पंलग बिछाही,
बँसी जोही बाट
दाई बेचारी तोर मर हर जाही,
बहिनी पठोह ससुरार
सुलखी चेरिया ल हाट मा बेचँव,
बसी ढीलवँ मंझधार
दाई राखें व अमर खवा के
बहिनी राखेंव छे मास
सुलखी बेरिया ल छाँव के राखेंव,
बँसी जीव के साथ

उपर्युक्त गीत में पत्नी के पशुओं के बेचने की बात पर पति क्रुद्ध हो जाता है और कहता है कि पशुओं को तो नहीं बेचूँगा किन्तु यदि तुम फिर से इन्हें बेचने की बात करोगी तो तुम्हें ही बेच दूँगा। इसके बाद इस विषय पर हंसी ठिठोली का लंबा संवाद चलता है। इस गीत के माध्यम से उस समाज का पुरुष, पशुओं के प्रति अपने प्रेम तथा काम के प्रति अपनी निष्ठा की व्याख्या करता है।

इन गीतों में पति-पत्नी के संवाद केंद्र में रहते हैं, जिनमें रूठना, मनाना, शिकायत करना, चुहल आदि के प्रसंग खूब आते हैं। स्त्री पक्ष की इस तरह उपस्थिति इन गीतों को अधिक समतावादी और प्रगतिशील बनाती है। इन गाथाओं मे एक गाथा ग्वालिन अथवा गूजरी अहिरिन की है जो स्त्री के स्वालंबन, उसके अभिमान की कथा है। इसमें नायिका गूजरी अहिरिन अपने पति की अनुपस्थिति मे भी अपना घर चलाने मे सक्षम है। वह अपनी सास से कहती है कि वह राजपूत या ब्राह्मण की स्त्री नहीं है, जो घर में बैठे-बैठे बूढ़ी हो जाएगी, वह अहिरिन है जो गली-गली मे दूध बेचकर घरचलाने मे सक्षम है—

भारतीय समाज अपनी संरचना में जातियों के स्तर पर विभाजित है और इन जातियों का भी एक गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। आज कथित रूप से पिछड़े कहे जाने वाले समुदायों में उनके आत्म गौरव और शक्ति प्रदर्शन के आख्यान एवं गीत प्रचलित हैं। बाँसगीत मे प्रस्तुत एक और कथा जिसे हम चनैनी के नाम से जानते हैं। यह भी छत्तीसगढ़ के यादव अथवा अहीर समाज की गौरव गाथा है। इसमें लोरिक का चरित्रांकन एक आदर्श नायक की तरह किया गया है जिसमें तमाम यदुवंशी गुण मौजूद हैं जिसे देख कर चंदा ग्वालिन उसपर मोहित हो जाती है।

रसपूतिन रतेंव बैरगनिन रतेंव
कुरिया में रहितेंव बुढ़ाय अलिन-गलिन
के मैं बेचइया अंव
कइ दिन रहिहाँ लुकाय
लेखा लेखी में दही दूध बेचंव
अऊ लेखा में लेहूं दाम
चिटकुन मिरजा टेस लगा दिही
खेल म मोला करही मार
दही दूध के पूरा बोहा देहूं
लेवना के बांध देहूं पार.. .

अहिरिन का कहना है कि 'यदि जमींदार उसे परेशान करेगा तो वह दूध दही से बाढ़ लाकर उसे डुबाने की हिम्मत रखती है।' इस गीत से सम्पूर्ण अहीर जाति की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन को समझा जा सकता है।

बांसगीत का दूसरा रूप बाँसगाथा का है, जिनमें लंबी-लंबी कथाएं गीतात्मक शैली में प्रस्तुत की जाती है। इन कथाओं में छहुरा-मकुंदा की कथा है, कंठी ठेठवार की कथा है, गोइंदी राउत की कथा रानी अहिमन, राजा भरथरी, आदि की कथा हैं। इन कथाओं को रात-रात भर गाया जाता है और कभी-कभी तो इसका गायन एवं वादन दो-तीन दिनों तक चलता है। इस आयोजन की कोई तय समय सीमा नहीं होती है, बल्कि वह आयोजक की इच्छा पर निर्भर रहता है। पारंपरिक रूप से यह प्रायः भोजनोपरांत होता है। कलाकार रंग-बिरंगी पारंपरिक वेशभूषा में इसे प्रस्तुत करते हैं।

बाँसगीत में आख्यान

बाँसगीत की कथाएँ अपने आरंभिक स्वरूप में यादव अथवा ठेठवार जाति के दैनिक जीवन की गतिविधियों तथा जन्म, मृत्यु, विवाह आदि संस्कार को अपने सामग्री का आधार बनाती थी। इनकी कथा भारतीय कामगार समुदाय के मनोरंजन एवं चेतना के पारंपरिक निर्माण का साधन है। परवर्ती काल में अपने समुदाय की स्थापना (असरसन) के लिए अपने समाज की बहादुरी और सजीवता की कथा के हिसाब से विभिन्न कथा को जातीय संरचना की रुचि से प्रस्तुति किया। उदाहरण के लिए *गोइंदी राउत* और *छहुरा-मकुंदा* की कथा। यह दोनों कथाएं एक वृहद आख्यान के दो भाग हैं जिनमें राउत जाति की वीरता, शौर्य एवं पराक्रम का निदर्शन मिलता है। इस कथा में हम राउत जाति की सामाजिक संरचना को चिन्हित कर सकते हैं। समकालीन समाज के बरक्स अपनी जातीय अस्मिता को स्थापित करते स्वर इन कथानकों का ध्येय हैं उदाहरण के लिए—

आन जात का उपजे संगी
उपजे जात अहीर हो।
लाठी लोटय चिख्ख्ल कांदों,
गोरस भींजव सरीर हो॥

गोइंदी राउत की कथा में अहिल्ला की सुंदरता से प्रभावित पाटन की रानी उसे भावी संबंधी बनाने का प्रस्ताव देती है जो राजा को अच्छी नहीं लगती है। वह उनकी हत्या के लिए कसाईयों को भेजता है। किन्तु गोइंदी किसी तरह अपने पुत्र की रक्षा करता है। अपने परिवार को बचाते हुए वह राजा से युद्ध करता है जिसमें बहादुरी से लड़ते हुए अपने प्राण त्याग देता है। यही इस वृहद आख्यान के पहले भाग का अंत हो जाता है।

इस आख्यान के दूसरे भाग में गोइंदी के पुत्र छहुरा और मकुंदा की वीरता का निदर्शन किया गया अपने पिता की विरासत को पाने के उपरांत वे पाटन के राजा चंदेला से युद्ध कर उसे पराजित करते हैं एवं रानी की विनती पर उसे प्राणदान दे देते हैं और रानी के वचन अनुरूप पाटन की राजकुमारी सेंदुरिया से विवाह करते हैं।

बाँसगीत की ये दोनों कथाएं अथवा एक कथा के दोनों भाग वस्तुतः इस समाज विशेष द्वारा अपनी जातीय अस्मिता को स्थापित करने की कोशिश है। जिनमें चमत्कार और दैवीय संयोग का सहारा लिया गया है।

भारतीय समाज अपनी संरचना में जातियों के स्तर पर विभाजित है और इन जातियों का भी एक गौरवपूर्ण इतिहास रहा है। आज कथित रूप से पिछड़े कहे जाने वाले समुदायों में उनके आत्म गौरव और शक्ति प्रदर्शन के आख्यान एवं गीत प्रचलित हैं। बाँसगीत मे प्रस्तुत एक और कथा जिसे हम चनैनी के नाम से जानते हैं। यह भी छत्तीसगढ़ के यादव अथवा अहीर समाज की गौरव गाथा है।

इसमें लोरिक का चरित्रांकन एक आदर्श नायक की तरह किया गया है जिसमें तमाम यदुवंशी गुण मौजूद हैं जिसे देख कर चंदा ग्वालिन उसपर मोहित हो जाती है। यह मूलतः एक प्रेम कथा है जिसकी शुरुआत कुछ इस प्रकार होती है कि पनागर नामक राज्य से बोड़रसाय अपने परिवार के साथ आरंग (गढ़गौरा) पहुंचते हैं तथा वहाँ के राजा मेहर को वे भैस का बच्चा उपहार में देते हैं, जिसका नाम सोनपड़वा रखा जाता है। इस उपहार से प्रसन्न होकर वे बोड़रसाय को रींवा राज्य का शासन सौंप देते हैं तथा अपनी पुत्री का विवाह उनके बड़े पुत्र बावन से कर देते हैं। किन्तु कालांतर में जब वे बड़े हो जाते हैं और गौने का समय आया तब तक बावन सन्यासी हो जाता है।इसलिए रींवा नरेश बोड़रसाय अपने दूसरे पुत्र लोरिक को गौना कराने भेजते हैं। जब चंदा लोरिक को क्षणिक रूप में देखती है तो उस अपरिचित व्यक्तित्व से घबराती है किन्तु फिर बाद में उसके रूप पर मोहित हो जाती है और दोनों में प्रेम हो जाता है।

बांसगीत का दूसरा रूप बाँसगाथा का है, जिनमें लंबी-लंबी कथाएं गीतात्मक शैली में प्रस्तुत की जाती है। इन कथाओं में छहुरा-मकुंदा की कथा है, कंठी ठेठवार की कथा है, गोइंदी राउत की कथा रानी अहिमन, राजा भरथरी, आदि की कथा हैं। इन कथाओं को रात-रात भर गाया जाता है और कभी-कभी तो इसका गायन एवं वादन दो-तीन दिनों तक चलता है।

यद्यपि 1946 के आसपास बेरियर एलविन ने इस कथा को संग्रहित कर अंग्रेजी में फोक सॉंग्स ऑफ छत्तीसगढ़ नाम से प्रकाशित किया है, किन्तु फिर भी लंबे समय से मौखिक परंपरा में होने के कारण इस कथा के कई पाठ मौजूद हैं। एक पाठ में जब लोरिक चंदा ग्वालिन का गौना कराकर लौट रहा होता है तो रास्ते में महुआ उस पर मुग्ध हो जाता है और उससे दबावपूर्वक विवाह करना चाहता है। किन्तु लोरिक अपनी वीरता से उसे परास्त कर देता है जिससे चंदा ग्वालिन प्रभावित हो जाती है। यहाँ यह भी उल्लेख करना उचित होगा कि छत्तीसगढ़ के कथागीतों पर शोध करने वाले प्रसिद्ध विद्वान डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव मानते हैं कि"छत्तीसगढ़ मे चनैनी (लोरिक चन्दा) केवल यादव समुदाय की कला नहीं थी उसका गायन अन्य समुदाय के लोग भी करते थे।" इसी क्रम यह भी महत्वपूर्ण है कि चनैनी की कथा न केवल छत्तीसगढ़ में पाई जाती है अपितु यह पूरे भारत मे अलग-अलग नामों से एवं थोड़े-थोड़े पाठ-भेदों के साथ उपलब्ध है।

उदारीकरण के समय में लोक की अधिकतर मनोरंजनपरक साहित्य-विधाएं लुप्तप्राय हैं।

इस तरह मनोरंजन की जो जगह ख़ाली हुई, उसे उदारीकरण के बाद टी.वी. सिनेमा आदि ने भर दिया। ग्राम सिल्वा[2] के जगतराम यादव बताते हैं कि युवा अब इसे सीखना नहीं चाहते, वे मोबाइल में फ़िल्मी गानों की तरफ ज्यादा आकर्षित हैं। इस तरह लोक परम्पराएँ विलुप्ति तक पहुँच गयीं। ऐसा नहीं है कि नए लोगों को आकर्षित करने का प्रयास इन कलाओं ने नहीं किया बल्कि उन्होंने तो इतनी सारी कथाओं को बांसगीत की धुन में पिरोकर समकालीन संदर्भों से जोड़ने की भी कोशिश की है। किंतु फिर भी इस गीत को शौक से सुनने वालों की संख्या आज बहुत कम है। इसे सुनाने वालों की संख्या तो उससे भी कम है।

मध्य-भारत की बहुविध कलाओं के बीच छत्तीसगढ़ की लोक परम्परा में बाँसगीत बेहद प्राचीन लोकधुन है। इतनी प्राचीन कि कुछ लोग इसका सम्बन्ध कृष्ण के समय से मानते हैं। इसके इतिहास के सम्बन्ध में कहीं कोई लिखित उल्लेख नहीं मिलता है। बांसगीतकार इसे अपने पुरखों के सानिध्य से सीखते हैं और इसी रूप में यह आज तक चला आ रहा हैं। यह बाँस रुपी वाद्य की धुन से विकसित होकर आज एक गीति-आख्यान का रूप ले चुका है। इसके आख्यान मौखिक परंपरा में होने के कारण प्रायः बदलते रहते हैं। वर्तमान में जो कथाएँ हम बाँसगीत में सुन सकते हैं उनमेंशीत बसंत, मोरध्वज की कथा, कर्ण की कथा, देवकी वासुदेव की कथा, कंश की कथा, राजा भरथरी की कथा आदि हैं। साहित्य की सम्पूर्ण कला विधाएं अपने समाज, विचार और वातावरण के अनुसार परिवर्तनशील रहती हैं। इसी प्रकार बाँसगीत का भी अतीत और वर्तमान रहा है।

बांस की धुन के बरअक्स कथाकार अलग-अलग तरह की कथाएं अलग-अलग अवसरों पर कहते हैं। इनमें हमें बहुत सी लोक कथाएं गीत रूप में मिलती हैं। कुछ का संबंध राउत जाति के जीवन-व्यापन से है, कुछ जातीय गौरव से संबंधित तो कुछ का संबंध मिथकीय कथानकों से भी है। मध्य-भारत की लोक कथाएं भी इसका हिस्सा हैं जिनमें अहिमन रानी की कथा, लोरिक चंदा की कथा, भतृहरी की कथा को भी सुनते हैं। आजकल कबीर, रहीम आदि कवियों के पद भी गाये जाते हैं।

सरकार राज्योत्सव और आदिवासी महोत्सव पर इन्हें आयोजन का मंच तो देती है किन्तु शिक्षा और जीवन मूल्यों को रचने वाले माध्यम के रूप में इन्हें अब भी स्थापित नहीं किया जा सका है। इन लोक-परम्पराओं के पास सही मायनों में श्रमशील जनता का इतिहास संरक्षित है। इस कामगार जनता का जीवन-बोध, जीवन-शैली, उसकी आकांक्षाएँ और स्वप्न इन गीतों में अभिव्यक्ति पाते हैं। इसलिए इनको संजोना और मुख्यधारा में लेकर आना अपने अतीत और भविष्य को दिशा देने के कारकों की खोज करना है।

संदर्भ :

1 शुक्ल, डॉ. दयाशंकर; छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन; वैभव प्रकाशन, रायपुर; द्वितीय संस्करण, 2011; पृष्ठ संख्या - 230

2 छत्तीसगढ़ में बलौदा बाज़ार जिले का एक गाँव

* यह शोध पत्र मूल रूप से शिकागो विश्वविद्यालय, अमेरिका द्वारा आयोजित XXth South Asia Graduate Student Conference के लिए अंग्रेजी में लिखा गया था जिसे मार्च 2023 में शिकागो विस्वविद्यालय के स्विफ्ट हाल में पढ़ा गया।

———•••———

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जनजीवन में लोक देवता की परंपरा

डॉ मयंक मुरारी

कोई भी ज्ञान परंपरा और संस्कृति जीवन के पहले नहीं हो सकती है। वह जीवन का आधार होती है। सारा ज्ञान और सांस्कृतिक रूप जीवन में और जीवन के द्वारा ही संभव हुए हैं। जीवन की परंपरा का अर्थ है व्यवहार और उसकी लगातार चर्चा करना। लोक का मतलब ही है जीवन की चर्चा और उसके व्यवहार की परंपरा। लोक जीवन का सीधा अर्थ है कि जीवन का सिखाया ज्ञान, जीवन और प्रकृति के संसर्ग से रची गयी कला एवं संस्कृति, दैनिक कर्म के साथ जुड़े धर्म और अध्यात्म का दर्शन और इस संस्कृति धारा में रचे एवं जनमानस में बसे देवी-देवता और उनकी उपासना की परंपरा।

जीवन और यथार्थ जो हमको चारों ओर से घेरता है और हमारे होने का हरपल एहसास दिलाता है और स्मृति एवं धरोहर के तल तक जो मातृसत्ता का विस्तार है, वही लोक है। लोक जीवन जीवन की धन्यता, जीवन की मंगलकामना और उसके विविध रागात्मक सौन्दर्य का गान है। जीवन सुंदर है और मैं जीवित हूं। मैं

वैदिक चिंतन के केंद्र में देवता था। प्रकृति और उसकी शक्तियां—अग्नि, मारूत, पृथ्वी, आकाश, वरूण, इंद्र, सूर्य, चंद्र सब वहां देवत्व रूप में हैं। यहां कण-कण में परमात्मा विराज रहा है, वह पत्र-पत्र में बैठा है, हरेक पुष्प से विहंस रहा है। सरग-पाताल में वह पैठा है। हर जगह वह रम रहा है। विद्यानिवास मिश्र कहते हैं कि जब शास्त्र से मार्ग नहीं मिल सके, गुरु से मार्ग नहीं मिल सके, सदाचार से भी मार्ग नहीं मिल सकें, तो तुम्हें मां से आज्ञा मांगनी चाहिए। मां जो कहेगी, वही धर्म है। मां यानी लोक। लोक ही शास्त्र को नया अर्थ देता है।

जीवन के सभी उत्सव, उमंग एवं सौन्दर्य के साथ हूं। देवी, देवता, मातृशक्तियां, नदी, पहाड़, जंगल, पेड़-पौधे, ऋतुओं का रसगान, पशु-पक्षी, सदैव आशा एवं प्रकाश से परिपूर्ण सूर्य, अपनी मिठास से आकर्षित करता चंद्रमा, विविध स्वर के गान, प्रकृति के नृत्य एवं चित्रकारी और अखंडमंडलाकार हमारा जीवन, जिसमें कोई मृत्यु नहीं है। केवल उत्सव, गति और सौन्दर्य के साथ विकास है। इस प्रगाढ़ जीवन अनुराग और कामना के अनंत स्वर ने हमारे लोक जीवन को बनाया है।

लोक जीवन में देवी देवता की आराधना एवं महिमा गान की शुरूआत अर्थववेद के 12/1/21 के उस सूक्त से होती है, जिसमें कहा गया है माता भूमि:, पुत्रोहम् पृथिव्या:। इसमें भूमि को माता के रूप में मानकर प्रार्थना की गयी है।

इसके अगले सूक्त में बात को आगे बढ़ाते हुए कहा गया है-

असम्बाधं बध्यतो मानवानां,
यस्या उद्धतोः प्रवतः समं बहु ।
नानावीर्या औषधीर्या बिभर्ति,
पृथ्वी नः प्रथतांः राध्यतांः नः।

अर्थात् उन्नत प्रदेश, उत्तुंग शिखर अति सुंदर। नीचे वसुंधरा, नीचे बहते निर्झर। वे हरे भरे मैदान, मनोरम समतल। मानव के सम्मुख सावकाश अगणित थल। जिसपर शोभित हैं, जो भारत की धरती। बहुशक्ति भरी औषधियां धारण करती हैं। वह भूमि हमारे लिए परम विस्तृत हो। उसकी आराधना से हम सबका हित हो।

वैदिक चिंतन के केंद्र में देवता था। प्रकृति और उसकी शक्तियां—अग्नि, मारूत, पृथ्वी, आकाश, वरूण, इंद्र, सूर्य, चंद्र सब वहां देवत्व रूप में हैं। यहां कण-कण में परमात्मा विराज रहा है, वह पत्र-पत्र में बैठा है, हरेक पुष्प से विहंस रहा है। सरग-पाताल में वह पैठा है। हर जगह वह रम रहा है। विद्यानिवास मिश्र कहते हैं कि जब शास्त्र से मार्ग नहीं मिल सके, गुरु से मार्ग नहीं मिल सके, सदाचार से भी मार्ग नहीं मिल सकें, तो तुम्हें मां से आज्ञा मांगनी चाहिए। मां जो कहेगी, वही धर्म है। मां यानी लोक। लोक ही शास्त्र को नया अर्थ देता है। एक लोकगीत में शास्त्र और लोक में क्या अंतर होता है, उसका वर्णन है। एक लोकगीत में सीता को मनाने गुरु वशिष्ठ वन में जाते हैं। वे आज्ञा देते हैं कि पुत्री चलो, अयोध्या चलते हैं। सीता कहती है कि गुरुवर आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मैं दो पग अयोध्या की ओर रखूंगी, लेकिन उस पुरुष का मुख नहीं देखूंगी, जिसने गर्भावस्था में मुझे घर से निकाल दिया। वशिष्ठ की आज्ञा शास्त्र है, सीता का उस आज्ञा को मानना शास्त्र है लेकिन सीता का नहीं जाना, उस पुरुष का मुख नहीं देखने की बात हमारी लोक और उसकी लाज की रक्षा है।

हिंदू धर्म में कोटि कोटि ईश्वर की अवधारण है। यहां 80 करोड़ देवी देवता पूजे जाते हैं। इनमें वे लोक जीवन के वे देवी-देवता भी शामिल हैं, जो गांव-गांव, टोला-टोला पूजे जाते हैं। कुटुंब, परिवार, जाति, ग्राम, कस्बा के स्तर पर भारतीय समाज में देवी, देवता, वीर पुरुष, बाबा, फकीर, मईया की एक परंपरा है, जिसमें लोगों का अटूट विश्वास है। लोक देवों एवं देवियों की गांव के स्तर पर काफी अहमियत है। बिना उनकी अनुमति के या आशीर्वाद के कोई भी नया काम नहीं शुरू होता है। चाहे कहीं जाना हो, शादी विवाह हो, मंगलकामना हो, भोज हो या मृत्यु संस्कार। उनकी अनुमति एवं आशीर्वाद जरूरी है।

लोक देवता में वे देवी-देवता आते हैं जिनकी पूजा संपूर्ण ग्राम या परगने में

संपन्न होती है। ये वे देवता हैं, जिनका उल्लेख वेद और वेदांग में नहीं मिलता है। इस कोटि के देव देवता को ग्रामीणों ने कल्पित कर लिया है और उनको अपने दैनिक जीवन में स्थान दिया है। इन देवताओं की खूबी है कि कुछ देवता की पूजा एक गांव में तो होती है, लेकिन पड़ोस के गावं में नहीं होती है। इन देवताओं को किसी वृक्ष पर, किसी टीले पर, किसी चबूतरे पर, किसी सड़क के किनारे या चौराहे पर, बगीचे में, घर या गांव के पीछे के किसी स्थान पर कल्पित या प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। इनके नाम—योगीवीर, पहलवान, ननकूदास, निमिहावीर, ढेलहा बाबा, चौकिया वीर, अवसान देवी, आसारानी, दशारानी, गरजबीबी आदि प्रमुख हैं।

गांव में टीला या डीह के हिसाब से देवता यानी बाबा का निवास रहा है। कुल देवता, ग्राम देवता, देवी थान, महादेव थान। हरेक इलाके में अलग तरह के लोक देवता का वास होता है। लोक जीवन में जंगल की देवी है, तो पानी के वरूण देव हैं। धरती माता है। सूर्य, चंद्रमा, नदी, कुंआ, पेड़ का झुरमुट, बरगद, पीपल, केला, कटहल आदि वृक्ष को देवी या देवता का पर्यायवाची माना गया है। इन्हें देवी या देवता मानने एवं उसी के अनुरूप पूजा अनुष्ठान की वर्षों की परंपरा रही है। हाल हाल तक गांव के घर में जब कुछ छानने के लिए कड़ाही में तेल डाला जाता था, तो उसकी पहली घानी कुल देवी या ग्राम देवी को चढ़ाई जाती थी। होली में प्रतीक रूप ही सही पहली घानी को अग्नि में समर्पित करने की परंपरा आज भी जारी है।

लोक देवी या देवता का वर्णन हमारे वैदिक वाङ्मय में नहीं है। इनका पूजा स्थान हमारे घर, ग्राम और कुल के निवास स्थल से पश्चिम दिशा की ओर होता था। ये लोक देव सदैव हमारे सामने—सदात्मा और दुरात्मा—दोनों रूप में प्रकट होते हैं। इनके विभिन्न रूप डीहवार यानी डीह का देवता, जाख-जाखिन यानी यक्ष पूजा, पीर-फकीर यानी गाजी मियां, काल भैरव, ब्रहमदेव, राजाबलि यानी शीतला देवी, मरी माता, संकटा देवी, विंध्याचल देवी, भूईया रानी, सती देवी, बाला रानी है।

प्रत्येक परिवार की कुलदेवी दसमहाविद्या में से कोई विद्या होती है। ये दशमहाविद्याएं हैं-काली, तारा त्रिपुरसुंदरी, भैरवी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, बगलामुख, धूमावती, मातंगी, कमला। इसके अलावा कई जगहों पर महामाया, बनीमाई, गौरी, पदमा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, माता लोकमाता आदि लोकदेवी की पूजा भोजपुरी, मिथला, अवध, मगही, ब्रज, अंग आदि बोलियों के भूभाग में होती है। बिहार एवं पूर्वांचल के हर हिंदू के घर में दक्षिण-पूर्व के कोण में कुलदेवता का स्थान होता है। गोसाउनि यानी कुलदेवी और कुलदेवता को मिट्टी की पिंडी पीढ़ी दर पीढ़ी स्थापित रहती है। वह मिट्टी हथिसार, घोड़सार, राजद्वार, नदी-संगम, समुद्र, गौशाला, चौराहा और दीमक के घर से एकत्र की जाती है। पिंडी के ऊपरी भाग में दीवाल पर चावल के घोल, सिंदूर से अष्टदल, कमल, नवग्रह आदि मांगलिक चित्र अंकित होते हैं। कुलदेवता को हरेक

लोक देवता में वे देवी-देवता आते हैं जिनकी पूजा संपूर्ण ग्राम या परगने में संपन्न होती है। ये वे देवता हैं, जिनका उल्लेख वेद और वेदांग में नहीं मिलता है। इस कोटि के देव देवता को ग्रामीणों ने कल्पित कर लिया है और उनको अपने दैनिक जीवन में स्थान दिया है। इन देवताओं की खूबी है कि कुछ देवता की पूजा एक गांव में तो होती है, लेकिन पड़ोस के गावं में नहीं होती है। इन देवताओं को किसी वृक्ष पर, किसी टीले पर, किसी चबूतरे पर, किसी सड़क के किनारे या चौराहे पर, बगीचे में, घर या गांव के पीछे के किसी स्थान पर कल्पित या प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। इनके नाम—योगीवीर, पहलवान, ननकूदास, निमिहावीर, ढेलहा बाबा, चौकिया वीर, अवसान देवी, आसारानी, दशारानी, गरजबीबी आदि प्रमुख हैं।

विशेष अवसर पर खीर की पातरि अर्पित की जाती है।

सालों भर पर्व त्योहार में विभिन्न देवियों की पूजापाठ की जाती है। सावन की नागपंचमी या मौनापचंमी के दिन दूध, धान की खील से विषहरा भगवती यानी मनसा देवी की मौन रहकर पूजा का विधान है। विषहरि नागिन पांच बहनें हैं। सभी बहनें ब्रजनारी को पूजने के लिए माली, पटवा, कुम्हार और गुआर के आंगन में खड़ी होकर क्रमशः बेली-चमेली फूल, पाट सूत, कलश और गाय का दूध मांगती हैं। अपनी पांच बहनों में विषहरा सबसे छोटी थी लेकिन स्वभाव से सबसे क्रोधी और खतरनाक मानी जाती है। बिहार के पूर्वी हिस्सों में विषहरा को लोकजीवन में अहम देवी का स्थान प्राप्त है। ऐसे ही बिहार के पश्चिम भाग में बरहम स्थान को विशिष्टता प्राप्त है। लोक आस्था की यह परंपरा बाद में मनसा और बिसहरा शैव संप्रदाय का अंग बन गया, हालांकि लोकधर्म के स्तर पर उसकी उपयोगिता एवं महत्व बनी रही।

मधुश्रावणी में नयी वधुएं अखंड सौभाग्य की कामना के लिए गौरी और नाग की पूजा 13 दिनों तक करती हैं। भाद्रकृष्ण चतुर्थी को माताएं अपनी संतान के कल्याण एवं सुरक्षा के लिए बहुला की पूजा करती हैं और गोग्रास अर्पित करती हैं। भाद्रशुक्ल तृतीय को हरेक विवाहित स्त्रियां अपने पति की दीर्घायु के लिए शिव-पार्वती की पूजा निर्जला रहकर करती है। इसी प्रकार आश्विन मास के कृष्ण पक्ष के अष्टमी तिथि को संतान के दीर्घायु के लिए खर जिउतिइया का पर्व हरेक माताएं करती है। एक दिन पहले मडुवा की रोटी, झिगनी, कंडा आदि से नहाय-खाय करती है। जिस दिन उपवास रखना होता है उस दिन सूर्योदय के पूर्व दही-चूड़ा का ओठगन करती है। कुमारियों का सामा-चकेबा पूर्व भाईदूज से लेकर कार्तिक मास की पूर्णिमा तक चलता है। इसमे श्रीकृष्ण और जामंबती की पुत्री सामा की पूजा होती है। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अगहन शुक्ल प्रतिपदा तक गौरी की उपासना हरिसौं के रूप में होती है। इसके अलावा कुमारियां श्रेष्ठ पति की कामना के लिए तुषारि पूजा करती है, जिसमें पूरे माघ माह में कौआ के बोलने के पूर्व स्नान के पश्चात गौरी पूजन होता है। माघ शुक्ल पंचमी को विद्या की अधिष्ठात्री देवी मां सरस्वती की आराधना की जाती है। कुलदेवता के अलावा सालों भर लोक जीवन को पुष्पित और पल्लवित करनेवाली देवियों की पूजा-पाठ और अनुष्ठान चलता रहता है। इन लोकपर्व के साथ देवियों की कृपा प्राप्ति के लिए लोक उत्सव, लोकगीत और लोकमंगल का अनुष्ठान भी चलता रहता है।

कुछ व्रत-त्योहार या अनुष्ठान सामान्यतः पूरे गांव के स्तर पर मनाये जाते हैं। लेकिन कुछ अनुष्ठान केवल जाति विशेष के लिए भी है। लेकिन इसमें सभी जाति एवं गांव के लोग सामूहिक या व्यक्तिगत रूप से शामिल होते हैं। प्रत्येक परिवार या टोला के कुछ धार्मिक अनुष्ठान होते हैं जो उस गांव के उस जाति के अलावा अन्य जगहों पर नहीं होता है। हमलोगों के गांव छपरा में सावन के चौथे बुधवार को शोखाबाबा और बनीमाई की पूजा होती है। यह पूजा पूड़ी और खीर से होती है। कटहल की सात दोनियां और मिट्टी की सात ढकनियां में खीर

नाई लोग अपनी हजामत के औजारों की पूजा करते हैं। यह पूजा श्रावण मास के शुक्ल पक्ष में किसी मंगल या शनिवार को होती है। इस दिन कई गांव के नाई समाज के लोग एक जगह इकट्ठा होकर बड़े धूमधाम से इस अनुष्ठान को मनाते हैं। इसी भांति अहीरों की सामूहिक जातीय पूजा काशीदास बाबा की पूजा कहलाती है। यह पूजा प्रायः श्रावण महीने में होती है। कई गांव के अहीर समाज एक जगह जुटते हैं, जहां तीन हंडों में खीर बनायी जाती है। इस खीर से पूजा की जाती है। पूजा करने वाला गृहस्थ होता है। वह गृहस्थ उफनते हुए दूध के आधार पर भविष्यवाणी करता है कि इस साल बाढ़ आयेगी या नहीं, फसल कैसा होगा ? लोग सुखी रहेंगे या नहीं ?

निकालकर रखी जाती है। और चौदह जोड़ी पूड़ियां चढ़ाई जाती है। यह पूजा शाम के बाद शुरू होती है। इसका प्रसाद अगले दिन खाया जाता है। इस पूजा की विशेषता है कि इसे मर्द ही क्रियान्वित करते हैं। घर की बेटियां केवल मूक दर्शक बनकर रहती हैं। वह शोखाबाबा को चढ़ाये प्रसाद को खा भी नहीं सकती हैं।

कुल देवता की पूजा के साथ हमारे जातीय परंपरा में विविध देवों एवं देवियों की पूजा की परंपरा रही है। ये देव शास्त्रीय जीवन के देवता नहीं है। इनका स्थान लोक जीवन में ज्यादा है। कायस्थों में चित्रगुप्त पूजा का उत्सव कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीय तिथि को मनायी जाती है। इस दिन कायस्थ समाज के लोग कलम और दवात की पूजा करते हैं, जो उनके जीविकोपार्जन का साधन माना जाता है। इस प्रकार मछली मारनेवाले वाली एक बीन जाति है जो कलिका, समे, बगेसरी, सायर, माल्हति, बिधिन आदि देवियों की पूजा करती है। इन देवियों की पूजा दूसरी जाति के लोग नहीं करते हैं। इन सभी देवियों के आगे पशु बलि का प्रावधान है। कलिका को चुंदरी और कड़ाह के साथ बकरे की बलि दी जाती है। तो उसमें देवी को बकरा के साथ सुअर और भेड़ चढ़ाया जाता है। बगेसरी को सूअर और कड़ाह तथा सायर को सूअर, माल्हति को भेड़ या बकरे और बिधिन को कबूतर की बलि चढ़ाई जाती है।

नाई लोग अपनी हजामत के औजारों की पूजा करते हैं। यह पूजा श्रावण मास के शुक्ल पक्ष में किसी मंगल या शनिवार को होती है। इस दिन कई गांव के नाई समाज के लोग एक जगह इकट्ठा होकर बड़े धूमधाम से इस अनुष्ठान को मनाते हैं। इसी भांति अहीरों की सामूहिक जातीय पूजा काशीदास बाबा की पूजा कहलाती है। यह पूजा प्रायः श्रावण महीने में होती है। कई गांव के अहीर समाज एक जगह जुटते हैं, जहां तीन हंडों में खीर बनायी जाती है। इस खीर से पूजा की जाती है। पूजा करने वाला गृहस्थ होता है। वह गृहस्थ उफनते हुए दूध के आधार पर भविष्यवाणी करता है कि इस साल बाढ़ आयेगी या नहीं, फसल कैसा होगा? लोग सुखी रहेंगे या नहीं? इसके अलावा अहीर समाज के लोग व्यक्तिगत तौर पर किरिपा बाबा और अमरपीठा बाबा की पूजा करते हैं।

भोजपुर क्षेत्र में नाई, सोनार और कर्मकार जातियों में श्रावण के शुक्ल पक्ष के प्रथम सोमवार, मंगलवार और बुधवार को यह लोक पूजा की जाती है। इसे बुधवारी पूजा कहा जाता है। इसे पुरुष ही संपादित करते हैं। सोमवार के दिन बिना जल मिलाए दूध में सादी खीर किसी मिट्टी के पात्र में बनायी जाती है। और इसे ही चढ़ाया जाता है। दूसरे दिन मंगलवार को जौ का पीठा सिंदूर से टीक कर चढ़ाया जाता है। इसमें दारू का तर्पण भी करते हैं। तीसरे दिन बुधवार को लवण रहित बड़ी और साग बनाया जाता है। सवा सेर की एक ही मोटी रोटी पकाते हैं और चढ़ाते हैं। तीनों दिन घर के बाहर ही पूजा होती है।

भड़भूजे लोग भी अपने भाड़ की पूजा करते हैं। इसे सियरूआ कहा जाता है। बैशाख महीने में सतू-संक्रांति के दिन यह पूजा होती है। उस दिन वे अपने भाड़ को नहीं जलाते हैं। उनके यजमान एक लोटा जल लाकर उनके भाड़ पर चढ़ाते हैं और सिंदूर से टीकते हैं। यजमानों या भड़भाड़ां को इस बात का ख्याल रखना होता है कि जिस भाड़ को वह सालोंभर जला कर रखते हैं, उस दिन अच्छी तरह से ठंडा रहे, ताकि अग्निदेवता प्रसन्न और शांत रहे। इसी प्रकार तुरहा जाति के लोग शनिचरा बाबा की पूजा करते हैं जिसका वर्णन हजारीप्रसाद द्विवेद्वी ने की है।

भड़भूजे लोग भी अपने भाड़ की पूजा करते हैं। इसे सियरूआ कहा जाता है। बैशाख महीने में सतू-संक्रांति के दिन यह पूजा होती है। उस दिन वे अपने भाड़ को नहीं जलाते हैं। उनके यजमान एक लोटा जल लाकर उनके भाड़ पर चढ़ाते हैं और सिंदूर से टीकते हैं। यजमानों या भड़भाड़ां को इस बात का ख्याल रखना होता है कि जिस भाड़ को वह सालोंभर जला कर रखते हैं, उस दिन अच्छी तरह से ठंडा रहे, ताकि अग्निदेवता प्रसन्न और शांत रहे। इसी प्रकार तुरहा जाति के लोग शनिचरा बाबा की पूजा करते हैं जिसका वर्णन हजारीप्रसाद द्विवेद्वी ने की है। दुसाध लोग सलहेस बाबा की पूजा करते हैं। वे इस पूजा में आग को बांधते हैं। उनका जातीय पुजारी आग पर चलता है और फिर पुरोहित ब्राहमण को भी चलाया जाता है।

दुसाध लोग सलहेस बाबा की पूजा करते हैं। वे इस पूजा में आग को बांधते हैं। उनका जातीय पुजारी आग पर चलता है और फिर पुरोहित ब्राहमण को भी चलाया जाता है। अंग्रेजी भाषा के विद्वान प्रशासन जार्ज ग्रियरसन ने 1882 में सलहेस की गाथाओं को पहली बार संकलित एवं प्रकाशित करवाया था। उसका मानना था कि सलहेश एक राजा थे। उनके स्थान को गहवर यानी गुहार का स्थान माना गया। सलहेस बासा की गाथाओं में वीरता और प्रेमरस के चिन्ह मिलते हैं। सलहेस बाबा के भक्तों का गायन आज भी मिथिला एवं नेपाल की तराई के क्षेत्रों में देखने एवं सुनने को मिलता है। मुसहर जाति में दीना-भ्रदी की पूजा होती है। इनकी गाथाओं का भी प्रकाशन ग्रियर्सन ने 1885 में करवाया था। मुसहर जाति अक्सर उंची जमीन पर दीना-भ्रदी का स्थान बनाते हैं और उनको गांजा, दारू तथा सूअर के मांस का भोग चढ़ाते हैं। अब तो बिहार के कई इलाकों में सलहेस की तरह दीना-भ्रदी की मूर्तियां बनने लगी है। पश्चिम बिहार में संपहा बाबा तो कहीं बघौत बाबा की अवधारणा है। ऐसे कई लोक बाबा है जिन्होंने बाघ से लड़ाई की। बघौत बाबा की अवधारणा जनजातीय समाज से जाति आधारित समाज में सांस्कृतिक रूपांतरण का उदाहरण है।

ऐसे कई कहानियां मिलती हैं, जिसमें बाबा की बाघ से लड़ाई को दिखाई गई है। ऐसे बाबाओं में मनसा राम, फेकूराम, दीना-भद्री, केवलसिंह, अमरसिंह, लल्लन बाबा, रघुनाथ भुइयां, जीवराम-बुलाकी आदि का नाम आता है। परंपराओं के गहन अध्ययन एवं विश्लेषण से पता चलता है कि ये वे बाबा हैं जिन्होंने पालतू पशुओं को जंगली जानवरों से बचाने के लिए संघर्ष किया, जान दी या विजय हासिल की। ऐसे ही एक मवेशी रक्षक वीर के रूप में कारू खिरहर का नाम आता है। लोग बताते हैं कि इन्होंने पूरे इलाके में मवेशियों में फैली महामारी को समाप्त किया। समस्तीपुर, वैशाली और मुजफफरपुर के इलाकों में जोगी बाबा की पूजा की जाती है। इनकी मूर्ति ऊंट के सवार के रूप में दर्शाया गया है। इनका संबंध नाथपंथी संप्रदाय से लगता है। अमर सिंह एवं केवल सिंह की पूजा मिथिला के मल्लाह जाति के लोग करते हैं। अमर सिंह के बारे में बताया जाता है कि उसने ब्राह्मण कुल की कन्या कमला नदी को गिरफतार होने से बचाया था। इस कारण वह मल्लाहों के बीच पूजनीय हो गया। इसी प्रकार केवल सिंह का उदय तब हुआ, जब उसने पांच सौ से अधिक मल्लाहों को स्थानीय जमींदार के चंगुल से बचाया। लोहार, बढ़ई और अन्य कारीगर जातियों में नरसिंह का संप्रदाय बहुत प्रचलित है।

मिथिला क्षेत्र में लालबन बाबा, गरीबन बाबा, बिहुला आदि लोक देव का महत्व है। यहां कुमारी और सुहागिनों की पूजा जगदंबा के रूप में की जाती है। हालांकि यह परंपरा भोजपुरी भाषी क्षेत्रों में भी है, विशेषकर नवरात्रा के समय कुमारी कन्याओं की पूजा का विधान है। मल्लाहों की देवी कमला है, मालियों की शीतलामाता है। बिहार के कई हिस्सों में बौद्धी माई की पूजा की परंपरा है। चंपारण, सीतामढ़ी, नेपाल की तराई एवं हाजीपुर के इलाके में स्थानीय लोग एक पिंड के रूप में बौद्धी माई की पूजा करते हैं। श्रुति यह भी है कि बुद्ध की ज्ञान प्राप्ति इसी बौद्धी माई यानी देवी मां की कृपा से मिली थी। यह पूरा क्षेत्र बौद्ध तंत्र के

प्रभाव में रहा है। यहां बौद्ध संप्रदाय के विविध तंत्र मतावलंबी इन इलाकों में उपासना किया करते थे।

बिहार के पश्चिमी इलाकों में जिन बाबा या मलंब बाबा का स्थान बहुत ऊंचा है, उन्हें जाग्रत देव माना जाता है। इन बाबा को लाल लंगोट, छड़ी, गांजा,खीर एवं खडांउ चढ़ाया जाता है। कई जगहों पर इनकी लोकप्रियता के हिसाब से दैनिक रूप में खीर का भोग चढ़ाया जाता है। बाबा का स्थान पीपल के पेड़ के साथ जुड़ा है। लोग इस पेड़ में कच्चा धागा बांधते हैं। चीनी के बने सिरनी और लड्डू से बाबा को खुश किया जाता है।

बिहार के कई इलाकों में काली की पूजा सात पिंडी के रूप में की जाती है। राजपूत बहुत इलाकों में काली स्थान का विशेष महत्व है। कई दलित बस्तियों में भी कालीस्थान होता है, जहां पशु बलि की जाती है। हालांकि ये पशुबलि अब धीरे धीरे कम होती जा रही है। काली की पिंडी भी कई जगहों पर अलग अलग रूप में बनायी जाती है। कई जगहों पर पिंडी पतली और नुकीले आकार की बनाई जाती हैं। लेकिन पूर्वी बिहार के गांवों में यह पिंडी गोलाकार रूप ग्रहण कर लेती है। चंपारण के इलाकों में पिंडी को चांदी या पीतल से ढंकने का भी प्रचलन है।

पिछले कुछ दशक में ये देवी देवता अप्रासंगिक हो गये हैं। या कहें कि अप्रासांगिक बनाए गए है। डिहवार बाबा की स्थिति आज दयनीय हो गयी है। गांव में अब माटी की पिंडा या पिंडी को पूजने या श्रद्धा निवेदित करने वाले बहुत कम

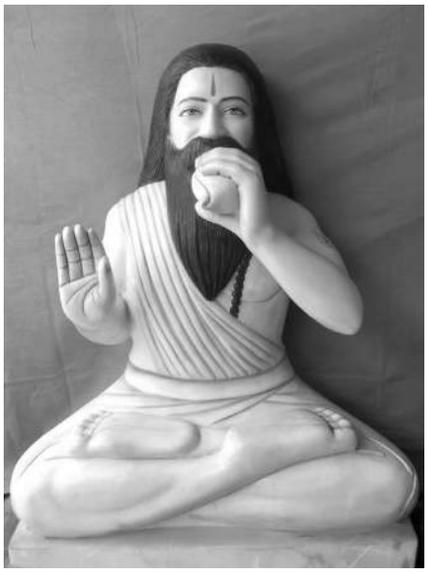

बचे हैं। जो हैं, वे पुरानी परंपरा के लोग है। माटी की पिंडी को अब कोई नहीं पूजता है। गोवर्धन, गायडाढ़ या भतुआदान जैसे पर्व त्योहार सिमट गये हैं। यह कहते हुए इसे सिमटने पर मजबूर किया गया कि ये सब दकियानुसी परंपरा है। हिंदुओं में पाखंड को उतारने की परंपरा चल पड़ी। लोगों का कहना है कि दुनिया 21 वीं सदी में पहुंच गयी और आप लोग इसी पुरातनपंथी, दकियानुसी और लोक देवता के चक्कर में फंसे हैं।

धर्म और आस्था को लेकर व्यक्ति शून्य में नहीं रह सकता। आस्तिकता को खत्म करने की कोशिश से अंततः धर्म और परंपरा के मिटने का खतरा बढ़ जाता है। आस्तिकता हमें जीवन में सकून देता है, उसके प्रति आस्था व्यक्ति को निर्णायक क्षणों में राह दिखाता है। इसके बिना आज जीवन ठूंठ बन गया है। रोजाना तनाव बढ़ रहे हैं। निजी जिंदगी से लेकर सार्वजनिक जीवन में कही कोई किनारा नहीं दिखता, जहां थकने पर, निर्णायक क्षणों में या खुशी और दुख के अवसरों में अपने याद या भाव को प्रकट कर सके।

पूंजीवाद के गर्भ से निकली बाजारवादी व्यवस्था में व्यक्ति केंद्र में है। लेकिन उसके इर्द गिर्द कुछ नहीं है सिवाय व्यक्ति के। वह व्यक्ति जो दिशाहीन है, भागता जाता है। कोई ठौर नहीं। ठिकाने

पिछले कुछ दशक में ये देवी देवता अप्रासंगिक हो गये हैं। या कहें कि अप्रासांगिक बनाए गए है। डिहवार बाबा की स्थिति आज दयनीय हो गयी है। गांव में अब माटी की पिंडा या पिंडी को पूजने या श्रद्धा निवेदित करने वाले बहुत कम बचे हैं। जो हैं, वे पुरानी परंपरा के लोग है। माटी की पिंडी को अब कोई नहीं पूजता है। गोवर्धन, गायडाढ़ या भतुआदान जैसे पर्व त्योहार सिमट गये हैं। यह कहते हुए इसे सिमटने पर मजबूर किया गया कि ये सब दकियानुसी परंपरा है। हिंदुओं में पाखंड को उतारने की परंपरा चल पड़ी। लोगों का कहना है कि दुनिया 21 वीं सदी में पहुंच गयी और आप लोग इसी पुरातनपंथी, दकियानुसी और लोक देवता के चक्कर में फंसे हैं।

का पता नहीं। जिस तरीकें से इच्छाओं और अभिलाषाओं को परवान चढ़ाकर हम असंयमी, निष्ठुर एवं बेचैन बनते जा रहे हैं, जहां व्यवस्था, नियम और विश्वास ध्वस्त होते जा रहे हैं। उसमें आस्तिकता न हो, व्यक्ति के समक्ष आस्था के लोक देव खड़े न मिले, तो समाज का विनाश अवश्यसंभावी है। आत्महत्या, अवसाद, परेशानी एवं बीमारियों के विविध रूप के सामने आने के बावजूद भी हम चिंतित नहीं हैं। अगर इस स्थिति से बच गये, तो भी पूरा देश नास्तिक बन जायेगा। जब संकट आता है, दुख या कोई दर्द आदमी झेलता है, तो कहा जाता है कि ईश्वर को यही मंजूर था। जब लोक जीवन से ईश्वर ही गायब हो जायेंगे, तो क्या मंजूर होगा ? जीवन एक रसहीन यात्रा बन जायेगी !

जीवन में आस्था तथा लोक जीवन में लोक देव और लोक देवी का अनुष्ठान एवं अविष्कार इसीलिए किया गया था कि विपद काल में सहारा मिले। धर्म के सहारे हमने लोक जीवन को ईश्वरत्व से ढंक लिया ताकि जीवन में विश्वास कम न पड़े। इसलिए माटी या गोबर का गणेश बना लिया। अगर वह न मिले, तो भी सुपारी में गणेश की प्रतिमूर्ति स्थापित कर दी। कलश में जल डाल कर कुबेर देवता की कल्पना कीं। सारे शास्त्रीय देव एवं लोक देव को अपने इर्द गिर्द खड़ा कर लिया। पीपल को ब्रह्मा, विष्णु और महेश का वास स्थान बना दिया । उस वास को ब्रह्मस्थान का नाम दे दिया। बरगद की जटाओं को शंकर तो केला के थंबको विष्णु का पर्याय बना लिया। घर में पूजा हो, तो केला एवं बरगद के पत्ते को पूजा के लिए जरूरी मान लिया।

नये दौर में बाजारू एवं भोगवादी बाबाओं की पूछ बढ़ गयी। लोक जीवन में सादगी, सौम्यता एवं सरलता से देवी और देवता प्रसन्न हो जाते थे, लेकिन इस बाजार युग के बाबाओं और देवालय में पूंजी, प्रतिष्ठान और पहचान को ही स्वीकारने का हठ दिखता है। यह पूंजीवाद का वीभत्स रूप है, जो आस्था और धर्म के नाम पर पूंजी का निर्माण करता है और बायप्रोडक्ट के रूप में अपने इर्द गिर्द बिचौलियों और धर्म के ठेकेदारों को खड़ा करता है।

भारतीय लोक जीवन ने ईश्वर को कभी चमत्कारी एवं दूर-सुदूर की चीज नहीं माना। वह तो हमारे लोक मानस का अंग-प्रत्यंग की तरह रहा। हर कदम पर लोक देवी हमारे कष्ट को दूर करने के लिए अवस्थित रही। ईश्वर से लेन देन का रिश्ता नहीं रहा, बल्कि हर पल और हर अवसर का संबंध रहा। सुख हो तो, दुख हो तो। सदैव राजी, उसकी मर्जी।

गांव में हमारे आस्था के मानबिंदू मिटाने का एक ओर प्रयास किया गया तो दूसरी ओर दूर बैठे शास्त्रीय देव एवं देवियों को जनमानस में प्रतिस्थापित किया गया। एक ज्यादा शक्तिशाली भगवान के रूप में। तब हमारी यात्रा वैष्णो देवी, सिरडी, तिरूपति मंदिर को होने लगी। इस बाजार ने लोक जीवन के समक्ष शास्त्रीय जीवन की शक्ति को हमारी आडंबर एवं कर्मकांड के साथ प्रस्तुत किया, तो हमारा नाता रिश्ता अपने लोकजीवन से टूटता गया। दूर बैठे देव एवं देवी में आस्था बढने लगी। क्या यह बाजार का दुष्परिणाम नहीं था कि नये दौर में बाजारू एवं भोगवादी बाबाओं की पूछ बढ़ गयी। लोक जीवन में सादगी, सौम्यता एवं सरलता से देवी और देवता प्रसन्न हो जाते थे, लेकिन इस बाजार युग के बाबाओं और देवालय में पूंजी, प्रतिष्ठान और पहचान को ही स्वीकारने का हठ दिखता है। यह पूंजीवाद का वीभत्स रूप है, जो आस्था और धर्म के नाम पर पूंजी का निर्माण करता है और बायप्रोडक्ट के रूप में अपने इर्द गिर्द बिचौलियों और धर्म के ठेकेदारों को खड़ा करता है।

जब व्यक्ति में तुरंत एवं ज्यादा सुखद परिणाम की चाहत बढ़ने लगी, तो पुरोहित परंपरा ने सुनियोजित ढंग से बाजार को आस्थावान समाज के सामने रख दिया। जिसके कारण लोक देवी-देवता नेपथ्य में चले गये। उच्चताबोध की पाखंडी संरचना ने समाज को धर्मांधता और परजीवी कर्मकांडीय परंपरा एवं बाबाओं के आशीर्वाद की ओर धकेल दिया। लोक परंपरा की आत्मनिर्भरता की संस्कृति से बाजार व्यवस्था की कर्मकांडीय एवं परजीवी संस्कृति ने भारतीय समाज को विध्वंस के कगार पर ला खड़ा कर दिया। आज बाबाओं का बाजार है, 150 से अधिक शंकराचार्य हैं, स्वयंभू जगतगुरु हैं। ऐसे में जनमानस का भटकना तो लाजिमी है। लोक देवता का हमारी कृषि, पशुधन, चारागाह और हमारी गृहस्थी पर

इनका अधिकार मानने के कारण हमारा उनसे प्रगाढ़ संबंध बनता था। इन लोक देवताओं के संसर्ग और संपर्क में भारतीय समाज एक दूसरे के दुख सुख में सहभागी बन जाता था।

आज भी हनुमंत उपासाना का स्वरूप बहुत कुछ चैत्य या ब्रह्म स्थान की परंपरा से मिलता जुलता है। खड़ाऊ, लंगोट, यज्ञोपवित और ध्वजा का अपर्ण, लड्डू का भोग ही नहीं, तेल और सिंदूर का उनके अंगों में पोता जाना, आदिम लोकायत उपासना परंपरा की ओर संकेत करता है। गणपति चैत्य और चंडी चैत्यों में भी सिंदूर का प्रलेप होता है। हनुमान, चंडी, गणपित उपासना पद्धति में षोडशो-पचार, मंत्रोपच्चार, हवन आदि आ गये हैं। कुबेर नाथ राय अपनी पुस्तक रस आखेटक में लिखते हैं कि आदि हनुमान आदिम भारत के लोकायत देवता हैं, जो लोकायत रूप में वैदिक देव श्रीविष्णु के अवसार श्रीराम के समक्ष प्रस्तुत होते हैं। उनकी वैदिक शक्ति के साथ लोक जीवन की शक्ति के जुटने से हनुमान लोकातीत हो जाते हैं। उत्तर भारत के प्रदेश विभिन्न ब्रह्म और वीरों के स्थानों से भरे पड़े हैं।

यक्ष को ही कालातंर के लोकधर्म में वीरों की संज्ञा से विभूषित किया गया। आदिम काल में उत्तर भारत में पंच वीरों यानी पंचभूतों की पूजा की परंपरा थी। कई जगहों पर पंचभूतो से ऊपर माना गया है बा-थौ यानी बाबा और अंबिका को।

लोक में उपासना के विविध रूप

शास्त्रीय देवी—दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती आदि

ग्राम देवी—चंडीदेवी, मनसादेवी, वैमाता, शीतला, सती, सीकरी, चामुंडा, मसानी, वासंती, भूमिया, भुईया रानी

शास्त्रीय देवता—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, गणेश

ग्राम देवता—हनुमान, भूमिया, भैरो, जाहर, बूढ़ेबाबा,

वनस्पति—पीपल, नीम, आंवला, बेल, केला, तुलसी, बरगद, ओक

पंचतत्व—जलदेवता, नदी देवी, गंगा, सूर्य चंद्र, धरती, अग्नि, तारागण, पर्वतपूजा, गोवर्धन, शालिग्राम

पशु—गाय, नीलकंठ, काला कौआ, गरूड़, मोर, कछुआ

अन्य—कुंआ, दीपक, ढोलक, सरोवर, देहली, चाक, पाहन, पवर्त, समाधि, शालीग्राम

भड़भूजे लोग भी अपने भाड़ की पूजा करते हैं। इसे सियरूआ कहा जाता है। बैशाख महीने में सतू-संक्रांति के दिन यह पूजा होती है। उस दिन वे अपने भाड़ को नहीं जलाते हैं। उनके यजमान एक लोटा जल लाकर उनके भाड़ पर चढ़ाते हैं और सिंदूर से टीकते हैं। यजमानों या भड़भाड़ां को इस बात का ख्याल रखना होता है कि जिस भाड़ को वह सालोंभर जला कर रखते हैं, उस दिन अच्छी तरह से ठंडा रहे, ताकि अग्निदेवता प्रसन्न और शांत रहे।

———•••———

चिंतक और लेखक

भारतीय संस्कृति और पेड़ पौधे

– डा शशि गोयल

भारतीय संस्कृति में प्रकृति को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। गंगा को माँ तो हिमालय को पिता कहा गया है। वृक्षों को ऋग्वेद में सर्वत्र पूज्य कहा है,वे धरती की रक्षा करते हैं उसके प्राकृतिक स्त्रोतों को बचाते हैं।

एतरेय ब्राह्मण में वनस्पतियों को प्राण शक्ति बताया है। जिस प्रकार माता बालक को दूध पिलाकर उसका पालन करती है, उसी प्रकार वनस्पितियाँ प्राणी जगत को षक्ति देकर उसका पालन करती हैं।

वृक्ष, पौधे हमारे जीवन में कितना महत्व रखते हैं यह प्राचीन काल से ही ऋषि मुनि जानते थे इसी लिये उन्हें पूज्यनीय बनाया। उन्हें ईश प्रार्थना में उपयोगी बनाया जिससे उन्हें हम आदर और श्रद्धा से देखें। भारत में वैवाहिक

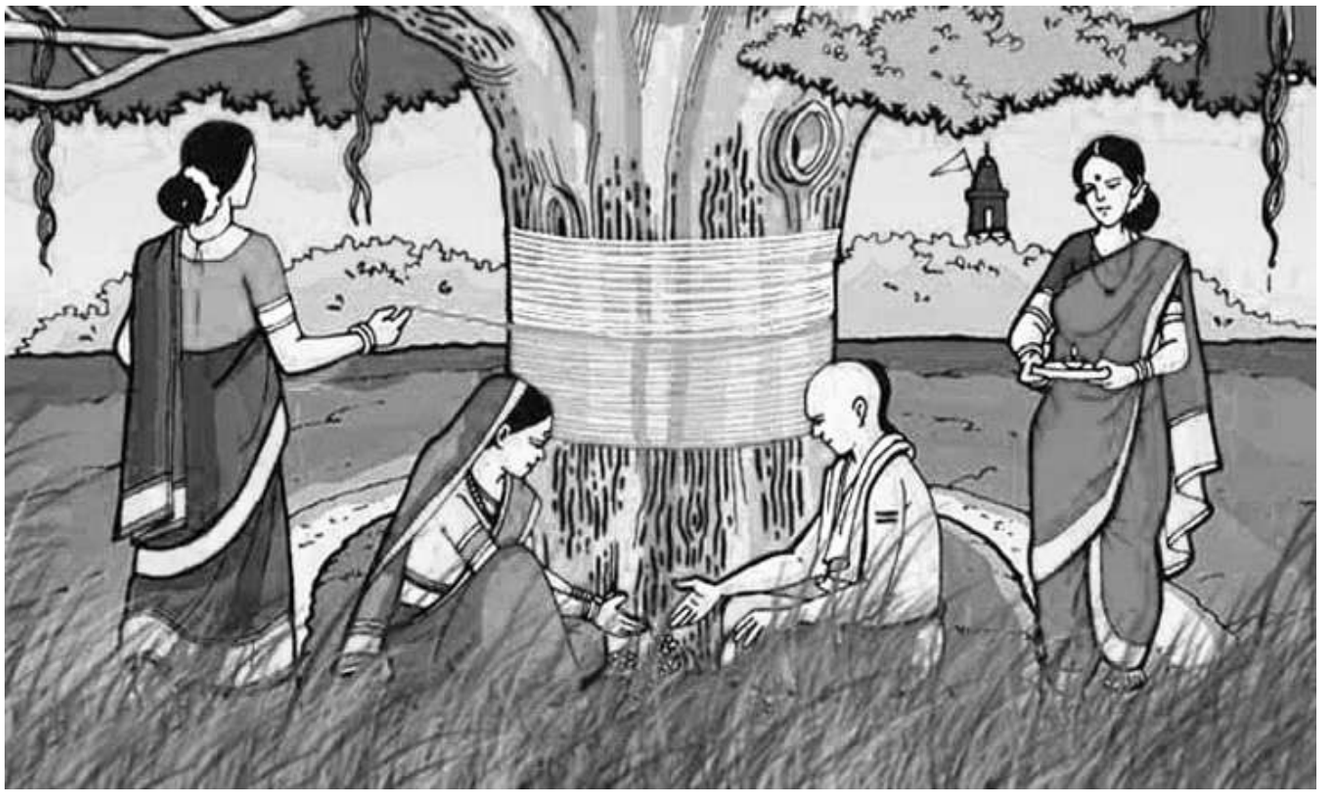

कार्यक्रम सर्वव्यापी और विशाल रूप में आयोजित किया जाता है और सबसे अधिक पेड पौधों को उसकी पूजा में उपयोग में लाया जाता है। तरह तरह के फूल और पत्तों से वैवाहिक विधियों को सम्पन्न कराया जाता है।

आम का वृक्ष धार्मिक अनुष्ठानों में विषेष महत्व रखता है इसे हमारी संस्कृति में बहुत शुभ माना जाता है। यह वृक्ष सदा हरा भरा रहता है। मनु ऋषि ने कहा 'आम्रपल्लव श्रेष्ठम्'। भक्त आम के पत्तों को स्पर्ष कर 'अम्ब अम्बालिके' उच्चारण करके कहता है जैसे सभी ऋतुओं में आम्र की पत्तियाँ हरी भरी रहती हैं वैसे ही मनुष्य आनंदमय और प्रसन्न रहे। इसका प्रत्येक भाग महत्वपूर्ण है लकडी टहनी पत्ते विभिन्न रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। आम के पत्तों की वंदनवार व तोरण मांगलिक कार्यों में घर के द्वार पर टांगी जाती है।

कहते हैं आम का वृक्ष इच्छा पूर्ति का वृक्ष है। आसुरी या प्रेत बाधा दूर करने के लिये आम की पत्तियों का उपयोग किया जाता है। बंगाल में आम के वृक्ष के पास मंगल घट रखा जाता है जो पूरे साल रहता है उसमें पॉच पत्तियों वाली आम की डाली लगाई जाती है इस कामना से कि आम का वृक्ष दीर्घायु एवम् फलदायी होता है। इसमें से निकलने वाला गोंद लालिमा लिये होता है उसका भी उपयोग किया जाता है। विवाह पूर्व तोरण भी पल्लव युक्त टहनी का होता है। हवन में आम की लकडी का उपयोग किया जाता है।

वृक्ष, पौधे हमारे जीवन में कितना महत्व रखते हैं यह प्राचीन काल से ही ऋषि मुनि जानते थे इसी लिये उन्हें पूज्यनीय बनाया। उन्हें ईश प्रार्थना में उपयोगी बनाया जिससे उन्हें हम आदर और श्रद्धा से देखें। भारत में वैवाहिक कार्यक्रम सर्वव्यापी और विशाल रूप में आयोजित किया जाता है और सबसे अधिक पेड पौधों को उसकी पूजा में उपयोग में लाया जाता है। तरह तरह के फूल और पत्तों से वैवाहिक विधियों को सम्पन्न कराया जाता है।

पीपल में भगवान् विष्णु का वास माना जाता है और इसे बेहद पवित्र वृक्ष माना जाता है पीपल की जड़ में विष्णु, तने मे शिव, शाखाओं में नारायण और पत्तों में हरि का वास है। पीपल की पूजा करने से सैंकड़ों यज्ञों का फल मिलता है। पीपल की पूजा यद्यपि शनिवार को की जाती है लेकिन माना वृहस्पति ग्रह का वृक्ष यानि धन धन्य देने वाला वृक्ष माना जाता है। पीपल 24 घंटे आक्सीजन देता है इस पर भूतों का वास माना जाता है। रात्रि को इसके निकट जाना वर्जित है। संभवतः यह इसकी पवित्रता को बनाये रखने के लिये आवश्यक है। सोमवती अमावस्या को पीपल की जड़ में दूध और पानी चढाकर 108 बार परिक्रमा सुहाग के लिये लम्बी कामना करती हैं।

श्राद्ध पक्ष में पितरों की पूजा पीपल वृक्ष के माध्यम से ही की जाती है। पीपल को प्रत्यक्ष देवता की संज्ञा अकारण ही नहीं दी गई है। इसे विष्णु का पर्याय माना गया है। तीनों ही विष्णु के रूप हैं पीपल को वृक्षराज कहा गया है। कारण, जितनी ऑक्सीजन पीपल प्रदान करता अन्य कोई वृक्ष नहीं यह वृक्ष जीवनदायी है।

शीतला माता के हाथ में नीम की डंडी रहती है। नीम की डाली शीतला रोग के लिए एक अच्छी औषधी है और मरीज के निकट रखी जाती है व दरवाजे

पर बाँधी जाती है। इसकी औषधियुक्त गंध वातावरण को जीवाणु रहित कर उसे शुद्ध करती है।

केले का वृक्ष वृहस्पति ग्रह का वृक्ष माना जाता है इस लिये वृहस्पति पूजा में केले का अपना महत्व है। इसका जड़ तना पत्ते फल फूल सभी किसी न किसी रूप में पूजा के लिये प्रयुक्त किये जाते हैं। धन्य धान्य में विपत्ति पर वृहस्पति की पूजा की जाती है इसे लक्ष्मी और पार्वती का रूप माना जाता है जो धन और सुहाग का प्रतिरूप हैं। श्रावण मास में इसका विशेष महत्व है सत्यनारायण की पूजा में केले के तने और पत्तों का अपना महत्व है वैष्णव और शैव दोनों मतों के मानने वाले केले को परम पवित्र मानते हैं। विवाह में केले के तने का मंडप सर्वाधिक महत्व का माना जाता है।

वटवृक्ष को बड़ या बरगद भी कहते हैं। इस वृक्ष का नाम ही वरदान का द्योतक है। वट सावित्री की कथा इसी वृक्ष से संबंधित है अर्थात् लम्बी आयु, निरोगी काया के लिये वट के वृक्ष की पूजा की जाती है यह वृक्ष भी पीपल के समान सर्वाधिक पूज्य है वटवृक्ष से असाधारण एवम् दिव्य तरंगें प्रवाहित होती हैं अतः इसे अधिकतर जल के समीप ही लगाया जाता है वटवृक्ष के पास कुआँ लगाने का उद्देश्य ही संभवतः यह है कि पानी में दिव्य तरंगें समाहित होकर उसे स्वच्छ और साफ रखे। इसकी छाया शीतलता देती है और स्वच्छ वायु का निस्तारण करती है।। मानसिक शांति के लिये इसके नीचे बैठना ऋषि मुनियों को विषेष प्रिय है।

बेल का संबंध शनिग्रह से है। बेल का फल व पत्ते दोनों ही पूजा में उपयोगी हैं। बेल भगवान् शिव का पृथ्वी पर अवतार माना जाता है। साथ ही शिव पार्वती और सूर्य का भी प्रतिनिधि माना जाता है। बेल के फल में मुख्य तीन पर्तें होती हैं। ऊपर की पर्त कठोर अंदर की कोमल एवम् बीज। यह निर्माण, सहवास और संरक्षण का प्रतीक माना जाता है। यह एक मात्र ऐसा वृक्ष है जिसमें तीन पत्तों का गुल्म होता है।

यह शिव के तीन नेत्रों का प्रतीक माना जाता है। शिव की पूजा में बेल पत्रों का विषेष महत्त्व है। श्रावण मास में इन पत्रों पर लाल चंदन से राम राम लिख कर शिव पर चढ़ाया जाता है तो शिव की कृपा प्राप्त होती है। शिव राम के भक्त हैं उन्हें राम नाम विशेष प्रिय है। कनेर का फूल दुर्गा एवम् शिव की पूजा में विशेष महत्त्व रखता है।

गुड़हल का फूल दुर्गा की पूजा में विशेष महत्त्व रखता है। यह सूर्य ग्रह का प्रतीक है। धतूरा शिव का प्रिय फल है श्रावण मास में उन्हें समर्पित किया जाता है। सफेद आकड़ा में शिव परिवार का वास है। श्वेत आकड़ा द्वार पर लगाना शुभ माना जाता है। सफेद आकड़े की जड़ में गणपति विद्यमान माने जाते हैं।

आंवला नारायण को विशेष प्रिय है। आंवला, बेल और तुलसी तीनों एक स्थान पर लगाये जाते हैं वह स्थान परम पवित्र और पूज्य हो जाता है। तुलसी का पौधा हिन्दू धर्म में अत्यधिक पवित्र माना जाता है इसको आँगन में लगाना शुभ माना जाता है। इसकी प्रातःकाल और शाम को पूजा की जाती है, जिनके कन्या नहीं होती वो तुलसी विवाह कर कन्या दान का पुण्य प्राप्त करते हैं तथा विवाह के समय कन्यादान करते समय तुलसी अवश्य हाथ पर रखी जाती है। माना जाता है इससे विवाह स्थिर रहता है।

भगवान् का भोग बिना तुलसी की पत्ती के अधूरा माना जाता है। पंचामृत आदि में, भगवान् की मूर्ति पर तुलसी जरूर चढ़ाई जाती है उसकी सूखी डाल का मोती बना कर उससे जप किया जाता है। हरी तुलसी की पत्ती की माला विष्णु भगवान् पर चढ़ाई जाती है इसे विष्णुप्रिया

दूर्वा का प्रयोग हर मांगलिक कार्यों में अवश्य होता है दूर्वा की उत्पत्ति क्षीर सागर से मानी जाती है उसे लक्ष्मी की छोटी बहन का स्थान प्राप्त है। कहा जाता है समुद्र मंथन के समय अमृत कलश निकला और देवताओं और असुरों में उसके लिये छीना झपटी हुई। अमृत की कुछ बूंदें दूर्वा पर पड़ गई इसलिये वह अमर हो गई। दूर्वा जरा सा जल पाते ही हरी हो जाती है। राजस्थान में दूर्वा को पुत्र का प्रतीक मानते हैं।

भी कहा जाता है। यह माँ लक्ष्मी का प्रतीक मानी जाती है तथा भगवान की पूजा बिना तुलसी के अधूरी मानी जाती है।

मेंहदी रचे हाथ सौभाग्य का प्रतीक माने जाते हैं। कुश घास का भी वैवाहिक कार्यक्रमों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुछ जगह विवाह में कुश घास की अंगूठी बनाकर पहनाई जाती है। कुश को सीता के बाल के रूप में मान्यता प्राप्त है। जब सीता जी पृथ्वी के गर्भ में समा रही थीं तब कुश ने उन्हें बालों से पकड़ने की कोशिष की इसलिये वे बाल कुशा कहलाये। कुश हवन में जल आदि छिड़कने के काम आती है। एवम् कई धार्मिक रीतियाँ बिना कुश के पूरी नहीं होतीं। कुश का आसन पूजा के लिये बैठने के लिये सर्वाधिक उपयुक्त माना जाता है।

दूर्वा का प्रयोग हर मांगलिक कार्यों में अवश्य होता है दूर्वा की उत्पत्ति क्षीर सागर से मानी जाती है उसे लक्ष्मी की छोटी बहन का स्थान प्राप्त है। कहा जाता है समुद्र मंथन के समय अमृत कलश निकला और देवताओं और असुरों में उसके लिये छीना झपटी हुई। अमृत की कुछ बूंदें दूर्वा पर पड़ गईं इसलिये वह अमर हो गई। दूर्वा जरा सा जल पाते ही हरी हो जाती है। राजस्थान में दूर्वा को पुत्र का प्रतीक मानते हैं। पुत्र जन्म के पश्चात् दूर्वा दर्शन करा देने का अर्थ है पुत्र प्राप्त हुआ है। पूजन के पश्चात दूर्वा से ही आचमन किया जाता है तथा उससे धार्मिक रीतियाँ पूरी की जाती हैं। पवित्र जल आदि छिड़कने के लिये कलावे से बंधी दूर्वा का उपयोग किया जाता है। बंगाल में 'आदान प्रदान' विधान में दूर्वा घास का देना शुभ माना जाता है वह उपहार में अवश्य संलग्न की जाती है। विवाह में तेल चढ़ाने की रस्म दूर्वा से ही की जाती है।

सुपाड़ी हल्दी की गांठ चावल आदि का उपयोग हर मांगलिक रस्म में किया जाता है। दूल्हा दुल्हन का गठबंधन इन्हीं वस्तुओं को रखकर किया जाता है।

पान के पत्ते दुल्हा दुल्हन के सेहरे पर बांधे जाते हैं। कलश पर नारियल के साथ पान के पत्ते रखे जाते हैं। हवन या यज्ञ में पान के पत्तों से जल छिड़का जाता है। पान देना शगुन माना जाता है। यह प्रीत प्यार का प्रतीक है। सम्बन्धियों को पान देना मान का प्रतीक है। भोज के पश्चात् पान नारियल अतिथियों को दिया जाता है।

नीम की टहनियों और पत्तों का उपयोग दुल्हा दुल्हन के स्नान में किया जाता है। इनको वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें तो भारतीय धर्म में वह हर वस्तु पूज्य है जिसका हमारे जीवन में, पृथ्वी और पर्यावरण के संरक्षण में महत्त्व है।

———•••———

स्वतंत्र स्तंभकार

अंगिका लोक गीतों में सामाजिक और सास्कृतिक चेतना

—प्रमोद झा

छठ पूजा के पावन अवसर पर ऐसा परिलक्षित होता है कि सम्पूर्ण बिहारवासी आत्यन्तिक रूप से आध्यात्मिक और आस्थामय हैं। अर्ध्य देने वाली स्त्रियों के कन्ठ से प्रस्फुटित छठ गीतों का समवेत स्वर सबको आकृष्ट करता है।

कान्चहि बान्स केरो गहबर लोक गीत हो या हमरौ पर होइयौ सहाय, हे छठी मैया, हमरो के पार लगैय अ परमेश्वरी मैया, अपनै त जाय छौ हे मैया, अंगना मे पोखरी खनाइल, कोन जल परेब मालिन बेली चमेली, डोमिन बेटी सूप नेने ठाढ छै, केरबा जे फडल छै हौद सन, सरीखे लोक गीत जब बजते हैं तो समा बन्ध जाता है।

इन लोक गीतों से इतर और भी अधिसंख्य वैवाहिक बिध व्यवहार, परिछन, दूल्हा स्वागत, गलसेदी, समधी को गाली, उपनयन सम्बंधित गीत हैं, तो मधु श्रावण और विभिन्न रस्मो रिवाज

वाले अन्यान्य गीतों की बहुलता है जो भी श्रोता सुनते हैं, बड़े भाव विभोर होते हैं। इसके अलावा विषहरी बिहुला, शीतला देवी माता के गीत भी अपनी विशिष्ट परम्परा और सांस्कृतिक चेतना के आज भी सम्वाहक बने हुए हुए हैं।

यह कहना प्रासंगिक है कि आधुनिकता के बावजूद ऐसे लोकगीतों की प्राधन्यता और अधिमानता अंगिका भाषी जन समुदाय और समाजों में बनी हुई हैं।

इन सुमधुर गीतों की बडी़ पृष्ठभूमि, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश है। उल्लेखनीय है कि बिहार और झारखंड के अनेक जनपदों, नेपाल के तराई क्षेत्रों में भी अंगिका भाषी लोग हैं और लोक गीतों का काफी प्रचलन है। महाकवि राहुल सांकृत्यायन जी द्वारा अंग जनपदों की भाषा का नामकरण अंगिका किए जाने के बाद लक्ष्मी नारायण सुधांशु की अध्यक्षता में 1956 में अंग भाषा परिषद की स्थापना की गई थी। इस भाषा के उन्नयन के लिए अनेक साहित्यकारो ने सराहनीय कार्य किया। उस दौर में अंगिका को आन्दोलन के रूप में आगे बढ़ाने का बीड़ा उठाया गया था। आज अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन होने के साथ ही सम्पादित लोक गीतों के अनेक वीडियो प्रदर्शित हो रहे हैं।

आकशवाणी केन्द्र भागलपुर और पटना केन्द्र आदि से भी लोक गीतों का प्रसारण हो रहा है जो लोकप्रियता की दृष्टि से काफी सराहनीय प्रयास है। डॉ. वैद्यनाथ पान्डेय और राधा वल्लभ वर्मा द्वारा लिखित 422 पृष्ठों की एक पुस्तक में पांच सौ गीत, फेकडा, लोरियां, भजन

बिहार और झारखंड के अनेक जनपदों, नेपाल के तराई क्षेत्रों में भी अंगिका भाषी लोग हैं और लोक गीतों का काफी प्रचलन है। महाकवि राहुल सांकृत्यायन जी द्वारा अंग जनपदों की भाषा का नामकरण अंगिका किए जाने के बाद लक्ष्मी नारायण सुधांशु की अध्यक्षता में 1956 में अंग भाषा परिषद की स्थापना की गई थी। इस भाषा के उन्नयन के लिए अनेक साहित्यकारो ने सराहनीय कार्य किया। उस दौर में अंगिका को आन्दोलन के रूप में आगे बढ़ाने का बीड़ा उठाया गया था।

कीर्तन और करमा धरमा वाले अन्य गीत भी सन्ग्रहित हैं। जागरूक लेखक कुन्दन अमिताभ के अनुसार अंगिका भाषा तेरह सौ सालों के काल खंडो में बिखरा।

प्राचीन काल में यह अंग प्रदेश था। सोलह महाजनपदों में एक। यो तो डॉ. ग्रियर्सन ने आंगी भाषा को पहले छिका छिकी का नाम दिया था किन्तु यह अनुपयुक्त था। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन जी ने अंगिका भाषा कहकर पुकारा। ऐतिहासिक नगरी चम्पा नगर में विषहरी केन्द्र है और सती बिहुला के गीत बड़े प्रचलित हैं। न केवल भागलपुर बल्कि और भी निकटवर्ती शहरों बांका, गोड्डा, साहेबगंज, महगामा, पीरपैंती, कटिहार, पूर्णिया आदि में अंगिका संस्कृति की बहुरंगीय झलकी और छटाएँ हैं तो झारखंड के भी इलाकों में लोक गीत का खासा चलन है।

विशेषत: स्त्रियाँ एक से एक झूमर गाती हैं।

कृष्ण बसिया बजाबै राधा खेल झूमरी
खेल झूमरी हे खेलाबै झूमरी
राधा के सोहे कान म कुन्डल
कृष्ण के सोहे लटुकदार पगडी
कृष्ण बसिया बजाबै राधा खेल झूमरी

राधा कृष्ण की यह शोभा का वर्णन अनूठा है।

इसी तरह पावन अवसरो पर मनभावन लोक गीतों की स्वरलहरिया गूँजती हैं।

कोयल बिन बगिया न सोहे राजा
पिया जी के नेहिया
हे छोटी ननदी
हमरो बिहार है प्रधान,

शीतला माता के मनौन गीत भी भक्ति रस प्रवाहित करते हैं। विपत्ति से उबरने के लिए लोग शीतला माता की शक्ति की वन्दना करते हैं।

और भी गीत कर्णप्रिय हैं—

गुलाबी रंगल हे ठोर, किनका घरै
भगवती कहलाने, मैया प्रसाद बाँटती
नैया लेने आवा रे मलाहा, मैया हे,
होहिए असवरिया, अइली दुखहरनी
भवानी, मैया के मनाय लेबै हे,
उठो मैया, बाँटो परसाद,
कहाँ से अइलै शीतल बूढी माय,
चरण हम पूजबै भगता कहलैबे,
मालत गला शोभै चम्पा फूल, कोखी नै

पुत्र हे ननदो, घूमै छै शीतल मैया
फूलगेन्दवा न गे, औरी झौरी लै छा
कौन फूल रतिया न फूलै हे, छूटलै
नैहरिया नय हे, मैया देलु कै वरदानमा
धूप देलिहै धूमन मा देलिहौ, पांच पान
भगता रै, बाग रै बगीचवा हे
सावन महीनमा मैया
बरसा के फुहरिया, पनमा
ऐसा पातर हे मैया,
अडहुल फूलवा हो राम,
जब शिवजी अइलन कर
जोरी विनती कहौ,
सोनहू के दियारा,
अहो रामा गंगा निरमल नीर,
मैया हे बगीचबौ लगैलकरै हे।

ऐसे उक्त लोक गीतों के तो अनेक विडियो भी उपलब्ध हैं जो पावन मौकों पर झंकृत होते हैं। अंगिका लोक गीतों में माधुर्य है, और पिछले दशकों में अहो रामा का टेर बहुत प्रभावी था जो आज भी प्रयुक्त होते हैं। यह रसास्वादन की दृष्टि से अत्यंत मनभावन है।

उस काल खंड में लोक गीतों को पश्चिम बंगाल के जात्रा दलों और थिएटरों ने प्रभावित करने की कोशिश की। ये दल जगह जगह नौटंकी करते थे किन्तु अहो रामा का स्वर हाशिये पर नहीं रहा। लोक गीतों पर कुछ दुष्प्रभाव भोजपुरी फिल्मों के चलते पड़ा, साथ ही भदेस, घटिया और दो अर्थ वाले अश्लील गीतों का भी कुप्रभाव पड़ा, जिसके कारण आज भी इन गीतों से लोक गीतों को खतरा बना हुआ है। शादी ब्याह के अवसरों पर अंगिका लोक गीतों का ही वर्चस्व है लेकिन डीजे वाले ऐसे भी बाबू इतने तादाद में हो गए हैं कि बारात के दौरान ये

पुरातनता का सम्यक विश्लेषण किया जाए तो एक लोक गीत ही साथ दे रहा है। चूल्हे की जगह गैस सिलेंडर है और भी चीजें वास्तविक धरातल पर नहीं हैं। यहाँ डॉ. कुंज बिहारी की मानें तो पुराने युगों का सन्देश लोक गीतों से पहुँचा है। नए-नए रूपरंगों के साथ लोक गीत अतीत से वर्तमान, वर्तमान से भविष्य की ओर गतिमान है। हताश, निराश मन में आशावादी रुझान जागृत करता है, जीवन जीने की कलाओं को आयाम देता है।

बाबू भोजपुरी गीतों को चलाकर युवाओं को डांस के लिए खूब उकसाते हैं। इस दुष्प्रवृत्ति के चलते अच्छे हिन्दी गीतों का भी हाशियाकरण हो रहा है।

सच पूछिए तो यह घटियापन लोक गीतों की प्रवहमानता के लिए ठीक नहीं है। प्राकृतिक है लोक गीत और अनेक सुन्दर और प्रभावी प्रतिमान हैं इसके।

देखिए कि आदिवासी माटी में भी लोक गीत रचे बसे हैं। झारखंड के अनेक गाँवों में अंगिका लोक गीतों का प्रभाव है। आज भी पावन अवसरों पर ऐसे गीत रस प्रवाहित करते हैं। देश में जब अकाल पड़ा था तो इस विपदा की गीतों मे अभिव्यक्ति हुई।

मकैया रे तोर गुन गयलौ न जाय

गहराते अन्न संकट के चलते बार-बार मकई अर्थात मक्का खाने की विवशता की तीव्र आलोचना हुई। मकई का गुणगान असह्य है।

नाटकों में भी लोक गीतों का प्रस्तुतिकरण पहले होता था और दर्शक खूब तालियां पीटते थे।

गेहुवा के आरी आरी
मारे सिसकारी,
मोरा चढल बा जवानी,
गौना लैले राजा जी

कम उम्र में ब्याह करने वाली नवयुवती यह अभिव्यक्त कर रही है कि जब वह खेत पर जाती है तो मनचले सीटी बजाते हैं, इसलिए मेरे सैया तुम आकर जल्द गौना ले लो।

उ छौडवा कनखी मारै छो गे मैया
भैया क बोलाय क मरवाओ गे मैया

भावार्थ यह है कि लड़की को जवान लड़का आँख मारता है और लड़की अपनी माँ से कहती है कि भाई को बुलाकर कनखी मारने वाले लड़के को पिटवाओ।

अस्सी के दौर में भी अनेक अंगिका लोक गीतों ने श्रोताओं का मनोरंजन किया।

कैसे बनी कैसे बनी फुलौरी बिन चटनी
कैसे बनी, कैसे बनी
छौडी पतरकी गे मारे गुलेलवा जियरा
मरी मरी जाए

भावार्थ है कि पकौड़ी बिना चटनी का है, बिना चटनी ये पकौड़े ही क्यों बन गए? इसी तरह अन्य गीत का मतलब है कि पतली छरहरी नवयुवती अपनी नजरों से तीर इस कदर चला रही है, कि प्रेमी

का जियरा उसके वश मे ही नहीं रहता है। यह दोनों गीत काफी हिट हुए थे और वर्तमान समय में भी बहुत से लोक गीत हिट हैं और संगीत व्यापार से सम्बद्ध लोग कमाई कर रहे हैं।

खैर, यह तो व्यवसायिक पक्ष है। दूसरे जो विचारणीय पक्ष हैं वो है सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना जो हर दृष्टि से मान्य और खास मायने लिए हुए हो।

संकट के इस दौर में भाषा और गीत अस्मिता को बचाने की आवश्यकता है। खास तौर पर ग्राम्य संस्कृति की जिसकी अर्थमयी बानगी और झलकियाँ हैं। दरअसल, यह सहज लोक चेतना है, कृत्रिमता नहीं, प्रत्युत जन-जन की अनुभूतियाँ हैं। तीज, त्यौहारों के मौके पर भी लोक गीतों का आस्वादन प्रसन्नतापूर्वक किया जाता है। स्त्रियों के गीत रस घोलते हैं। शुष्क और नीरस जीवन में एक सन्जीवनी की मानिन्द। होली के रन्गो में सराबोर व्यक्ति अपनी अथाह प्रसन्नता को अभिव्यक्त करते हैं। होली में लोक गीतों पर झूमते हैं।

मोहन नन्दलाल मोहन नन्दलाल
हम सब रंग खेले, रंग खेले हो लाल
बीचो में आवै, ई नटुआ,
अरे नटुआ हो लाल,
आय तअ पूरा देहिया रंगलो
कहैं सब छर रर छर रर, छर रर

और होली गीत यह भी बेजोड़ है—

होली खेल रहे शिवशंकर
गौरी पारबती के संग
चलै नदियों के संग
गले में रुद्रों की माला सर्प
लिपट रहे अंग

लोक गीत गाकर स्त्रियाँ प्रसन्न हुई, मानस पर वांछित प्रभाव, मन को मिठास, स्पंदन और संवेदना से श्रोता समूह भी आप्लावित हुआ। सकारात्मक बदलाव के निमित्त अंगिका लोक गीतों की इस भूमिका की अनदेखी नहीं की जा सकती। संस्कार गीतों से भी सही मानसिकता संस्कृति संजोने के लिए होनी चाहिए। सोहर, मुण्डन, समुझावन, उपनयन, विवाह, विदाई व द्विरागमन आदि लोक गीत परम्परा सम्वाहक हैं।

होली खेल रहे शिवशंकर
गौरी पारबती के संग

लोक गीत विधा स्वतंत्र रूप से स्थापित है। गौरतलब बात है कि बिहार और झारखंड में तरह-तरह की जातियों के बीच किसिम-किसिम के लोकगीत हैं। पहले जो संथाल परगना था, उसकी जो विशेषताएं थीं, वो बदलते समय के साथ उतनी आत्मीयता और संवेदना लिए नहीं हैं। प्रतिमान आज बदले हैं। आदिवासी समेत अन्य जन समुदायों में पृथक-पृथक लोकाचार हैं, कला, संगीत आदि से नि:सृत लोक चेतना वास्तव में सांस्कृतिक आधारों को पुष्ट करती है।

भले आज आधुनिकता और प्रगतिशील विचारों का आधिक्य है किन्तु और भी विकल्प सोशल मीडिया के माध्यम से गायक व गायिकाएं लोक गीतों को आयाम दे रहे हैं। जन समुदायों में देवी देवताओं से संबंधित लोक गीतों का भी संगीतमय माध्यम दृष्टिगत हो रहा है।

आदिवासियों के बीच भी संथाली लोक गीतों का संगीतमय संसार है। अंग्रेजों से लड़ने वाले आदिवासी वीरों के किस्से और गीत हैं। यहाँ खास यह है कि गोरों की अधीनता इन आदिवासियों ने स्वीकार नहीं की। इसके इतर देखें तो एक लोक संस्कृति के रूप में सुंदर कलाएँ हैं। वे अपने घरों की दीवारों पर पशु, पक्षी और अन्य चीजों का कलात्मक चित्रांकन करते हैं। काली, सफेद, माटी, मृतिका, मुरदाशंख, मुल्तानी जैसी तैयार मिट्टी और रंगों की सहायता से नयनाभिराम चित्र और छवियां उकेरते हैं। पहले की आदिवासी स्त्रियाँ ऐसा चित्रण करने के समय लोक गीत भी गाती थीं। यही नहीं, धनरोपनी में भी कंठ से गीत उभरते थे।

जैसे और जिस तरह आज हर तरफ कंक्रीट का जंगल आबाद हो रहा है, वन्य संसाधनों का दोहन हो रहा है उसके कारण लोक संस्कृति पर प्रभाव पड़ रहा है। लोक ग्राह्यता पर भी प्रभाव पड़ने से चेतना का पक्ष कमजोर हो रहा है। लोक गीतकारों ने भी ऐसे अनुचित कारको की पड़ताल की है। लोक गीतों की अंतर चेतना को और भी कवियों ने अभिव्यक्त किया है। इन गीतों में जीवन के सुख-दुःख, आस-निराश, खुशी-गम हैं और इन भावों से साहित्य भी अतिरंजित है।

अपनी माटी की अलग खुशबू है, एक सम्मोहन भी। असंतुलित आचार-विचार नहीं। लोक जीवन की सच्चाई इन्हीं विशेषताओं के साथ रूपान्वित हुई है।

वन प्रांतरो में स्थित आदिवासी घरों में आज शैक्षणिक चेतना के चलते यो बदलाव दृष्टिगोचर हो रहा है। वो पहले जैसी जीवन धाराएं नहीं हैं। प्राकृतिक सुषमा, पुष्प सौरभ, नदी झरनों का कलकल नाद, पक्षियो का कूजन और चहुं ओर फैली हरीतिमा मनुष्य को आह्लादित करती था किन्तु आज ऐसी चीजें परिदृश्य से गायब हैं। आदिवासियों के पहले जैसे औजार भी नहीं हैं। ऐसे बदलाव के कारण लोक गीतों पर प्रभाव पड़ा है लेकिन तकनीकी विकास ने और दूसरी चीजों को स्थानापन्न किया है।

पुरातनता का सम्यक विश्लेषण किया जाए तो एक लोक गीत ही साथ दे रहा है। चूल्हे की जगह गैस सिलेंडर है और भी चीजें वास्तविक धरातल पर नहीं हैं। यहाँ डॉ. कुंज बिहारी की मानें तो पुराने युगों का सन्देश लोक गीतों से पहुँचा है। नए-नए रूपरंगों के साथ लोक गीत अतीत से वर्तमान, वर्तमान से भविष्य की ओर गतिमान है। हताश, निराश मन में आशावादी रुझान जागृत करता है, जीवन जीने की कलाओं को आयाम देता है।

जन समूहों में मानवीय संवेदना मुखर है तो सामाजिक चेतना भी अभिव्यक्ति पाती है। परदेस की पीड़ा, वियोग से संतप्त स्त्रियों के गीत मन को छूते हैं और भोजपुरी इलाकों में ऐसे विरहा पक्षों को उजागर करने वाले बहुत से गीत हैं।

उल्लेखनीय है कि टी सीरीज ग्रुप ने सालों पहले डोलिया कहार रिलीज किया था जो अंगिका क्षेत्रों में बहुत लोकप्रिय हुआ और इसकी देखादेखी बिहार की संगीत कंपनियों ने अनेक कैसेट और वीडियो जारी किए।

इस दौर में डोली का चलन ना के बराबर है और कहार भी नहीं मिलते। बहुत से श्रमिक पंजाब, दिल्ली और दीगर शहरों में मेहनत मशक्कत करते हैं और वे कहार की भूमिका में आ ही नहीं पाते हैं। चमकीली, सजी धजी कारों ने डोली प्रथा का सत्यानाश कर डाला है। विसंगत पक्ष तो यह भी है कि अब करियर को बढ़ावा देने वाली लड़कियां भी दशकों पहले वाली लड़कियों की तरह ससुराल जाते समय फूट-फूट कर रोती नहीं हैं और डोली की जगह कार में बैठ कर दो आँसू पोंछ लेती है।

ब्याह बाद कन्याओं की विदाई से सम्बद्ध विरह वेदना वास्तव में असहनीय होती है और वेदना को माता और पिता द्वारा लोक गीत के जरिए अभिव्यक्त किए जाते रहे हैं।

हम कोना क अ रहबै तोरो बिना गे बेटी
हम त अ मरियै जैबे तोरो बिना गे बेटी

आँसूं बहाती माता कह रही है कि तुम्हारे बगैर बेटी मैं जीवित कैसे रहूंगी। अलबत्ता, चाहे परदेश नौकरी करने गए पिया की जुदाई वाले गीत हो या ससुराल जाती बेटियों की पीड़ा हो, यह कारुणिक है और लोक गीतकारों ने अंगिका भाषा में अच्छे गीतों की रचना की है।

जब सामुदायिक या जन समाज के गीत मर्मस्पर्शी होते हैं तो लक्षित विचार और भावों की अनूठी भावप्रवणता सतह पर उभरती है।

इस सन्दर्भ में प्रदीप प्रभात कहते हैं कि जन समाज के अपने गीत होते हैं, जिनमें समाज विशेष की जीवनाभूति की अभिव्यंजना होती है। जीवन की हरेक दशा जन्म से मृत्यु उपरांत लोक गीत समयानुकूल भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। लोक गीत में जीवन के विविधरंगों और भावों की अभिव्यक्ति होती है। इनमें कल्पना के साथ रस भाव और नृत्य का आवेग भी अपना काम करता है।

प्रायः देखने मे आया है कि लोक गीत गाकर स्त्रियाँ प्रसन्न हुईं, मानस पर वांछित प्रभाव, मन को मिठास, स्पंदन और संवेदना से श्रोता समूह भी आप्लावित हुआ। सकारात्मक बदलाव के निमित्त अंगिका लोक गीतों की इस भूमिका की अनदेखी नहीं की जा सकती। संस्कार गीतों से भी सही मानसिकता संस्कृति संजोने के लिए होनी चाहिए। सोहर, मुण्डन, समुझावन, उपनयन, विवाह, विदाई व द्विरागमन आदि लोक गीत परम्परा सम्वाहक हैं। यही नहीं, भागलपुर और निकटवर्ती अनेक शहरों और कस्बों में जन्माष्टमी पर कृष्ण झूलन सम्बंधित गीतों का महत्व है। भागलपुर में झूलन की खासी रौनक और छटाए देदीप्यमान होती हैं। लोकगीत दर्शकों को प्रभावित करते हैं।

वर्तमान समय में बढ़ते सांस्कृतिक संकट को देखते हुए अंगिका लोक गीतों को प्रश्रय देना आवश्यक है और ये पूर्व की तरह ही सामाजिक चेतना के संवाहक बने रहें तो अच्छा।

———•••———

वरिष्ठ पत्रकार

व्यंग्य और हास्य : एक विवेचन

— प्रो. मंगला रानी

व्यंग्य और हास्य आपस में जलेबी और चाशनी की तरह घुले मिले हैं। व्यंग्य का चक्रव्यूह हास्य के माधुर्य में मिलकर ऐसी जलेबी बनाता है जिसमें कड़वी सच्चाई मीठे हास के रस में फूट पड़ती है।

जीवन की यात्रा में कुछ पड़ाव आनंद के, तो कुछ पीड़ा के भी मिलते हैं। संसार कटु मधु अनुभवों का ऐसा सिंधु है, जिसे पार करना हमारी नियति है। ऐसे में सहित भाव की अनुभूति में साहित्य-धारा फूटती है। विविध विधाओं के अनुशासन में लेखन विविध प्रभाव छोड़ते हैं, इन प्रभावों में व्यंग्य-विधा का कुछ अलग ही स्वभाव है।ये व्यंग्य तीखे बाण सदृश होते हैं, किंतु इस पर हास्य का माधुर्य भी है अतःजब बाण हृदय को बेधते हैं तो हास्य एक गुदगुदी का लेप चढ़ाता है।और इस प्रकार व्यंग्य-साहित्य मानवता के प्रति अपने नैतिक दायित्व का निर्वहन करता है।

व्यंग्य और हास्य का हमारे जीवन में कितना महत्वपूर्ण स्थान है, यह सबको ज्ञात है। जब कभी हम किसी काम से ऊब जाते हैं या विषम समस्याओं के कारण जीवन से उदासीनता का भाव हमारे मन में जागता है, अथवा किसी दुःखद स्थिति में हम डूबे होते हैं या अतिशय कार्य-भार से लदे होते हैं, तब हम जिस वस्तु की तलाश करते हैं, वह हास्य है। हास्य हमारी शिराओं को स्पंदित कर तनाव से मुक्ति दिलाता है। हास्य हमारे श्रान्त-क्लान्त मन को स्फूर्ति एवं उत्साह प्रदान कर जीवन-संघर्ष तथा नूतन सर्जन की ओर प्रेरित प्रवृत्त करता है। हास्य-निबन्धकारों में भारतेन्दु और जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी के अतिरिक्त शिवपूजन सहाय, हरिशंकर परसाई, इन्द्रनाथ मदान, प्रभाकर माचवे, राधाकृष्ण, रामेश्वर सिंह 'काश्यप', रामेश्वर नाथ तिवारी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

"साहित्यालोचन: सिद्धांत और अध्ययन" शीर्षक आलोचना ग्रंथ में विद्वान लेखक एवं समीक्षक डॉ. सीताराम दीन लिखते हैं—"व्यंग्यात्मक निबन्ध अदूरदर्शितापूर्ण जीवन-पद्धति पर एक कटु-मधु बौद्धिक आक्रमण है, जिससे पाठकों को विचारोत्तेजना और सामंजस्यपूर्ण जीवन-निर्माण की अद्भुत प्रेरणा प्राप्त होती है। व्यंग्य-लेखक की अनुभूति गम्भीर और व्यापक होती है तथा अभिव्यक्ति की प्रांजल-प्रगल्भ

भारत में व्यंग्य लेखन की तीक्ष्ण धारा मध्य युग में संतों की वाणी में मुखरता से समक्ष आती है। तेजवंत कबीर के व्यंग्य बाणों से कौन बच सका? उन्होंने राजनीति, धर्म, समाज, स्त्री-पुरुष, रूढि, परंपरा सबको अपने निशाने में लिया। हृदय में राम और जीवन में कर्म के भाव लिये कबीर ने दुनिया में क्रांतिकारी परिवर्तन के सपने देखे।

शक्ति। भारतेन्दु, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, आचार्य शुक्ल, उग्र, निराला, नागार्जुन, मदान, परसाई, माचवे,राधाकृष्ण प्रभृति व्यंग्य-निबन्धकारों के रूप में प्रख्यात हैं।"[1]

हास्य-व्यंग्य के आलंबन पर विचार करें तो आ.शुक्ल की निम्न पंक्तियाँ समक्ष आती हैं—

"मूर्ख, हास्य रस के बड़े प्राचीन आलम्बन हैं। न जाने कब से वे इस संसार की रुखाई के बीच लोगों को खुलकर हँसने का अवसर देते चले आ रहे हैं।"[2]

हास्यरस के लिए भरतमुनि का नाट्यशास्त्र कहता है—

विपरीतालंकारैर्विकृताचाराभिधान वेसैश्च विकृतैरर्थविशेषैहंसतीति रस: स्मृतो हास्य:।।[3]

भावप्रकाश में लिखा है—

"प्रीतिर्विशेष: चित्तस्य विकासो हास उच्यते।"[4]

साहित्यदर्पणकार का कथन है—

"वर्णदि वैकृताच्चेतो विकारो हास्य इष्यते"[5]

भारत में व्यंग्य लेखन की तीक्ष्ण धारा मध्य युग में संतों की वाणी में मुखरता से समक्ष आती है। तेजवंत कबीर के व्यंग्य बाणों से कौन बच सका? उन्होंने राजनीति, धर्म, समाज, स्त्री-पुरुष, रूढि, परंपरा सबको अपने निशाने में लिया। हृदय में राम और जीवन में कर्म के भाव लिये कबीर ने दुनिया में क्रांतिकारी परिवर्तन के सपने देखे।

"अरे इन दोउन राह न पाई |
हिंदू अपनी करे बड़ाई,
गागर छुवन न देई।
वेश्या के पायन तरि सोवें,
यह देखो हिंदुआई।।
मुसलमान के पीर औलिया,
मुर्गा मुर्गी खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं,
घरहिं में करैं सगाई।।"[6]

"जे तू बाम्हन बभनी जाया,
आन बाट ह्वै क्यूँ नहिं आया।
जे तू तुरक तुरकनी जाया,
भीतरि खतना क्यों न कराया।।"[7]

कबीर की ही तरह मीरा के व्यंग्य भी प्राणों को बेधते हैं—

लोक-साहित्य में तो व्यंग्य ही वह भाव है जो सर्वाधिक रुचिकर है। किसी आंचलिक राग में जब व्यवस्था पर चोट पड़ती है, राग का आनंद हमें और ज्यादा चेतन करता है। होली, ऋतुगीत अथवा शादी-विवाह के अवसर पर गीत गाने की परंपरा भी इसी आनंद का सृजन करती है। शादी-विवाह के अवसर पर गायी जाने वाली 'गालियों' में रिश्ते की मिठास सहित रूढिग्रस्त परंपराओं पर करारा प्रहार भी होता है।

"छाँड़ दई कुल की कान क्या करिहै कोई।
संतन ढिंग बैठी बैठी लोक लाज खोई।।
चुनरी के किए टूक टूक ओढ़ लीन्ह लोई।
मोती मूंगे उतार बन माला पोई।।
दूध की मथनिया बड़े प्रेम से बिलोई।
माखन जब काढ़ि लियो छाछ पिए कोई।।[8]

मीरा ने व्यंग्य की कटूक्तियों में उस समय की राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था के दोगलेपन पर कटाक्ष किया है।

हमारा साहित्य चिरकाल से ही हास्य एवं व्यंग्य के भाव लिये चला है जिसका प्रचंड विस्फोट आधुनिक काल में आकर हुआ। हिंदी गद्य की विविध विधाओं के आते ही व्यंग्य की तीक्ष्ण धारा हर विधा में बहने लगी। राष्ट्रीय एवं सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक पस्थितियों में हास्य और व्यंग्य का माध्यम साहित्यकारों को पसंद आया, व्यवस्था पर चोट करने का इससे उचित साधन नहीं था।

उन्नीसवीं सदी राष्ट्रीय जागरण का समय था, आजादी की लड़ाई चरमोत्कर्ष पर थी। साहित्यकारों ने इस आंदोलन को अपने समग्र साहित्य से विराट नेतृत्व दिया। भारतेन्दु मंडल के लगभग सभी

लेखक व्यंग्य संरचना में निष्णात थे, विविध पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ये अपनी बात कह रहे थे। पत्र पत्रिकाओं में कार्टून की भी एक विधा शामिल थी, जिससे अचूक निशाने साधे जा रहे थेI व्यंग्य विधा का सबसे ताकतवर साधन कार्टून ही रहा जिसकी चित्रात्मक अभिव्यक्ति अपने संप्रेषण में सर्वाधिक प्रभावशाली थी। पश्चिम से आयातित इस विधा के सर्वाधिक प्रभावशाली भारतीय कार्टूनिस्टों में हम शंकर, आर के लक्ष्मण, रंगा, काक, सुधीर तैलंग, प्राण, आबिद सुरती आदि के अवदानों को भुला नहीं सकते।

व्यंग्य की अनुपम छटा भारतेन्दु की लेखनी से कितनी सुंदर और प्रभावी लगती है, कृपया देखें—

"रूप दिखावत सर्वस लूटै,
पंजे में जो परै न छूटै,
कपट कटारी हिय में हूलिस,
कहु सखि साजन...?
ना सखि पुलिस !!"

"मुँह जब लागै तब नहिं छूटै,
जाति, मान, धन सब कुछ लूटै।
पागल करि मोहि करे खराब,
क्यों सखि सज्जन नहीं सराब।"

कविताओं के अतिरिक्त उनके नाटकों में भी सामाजिक विकृतियों पर, धार्मिक पाखण्ड पर, धर्मपोषित जाति पर, राजनीतिक विद्रूपताओं पर, सरकारी आर्थिक नीतियों पर व्यंग्य देखने को मिलता है। उनकी वैदिकी हिंसा हिंसा न भवती, अंधेर नगरी, भारत दुर्दशा आदि रचनाएँ व्यंग्य साहित्य में मील का पत्थर हैं। द्विवेदी युग में आ.शुक्ल के अतिरिक्त लगभग हर लेखक में व्यंग्य की एक रश्मि हम लक्षित करते हैं, जो उनके निबंधों अथवा अन्य विधाओं में देखी जा सकती है। मस्तमौला हजारी प्रसाद द्विवेदी जितने ही गंभीर हैं उतने ही हास्य रस से पूरित भी। इनके बाद हरिशंकर परसाई, निराला, नागार्जुन आदि ने हास्य और व्यंग्य की सुंदर बौछार और कटूक्तियों से साहित्य को एक नयी दिशा एवं ऊर्जा दे दी।

निराला की पूँजीपतियों को निशाने में लेती कुछ काव्य पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं...

"अबे सुन बे गुलाब!
इठला मत जो पायी तूने
खुशबू रंग ओ आब...
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कैप्टलिस्ट!!"

नागार्जुन कहते हैं—

"स्वेत-स्याम रतनार अँखियाँ निहार के,
सिंडिकेटी प्रभुओं की पग धूर झार के,
दिल्ली से लौटे हैं कल टिकट मार के...
आये दिन बहार के।"[9]

परसाई जी के व्यंग्य की तीक्ष्णता द्रष्टव्य है—

"भई इस दुनिया में कोई इस सर्कस की बराबरी नहीं कर सकता है, इसमें पता ही नहीं चलता कि मैनेजर कौन है?"

"आपका पार्टी और सरकार चलाने का तरीका यह है कि मत सिर्फ आपके पास होता है और भेद दूसरे के पास । किसी के पास मत और भेद दोनों नहीं हो सकते।"[10]

व्यंग्यकारों की सूची में ज्ञान चतुर्वेदी, विष्णु नागर, प्रेम जनमेजय, प्रताप सहगल, सुभाष चंदर आदि के नाम भी गणनीय हैं। इन सबने अपने व्यंग्य में राजनीति और वर्तमान व्यवस्था पर गहराई से वार किया है।

लोक-साहित्य में तो व्यंग्य ही वह भाव है जो सर्वाधिक रुचिकर है। किसी

वेद उपनिषद् की कथाओं से अनुस्यूत हास्य व्यंग्य के भाव की अविरल धारा समय के सभी पड़ावों पर रुकती, बनती सँवरती रूप बदलती आज भी साहित्य का अविभाज्य अंग बनकर हमारे जीवन को रससिक्त कर रही है।कभी नारद के चरित में, कभी शिव के हास्य में, कभी देवताओं के परिहास में... रूपक में, काव्य-महाकाव्य, नीति-कथा, बृहत्कथा, लघुकथा न जाने किन-किन रूपों ने हृदय में अवस्थित आनंद को उद्दीप्त किया है... चित्त को सकारात्मक ऊर्जा देकर समाज को नवीन दिशा देने की कोशिश की है। आज भी हर विधा में हास्य और व्यंग्य की अपनी जगह तो है ही, अपने स्वतंत्र अस्तित्व में भी "व्यंग्य और हास्य" अपने उद्देश्य और अपने मूल्यों के साथ साहित्य में मजबूती से विद्यमान हैं।

आंचलिक राग में जब व्यवस्था पर चोट पड़ती है, राग का आनंद हमें और ज्यादा चेतन करता है। होली, ऋतुगीत अथवा शादी-विवाह के अवसर पर गीत गाने की परंपरा भी इसी आनंद का सृजन करती है। शादी-विवाह के अवसर पर गायी जाने वाली 'गालियों' में रिश्ते की मिठास सहित रूढिग्रस्त परंपराओं पर करारा प्रहार भी होता है।[10]

हास्य-व्यंग्य विधा की लोकप्रियता में हिंदी सिनेमा का भी बहुत बड़ा योगदान है। पहले तो कलाकारों में हास्य कलाकार भी होते थे जिनका काम परिस्थितियों पर व्यंग्य करना और हास का माहौल बनाना होता था। महमूद, असरानी, टुनटुन आदि कुछ ऐसे ही नाम हैं जिनके बिना फिल्म पूरी नहीं हो पाती थी। बाद के समय में यह दायित्व भी नायकों ने ले लिया जिनमें धर्मेन्द्र, अमिताभ बच्चन, संजीव कुमार, गोविंदा आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

आज सोशल मीडिया का जमाना है, हास्य और व्यंग्य ने भी अपना चोला बदला है। फेसबुक और यूट्यूब के जरिये खूब व्यंग्य परोसे जाते हैं। मंचों पर स्टैंडअप कॉमेडियन ने अपनी जगह बना ली हैI जॉनी लीवर, राजू श्रीवास्तव, भारती सिंह, कृष्णा अभिषेक आदि हास्य कलाकारों ने पुराने जमाने के कलाकारों की जगह लेने की कोशिश तो की है किंतु अपनी फूहड़ अभिव्यक्तियों से इस विधा को क्षति ही पहुँचाई है।

व्यंग्य-लेखन की परंपरा, विपुल साहित्य, राजनीतिक चेतना और व्यंग्य के अंत:संबंध, सामाजिक सरोकार, भाषा-शैली-उद्देश्य आदि पर प्रकाश डालने वाली बहुत सारी पुस्तकों से गुजरती हुई एक युवा लेखक «मयंक» की लेखनी से मेरा साक्षात्कार होता है। एक ही व्यंग्य लेखक पर केन्द्रित उनकी पुस्तक "विष्णु नागर के व्यंग्य का राजनीतिक आयाम" ने व्यंग्य की सार्वकालिकता एवं खासतौर से राजनीतिक जुड़ाव पर विशद् प्रकाश डाला है। उक्त पुस्तक में एक व्यंग्यकार से कुछ ज्वलंत प्रश्न किये गये जिन्हें उद्धृत करना चाहूंगी-

मयंक प्रश्न करते हैं—"समकालीन व्यंग्य साहित्य को किस नज़र से देखते हैं?"

व्यंग्यकार विष्णु नागर जी का जबाब है—

"समकालीन व्यंग्य साहित्य में हमारे पास कोई परसाई नहीं है, कोई शरद जोशी नहीं है।लेकिन यह भी सही है कि हमेशा परसाई और शरद जोशी नहीं हो सकते।हमेशा प्रेमचंद नहीं हो सकते, हमेशा मुक्तिबोध नहीं हो सकते, हमेशा निराला नहीं हो सकते।हमें इनसे कमतर लेखकों से काम चलाना होता है... मैं समकालीन व्यंग्य के महत्व को इतना ही मानता हूँ कि उसने व्यंग्य की सार्वजनिक लोकप्रियता बनाने का प्रयत्न किया हैI"[11]

निष्कर्षत: कह सकती हूँ कि सुदूर वेद उपनिषद् की कथाओं से अनुस्यूत हास्य व्यंग्य के भाव की अविरल धारा समय के सभी पड़ावों पर रुकती, बनती सँवरती रूप बदलती आज भी साहित्य का अविभाज्य अंग बनकर हमारे जीवन को रससिक्त कर रही है।कभी नारद के चरित में, कभी शिव के हास्य में, कभी देवताओं के परिहास में... रूपक में, काव्य-महाकाव्य, नीति-कथा, बृहत्कथा, लघुकथा न जाने किन-किन रूपों ने हृदय में अवस्थित आनंद को उद्दीप्त किया है... चित्त को सकारात्मक ऊर्जा देकर समाज को नवीन दिशा देने की कोशिश की है। आज भी हर विधा में हास्य और व्यंग्य की अपनी जगह तो है ही, अपने स्वतंत्र अस्तित्व में भी "व्यंग्य और हास्य" अपने उद्देश्य और अपने मूल्यों के साथ साहित्य में मजबूती से विद्यमान हैं।

संदर्भ सूची

1. डॉ. सीताराम दीन-साहित्यालोचन: सिद्धांत और अध्ययन, पृष्ठ- 65
2. आ. रामचंद्र शुक्ल-चिंता मणि भाग- 2
3. आ. भरत-नाट्यशास्त्र
4. आ. भाव मिश्र-भाव प्रकाश
5. पंडित विश्वनाथ-साहित्य दर्पण
6. संत कबीर-कबीर ग्रंथावली
7. संत कबीर-कबीर ग्रंथावली
8. संत मीरा बाई-मीराबाई की पदावली
9. नामवर सिंह-नागार्जुन की प्रतिनिधि कविताएँ, पृष्ठ-102
10. मयंक-विष्णुनागर के व्यंग्य का राजनीतिक आयाम, पृष्ठ- 49
11. मयंक-विष्णुनागर के व्यंग्य का राजनीतिक आयाम, पृष्ठ- 50

———•••———

मानविकी संकायाध्यक्ष
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना
बिहार, भारत।

अमेरिकी प्रवासी हिंदी काव्य: परंपरा एवं विकास

— योगेन्द्र सिंह, प्रो. नवीन चंद्र लोहनी

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में भारत एवं अमेरिका के परस्पर संबंध वैभवपूर्ण विकास यात्रा के परिचायक हैं। इन दोनों देशों की इस नैकट्य संबंध और मैत्री भाव के पीछे अमेरिकी प्रवासी भारतीयों का महत्त्वपूर्ण प्रदेय रहा है। यूँ तो भारत से अमेरिका के प्रवसन चक्र की गति अठारहवीं सदी के अंतिम दशकों में आरंभ हो गई थी, किंतु यह बहुत ही सीमित संख्या में हुई थी। उन्नीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में अमेरिका में लाला हरदयाल के द्वारा स्थापित गदर पार्टी की स्थापना और उसके कार्यों से यहां पर भारतीयता के पद्चाप सुनाई पड़ती है। 1893 में शिकागों में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में स्वामी विवेकानंद के संभाषण ने अमेरिका एवं विश्व सस्कृति में भारतीय जीवन बोध को स्थापित और विस्तारित करने का अनुकूल परिवेश प्रदान किया।

अमेरिका से आरंभ हुआ भारतीयता का यह उद्घोष आज भी अन्वरत रूप से जारी है। यहाँ रह रहे प्रवासी भारतीय समाज ने अपने श्रम एवं संघर्ष से अपने राष्ट्र की नई पहचान गढ़ी है। आज का अमेरिका भारत, भारतीयों एवं भारतीयता के बोध के बिना अधूरा है। अमेरिका में भारतीय समाज एवं संस्कृति की यही स्वीकार्यता वहां रचे जा रहे प्रवासी हिंदी साहित्य का रचनात्मक उत्स है, जिसकी अभिव्यक्ति साहित्य की सभी विधाओं में हुई हैं। अमेरिका में हिंदी भाषा और साहित्य लेखन का सूत्रपात गदर समाचार पत्र के प्रकाशन से हुआ था। कालांतर में यह अन्य प्रवासियों के आगमन से और अधिक सुदृढ और समृद्ध हुआ। आज अमेरिका में हिंदी साहित्य सृजन की लोकप्रिय एवं समृद्धशाली परंपरा है, जिसने हिंदी साहित्य को अनेक महत्त्वपूर्ण उपादानों से सुशोभित किया है।

अंजना संधीर

उषा प्रियंवदा

देवी नागरानी

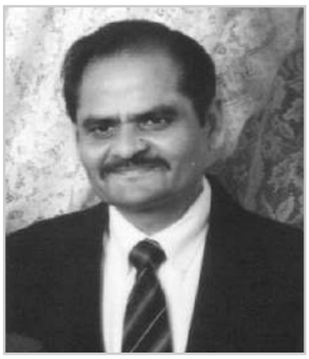

राकेश खंडेवाल

महाकवि गुलाब खंडेलवाल, वेदप्रकाश 'वटुक', रामेश्वर शुक्ल 'अशांत', उषा प्रियंवदा, विजय मेहता, राकेश खण्डेलवाल, देवी नागरानी, सोमावीरा, सुनीता जैन, रेखा मैत्र, रेणु राजवंशी 'गुप्ता' अंजना संधीर, सुधा ओम ढींगरा ऐसे ही महत्त्वपूर्ण रचनाकार है, जिन्होंने अपने लेखन से अमेरिका में अपनी नई जमीन निर्मित की है। ''अमेरिका में प्रवासी हिंदी साहित्य की विकास यात्रा ने तीव्र गति से अपनी पहचान निर्मित की है। अमेरिका में साहित्य-साधना करने वाले कई साहित्यकारों ने न केवल अमेरिकी प्रवासी हिंदी साहित्य में बल्कि हिंदी साहित्य में भी अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराई है। डॉ. वेदप्रकाश 'वटुक', गुलाब खंडेलवाल, सुधा ओम ढींगरा, अंजना संधीर, विजय मेहता, भूदेश शर्मा, देवी नागरानी, रेणु 'राजवंशी' गुप्ता एवं शशि पाधा आदि अमेरिकी प्रवासी हिंदी साहित्य के ऐसे ही बहुमूल्य रत्न हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिंदी साहित्य को नवीन भाव एवं शैली प्रदान की है। अमेरिका में हिंदी साहित्य लेखन कार्य कर रहे ये प्रवासी साहित्यकार अमेरिकी प्रवासी हिंदी काव्य के ही नहीं अपितु हिंदी साहित्य के भी विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं।''

अमेरिका में हिंदी भाषा एवं साहित्य का उर्वर लोक विद्यमान हैं। यहाँ हिंदी भाषा, साहित्य, और भारतीय संस्कृति की समृद्ध परंपरा हैं। यह साहित्य की सभी विधाओं से हिंदी साहित्य को और अधिक समृद्धि और विस्तार दे रही हैं। यदि अमेरिका की हिंदी साहित्य सृजन पंरपरा का अवलोकन करें तो देखते हैं कि इस रचनात्मकता का अन्तर्लोक साठ व सत्तर के दशक में गए उन प्रवासी भारतीयों ने बुना हैं, जो अमेरिका प्रवास से पूर्व भारत में ही अपनी साहित्यिक पहचान बना चुके थे।

अमेरिका में हिंदी भाषा एवं साहित्य का उर्वर लोक विद्यमान हैं। यहाँ हिंदी भाषा, साहित्य, और भारतीय संस्कृति की समृद्ध परंपरा हैं। यह साहित्य की सभी विधाओं से हिंदी साहित्य को और अधिक समृद्धि और विस्तार दे रही हैं। यदि अमेरिका की हिंदी साहित्य सृजन पंरपरा का अवलोकन करें तो देखते हैं कि इस रचनात्मकता का अन्तर्लोक साठ व सत्तर के दशक में गए उन प्रवासी भारतीयों ने बुना हैं, जो अमेरिका प्रवास से पूर्व भारत में ही अपनी साहित्यिक पहचान बना चुके थे। गुलाब खंड़ेलवाल, वेदप्रकाश वटुक, सोमावीरा, उषा प्रियवंदा, सुनीता जैन इसी परंपरा के प्रवासी साहित्यकार हैं। आज के अमेरिकी प्रवासी हिंदी साहित्य का लोकवृत्त इन्ही की चेतना दृष्टि से सम्पन्न और समृद्ध हुआ है, जिसे इनके बाद की पीढ़ियों ने और अधिक विस्तार दिया है। चूँकि आरंभिक दौर में अमेरिका आकर बसे इनमें से अधिकांश कवि थे, इसीलिए यहां के साहित्य में सर्वप्रथम 'कविता' का ही विकास दिखाई पड़ता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी 'कविता' अमेरिकी प्रवासी हिंदी साहित्य की

रामेश्वर शुक्ल अंचल

रेखा मैत्र

रेणु राजवंशी

विजय मेहता

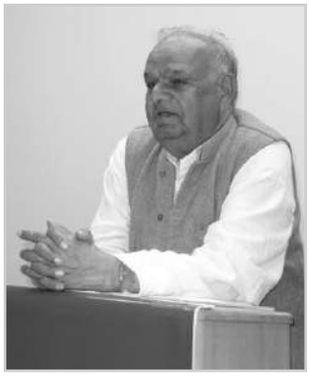
वेद प्रकाश वटुक

सुधा ओम ढींगरा

सुनीता जैन

अनिल प्रभा कुमार

महत्त्वपूर्ण विधा हैं। इस काव्य परंपरा में गुलाब खण्डेलवाल, वेदप्रकाश 'वटुक', रामेश्वर शुक्ल, अशांत, ओमप्रकाश गौड़, विजय मेहता, सुरेन्द्र नाथ तिवारी, राकेश खण्डेलवाल, रेखा 'राजवंशी' 'गुप्ता', रेखा मैत्र, सुधा ओम ढींगरा, अंजना संधीर, इला प्रसाद, अनिल प्रभा कुमार, शशि पाधा जैसे अनगिनत नाम हैं, जिन्होंने अपनी सृजनशीलता से यहाँ की बंजर भूमि को न केवल सींचा हैं अपितु भारत से बाहर होकर भी भारत के ही समान्तर हिंदी भाषा एवं संस्कृति के एक नए लोक का निर्माण किया है। '''कविता', अमेरिकी प्रवासी हिंदी साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विद्या है।... अन्य प्रवासी देशों के साहित्य की भाँति ही अमेरिका में भी काव्य लेखन प्रमुखता से हुआ है।...

अमेरिकी के हिंदी काव्य में गीत, खण्डकाव्य, महाकाव्य आदि के साथ-साथ प्रबंध काव्य एवं ग़ज़ल लेखन का कार्य भी हुआ है। अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता अपना अलग वैशिष्ट्य है, जो उसकी संवेदना, जीवनदृष्टि, सरोकार एवं परिवेश में सर्वत्र दिखाई पड़ता है।'' लगभग पचास वर्षों का इतिहास स्वयं में समेटे हुए अमेरिकी प्रवासी हिंदी काव्य परंपरा धीरे-धीरे अपना साहित्यिक-सांस्कृतिक वितान रच रही है।

डॉ. कमल किशोर गोयनका अमेरिकी प्रवासी हिंदी काव्य परंपरा और विकास को इस रूप में रेखांकित करते हैं ''अमेरिका में हिंदी कविता के लिखने की प्रवृत्ति सर्वाधिक है, क्योंकि कम समय चाहती हैं और वहाँ के रचनाकारों के पास समय का आभाव रहता है। अमेरिका में इन हिंदी कवियों/कवयित्रियों में से कुछ ने अपने निजी कविता संकलन भी प्रकाशित कराये है।'' अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता का यही स्वरूप, अमेरिकी में भारतीय संस्कृति का सौंदर्य विधान रचता है।

संस्कृति शब्द बहुत व्यापक हैं। यह स्वयं में अनेक भावबोध और दृष्टियों को समाहित किए हुए है। भारतीय संस्कृति विश्व की अन्यतम संस्कृति हैं। यह लोकाचरण में विश्वाचारण, मानव कल्याण से विश्वकल्याण के भावों से

भारत से अमेरिका में प्रवासित होकर गए इन भारतीयों ने प्रवास के पहले चरण में स्वयं को स्थापित करने के साथ साथ भारतीय समाज, साहित्य एवं संस्कृति को भी स्थापित किया है। अमेरिका में भारतीयता की स्थापना के इस दौर में संस्कृति के अन्य उपादानों के साथ-साथ साहित्य का उद्भव एवं विकास भी हुआ है। अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता भी अमेरिका गए इन्ही प्रारंभिक प्रवासी भारतीयों के कंठ से फूटी और विश्व लोक में अभिव्यंजित हुई। इस प्रकार अपने आगमन के इस दौर में अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता न केवल अस्तिव में आई, बल्कि अपने पूर्ण सामर्थ्य के साथ स्थापित होकर आगे बढ़ी।

अनीता कपूर

अनूप भार्गव

कल्पना सिंह चित्निश

धनंजय कुमार

गुंम्फित है। भारतीय संस्कृति का यही भाव भारतीय साहित्य में भी परिलक्षित होता हैं। स्वदेश एवं परदेस में रचा जा रहा हिंदी साहित्य भी भारतीय संस्कृति के इसी स्वरूप से प्रतिदीप्ति है। शशि पाधा इस संदर्भ में लिखती हैं—''पाश्चात्य संस्कृति भारतीय संस्कृति से बिल्कुल भिन्न है।... पाँच हजार वर्ष पुरानी हमारी संस्कृति ही हम भारतीयों की आत्मा हैं और मैंने इस अमूर्त आत्मा का अमेरिका में शाश्वत और मूर्त रूप देखा है। चाहे कोई समुदाय हो, कोई प्रांतीय त्योहार हो, कोई धार्मिक पर्व हो, इस देश में प्रवासी भारतीय मिलजुल कर, बड़े उत्साह के साथ उसे मना कर विदेशी धरती पर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'सर्वधर्म सम्भाव' जैसे समरसता और एकता के पाठ पढ़ाने वाली भारतीय संस्कृति की धरोहर को और समृद्ध करने में एकरूप हो जाते हैं।''

अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता की मनोभूमि भारतीय संस्कृति के इन्हीं विशिष्ट उपादानों से मिलकर निर्मित हुई हैं। यह भारतीय संस्कृति एवं जीवनदर्शन से अनुप्राणित होकर भारतीय संस्कृति के लोकवृत्त को वैश्विक लोकवृत्त का स्वरूप प्रदान करती हुई आगे बढ़ रही हैं। किसी भी राष्ट्र या समाज की जातीय अस्मिता का स्वरूप उसकी संस्कृति की विष्टिता पर निर्भर करता है।

अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता, भारतीय संस्कृति के जातीय स्वरूप का वैश्विक परिपेक्ष्य में प्रतिनिधित्व कर रही हैं। अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता के लोकस्वरूप का अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि इसका परिदृश्य बहुआयामी हैं। साठ एवं सत्तर के दशक से आरंभ हुई यह सृजन यात्रा आज अपने विविध रंगों, रूपों में प्रवाहित हो रही हैं। अपने अंकुरण से लेकर अभी तक, लगभग आधी सदी की अनुभव यात्रा में यह कई सोपानों से गुजरी हैं। इसने एक और जहाँ अतीत की स्वर्णिम आभा का फैलाव देखा है तो वही वर्तमान की परिवर्तित पदचापों को भी महसूस किया है। पुरातन एवं नूतन के गठजोड़ से निर्मित यह काव्य धारा भारतीय सनातन संस्कृति को आधुनिकता के मानदंडों पर सजाकर आगे बढ़ रही हैं जिसके मूल में विश्वबन्धुत्व एवं मानव कल्याण का भाव सन्निहित हैं।

अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता अपने उद्भव काल से लेकर अब तक कई दौरों से गुजरा है। अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता के लोकवृत में निहित अंर्तदृष्टियों का चिंतन-मनन और परिगणन का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि यह साहित्य धारा विकास के पहले चरण को पार करके दूसरे चरण में प्रवेश कर रही हैं। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के केंद्र बिंदु अमेरिका की शुष्क भूमि में भारतीय साहित्य, संस्कृति एवं जातीय परंपरा की नींव रखना, दुष्कर कार्य है। आरंभिक दौर में यहाँ आकर बसे भारतीय साहित्य मनीषियों ने इस दुष्कर कार्य को मूर्त रूप प्रदान करके यहाँ के स्वच्छंद परिवेश में भारतीय संस्कृति के विश्व निर्माण की नींव रखी थी, जिस पर आज का अमेरिकी प्रवासी हिंदी साहित्य का विस्तृत भूखंड टिका हुआ है।

भारत से अमेरिका में प्रवासित होकर गए इन भारतीयों ने प्रवास के पहले चरण में स्वयं को स्थापित करने के साथ साथ भारतीय समाज, साहित्य एवं संस्कृति को भी स्थापित किया है। अमेरिका में भारतीयता की स्थापना के इस दौर में संस्कृति के अन्य उपादानों के साथ-

साथ साहित्य का उद्भव एवं विकास भी हुआ है। अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता भी अमेरिका गए इन्ही प्रारंभिक प्रवासी भारतीयों के कंठ से फूटी और विश्व लोक में अभिव्यंजित हुई। इस प्रकार अपने आगमन के इस दौर में अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता न केवल अस्तिव में आई, बल्कि अपने पूर्ण सामर्थ्य के साथ स्थापित होकर आगे बढ़ी।

वर्तमान अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता का वैविध्यपूर्ण परिवेश और विस्तृत कैनवास इसी आरंभिक दौर के कवियों की काव्य साधना का प्रतिफलन है। जिसे दूसरे दौर अर्थात इक्कीसवीं सदी में गए प्रवासी भारतीयों ने वैश्विक स्वरूप प्रदान करके और अधिक समृद्ध किया है।

सारतः कहा जा सकता है कि अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता की परिधि ओर परिवृत बहुत व्यापक है जिसके भविष्य की सुदृढ नींव अतीत के भग्नावशेषों पर निर्मित हुई है ''वर्तमान समय में अमेरिका में लगभग 35 से अधिक कवि कवयित्रियाँ काव्य सृजन कर रहे हैं। जिनमें सुधा ओम ढींगरा, अंजना संधीर, राकेश खंडेलवाल, विजय मेहता, देवी नागरानी, रेणु राजवंशी 'गुप्ता', इला प्रसाद, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, लावण्य शाह, सुभाष काक, सुरेन्द्र नाथ तिवारी, अनूप भार्गव आदि प्रमुख हैं। इनमें से सुधा ओम ढींगरा एवं अंजना संधीर ने अपने निजी काव्य संग्रहों के साथ-साथ सामूहिक कविता-संकलनों को प्रकाशित कराकर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

अमेरिका के काव्य सृजन के क्षेत्र में सर्वप्रमुख नाम डॉ. अंजना संधीर का है। उनके निजी कविता-संग्रह हैं 'बारिशों का मौसम (ग़ज़ल संग्रह), 'धूप, छाव और आँगन', 'तुम मेरे पापा जैसे नहीं हो', 'अमेरिका हड्डियों में जम जाता है'। इसके साथ ही इन्होंने 'प्रवासिनी के बोल' कविता संकलन में 81 कवयित्रियों की 324 कविताएँ प्रकाशित करके अमेरिका में रहकर हिंदी-लेखन कार्य करने वालों के लिए एक मंच प्रदान किया। ठीक इसी प्रकार का प्रयास सुधा ओम ढींगरा ने 'मेरा दावा है' कविता संकलन में किया है।''

वर्तमान समय अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता के उत्थान का वह समय हैं, जहाँ संपूर्ण विश्व मे वैश्वीकरण की आहटों को स्पष्टतः महसूस किया जा सकता है। वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया ने न केवल विश्व भूगोल में ही परिवर्तन किया है अपितु इसके साथ ही सामाजिक ताने बाने को भी बदल कर रख दिया हैं। आज का मनुष्य प्रगति के पथ पर जिस तीव्र वेग से आरूढ़ हैं उसकी यह गति अपने साथ-साथ बहुत कुछ बहाकर ले जा रही हैं। मानवीय जीवन संबंधों में आ रहा ह्रास, परंपरागत मूल्यों का विघटन, नैतिक मूल्यों का पतन, विसंस्कृतिकरण आदि इसी की परिणति हैं।

अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता का निवर्तमान आधार उसके आरंभिक दौर के कवियों की रचनाशीलता की देन है। अमेरिकी प्रवासी काव्य धारा के विस्तृत फलक पर गुलाब खंडेलवाल, वेदप्रकाश 'वटुक' और डॉ. विजय मेहता के रूप में कवि त्रयी नजर आती हैं। महाकवि गुलाब खण्डेलवाल की काव्य चेतना का आस्थालोक प्राचीन भारतीय मूल्यों के नवनिर्माण, धर्म, दर्शन और अध्यात्म से मिलकर बना है। आपकी साहित्य साधना का दायरा बहुत व्यापक और विस्तृत है, तीस से अधिक काव्य कृतियों के प्रेणता गुलाब खंडेलवाल जी अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता के आदि कवि के रूप में सुशोभित किए जा सकते हैं। डॉ. वेदप्रकाश 'वटुक' अमेरिकी प्रवासी हिंदी काव्य संसार का एक ऐसा ही लोकप्रिय और परिचित नाम हैं, जिनकी तीस से भी अधिक काव्य कृतियाँ अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं।

कई खण्डकाव्यों, महाकाव्यों के सृजनकर्ता कवि डॉ. वेदप्रकाश 'वटुक' भारतीय संस्कृति के वैश्विक प्रतिनिधि कवि हैं, आपकी काव्य चेतना की वैचारिक पृष्ठभूमि प्राचीन भारतीय संस्कृति, इतिहास, धर्म और दर्शन से जुड़ी हुई हैं। पौराणिक भारतीय मिथकों को वर्तमान संदर्भों से जोड़कर देखना, उनकी काव्य दृष्टि का वैशिष्ट्य है। वे समकालीन समय और समाज में तेजी से पनप रहे मानवीय संकट और उससे जुड़े प्रश्नों से हमारा साक्षात्कार कराते हैं। युद्ध और शांति के बीच घायल मानवता

को बचाने के लिए साधनारत कवि डॉ. वेदप्रकाश 'वटुक' सही मायनों में भारतीय चेतना लोक के वैश्विक कवि हैं, जो विश्व सत्ताओं के समक्ष घायल मानवता को बचाने के प्रश्न उठाते हैं। आपकी काव्य दृष्टि इतिहास, वर्तमान और भविष्य की परिधि पर टिके अनगिनत प्रश्नो को पुनः उठाती हैं, जिसमें जन जन के कल्याण का भाव निहित हैं। अस्तु, डॉ. वेदप्रकाश वटुक अमेरिकी प्रवासी हिंदी काव्य के महत्त्वपूर्ण आधार स्तंभ हैं। इन्होंने अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता को प्राचीन भारतीय इतिहास से जोड़कर आधुनिकता के नए प्रतिमान दिए हैं, जिनमे भारतीय लोक चेतना का विश्वदृष्टि भाव समाहित हैं। ''डॉ. वेदप्रकाश 'वटुक', गुलाब खंडेलवाल, भूदेव शर्मा आदि ऐसे ही अमेरिका के रहने वाले कवि हैं जिन्होंने अपनी कविताओं से विदेशी परिवेश में भारतीय राष्ट्र एवं संस्कृति का गौरवगान किया है। इनकी कविताओं में भारतीय संस्कृति अपने विविध रूपों में परिलक्षित हो रही है।''

डॉ. वेदप्रकाश वटुक की भांति ही डॉ. विजय मेहता भी अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता का चिर परिचित नाम है। 'सम्राट चंद्रगुप्त', 'भिक्षुणी', महाकाव्य के प्रणेता कवि डॉ. विजय मेहता 'प्रणय परिजात', 'सुमन सुंदरी', 'पुष्पांजलि', 'मधुमास के फूल' जैसी लोकप्रिय काव्य कृतियों के लिए जाने जाते हैं। आपकी काव्य दृष्टि भारतीय इतिहास के धूमिल कालखण्डों को पुनः नए सिरे से परिभाषित करती हैं। स्वप्न और सौंदर्य के समन्वय के प्रतिरूप कवि डॉ. विजय मेहता लगभग 5 दशकों से अमेरिका में साधनारत् हैं। प्रेम, सौंदर्य एवं श्रृंगार समन्वय का स्वर आपकी सृजनशीलता का वैशिष्ट्य है, जो अनायास ही आपकी रचनाओं में उभरकर सामने आ जाता है। इस तरह से देखा जाए तो अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता का आरंभिक दौर भारतीय संस्कृति और इतिहास की पूर्वपीठिका से जुड़ा हुआ है, जिसे पुरातन एवं नूतन के समावेश से आधुनिक जीवनदृष्टि और सरोकार से जोड़ा गया हैं। अस्तु, यह दौर अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता के उद्भव और विकास वह दौर हैं, जिसने इस काव्य धारा के भारतीय लोकवृत्त को विश्ववृत्त से जोड़ा हैं।

यदि अमेरिका प्रवासी हिंदी कविता का पहला दौर भारतीय संस्कृति के स्पंदन से जुड़ा तो दूसरा दौर भारतीय संस्कृति के साथ-साथ सामाजिक सरोकारों को भी ग्रहण किए नजर आता हैं। वास्तव में यह वह दौर है जिसमें एक साथ अनेक कवियों ने अमेरिकी प्रवासी हिंदी काव्य फलक पर अपनी उपथिति दर्ज कराई। इन कवियों में भी अधिकाश संख्या उन महिला कवियों की हैं, जो विवाहोपरांत यहाँ जाकर बसी। सुदर्शन प्रियदर्शनी, रेखा मैत्र, रेणु 'राजवंशी' 'गुप्ता', सुधा ओम ढींगरा, अंजना संधीर, इला प्रसाद, अनिलप्रभा कुमार, लावण्या शाह, शशि पाधा, कल्पना सिंह चिटनिस, अनंत कौर इसी दौर में उभरी महिला कवयित्रियाँ हैं, जिन्होंने इस काव्य धारा को नई पहचान और दिशा दी है। परदेस में रहकर स्वदेश को हृदय में बसाए; ये महिला कवयित्रियाँ अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता का एक अलग कोलॉज निर्मित करती हैं जिसमें भारत, भारतीयता, एवं भारतीय संस्कृति का बोध सर्वत्र विद्यमान हैं।

अमेरिकी प्रवासी हिंदी कवयित्रियों की काव्य दृष्टि के वैशिष्ट्य को अनीता कपूर इस प्रकार रेखांकित करती हैं ''कुछ ऐसे ही जिंदगी के रंग, स्वाद, पुलक, सिहरन, बुद्धिजीवी स्त्री का विविध रंगों भरा संसार देश-प्रेम, देश से दूर रहने की पीड़ा और नारी सुलभ भावनाओं का गणित, अमेरिका की कवयित्रियाँ, अपनी-अपनी मनोभूमि पर करती-बिठाती रही हैं तथा रचनाकारों की कविताएँ इस बात पर हमेशा खरी ही उतरी हैं एवं उनका साहित्य में योगदान सराहनीय है।'' इसके साथ ही राकेश खंडेलवाल, सुरेन्द्रनाथ तिवारी, अनूप भार्गव, गिरीश जौहरी, अमरेंद्र कुमार आदि इसी दौर के प्रवासी हिंदी कवि हैं जिन्होंने शनैःशनैः अपनी उपस्थिति दर्ज कराई हैं। इस प्रकार अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता के आरंभिक दौर में जहाँ हिंदी भाषा एवं साहित्य के लिए उर्वर भूमि को तैयार किया गया तो वही दूसरी ओर वर्तमान दौर में इसे पूर्ण रूप से स्थापित कर दिया गया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता का फलक अत्यंत विस्तृत हैं, जिसे अलग अलग समय और परिस्थितियों में गए प्रवासी भारतीयों ने अपने अनुभवों से संचित किया है।

वर्तमान समय अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता के उत्थान का वह समय हैं, जहाँ संपूर्ण विश्व मे वैश्वीकरण की आहटों को स्पष्टतः महसूस किया जा सकता है। वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया ने न केवल विश्व भूगोल में ही परिवर्तन किया

है अपितु इसके साथ ही सामाजिक ताने बाने को भी बदल कर रख दिया हैं। आज का मनुष्य प्रगति के पथ पर जिस तीव्र वेग से आरूढ़ हैं उसकी यह गति अपने साथ-साथ बहुत कुछ बहाकर ले जा रही हैं। मानवीय जीवन संबंधों में आ रहा ह्रास, परंपरागत मूल्यों का विघटन, नैतिक मूल्यों का पतन, विसंस्कृतिकरण आदि इसी की परिणति हैं। परिणामतः आज मनुष्य आधुनिक तो अवश्य हो गया हैं किंतु उसके जीवन में एक रिक्तता आ गई हैं। आधुनिक मानव समाज मे आया यही परिवर्तन साहित्य में भी दिखलाई पड़ता हैं।

अमेरिकी प्रवासी हिंदी कवियों की दृष्टि भी इस ओर गई हैं। वे भारत एवं अमेरिका के साथ साथ संपूर्ण विश्व मे हो रहे इन परिवर्तनों की आहट को न केवल महसूस कर रहें हैं अपितु उन्हें अपने साहित्य में भी स्वर प्रदान कर रहे हैं। अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता इसी भाव से ओत प्रोत हैं, जिसका भाव लोक भारत से सांस्कृतिक जुड़ाव के साथ साथ समकालीन-सामाजिक विसंगतियों पर भी पैनी नजर रखता हैं। इन कवियों की काव्य चेतना केवल भारत एवं अमेरिका तक ही नही सिमटती है, बल्कि इनके अन्तर्लोक में संपूर्ण मानवता की रागात्मक अभिव्यक्ति होती है। इस तरह देखा जाए तो अमेरिकी प्रवासी हिंदी कवियों की काव्य सर्जना का कैनवास बहुत व्यापक हैं, जो भारतीय संस्कृति में निहित विश्व चेतना के भाव से अंतरभुक्त है।

जब बात कविता की होती है, तो उसके भाषागत सौंदर्य एवं शिल्प पक्ष का जिक्र होना आवश्यकत है। प्रवासी हिंदी कविता अक्सर इन प्रश्नों से दोचार होती है। सुषम बेदी का यह कथन इस विषय पर और अधिक दृष्टिपात करता हैं ''प्रवासी लेखकों को आत्म-निरीक्षण की जरूरत है। उन्होंने कहा कि उनका कलात्मक पक्ष कमजोर है और वैचारिक पक्ष भी हल्का है। अभी भी कोई छायावाद के जमाने में जी रही है तो कोई द्विवेदी युग में हमें आत्मालोचन की जरूरत है।'' हिंदी साहित्य समीक्षकों के एक बड़े वर्ग ने प्रवासी हिंदी कविता के शिल्प सौंदर्य को हिंदी की मुख्य धारा की कविता के शिल्प सौंदर्य के मापने के परंपरागत खांचों से देखने का प्रयास किया है जिसमें वह प्रवासी हिंदी कविता के शिल्प पक्ष को काफी कमतर आंकते है। प्रवासी हिंदी कविता की भाषाई और शिल्पगत वैशिष्ट्य हिंदी कविता की तुलना में उतना समृद्ध नही है किंतु यहाँ प्रवासी हिंदी कविता के परिवेश और परिस्थितियों के अनुसार उसका आंकलन और मूल्याकंन करना अति आवश्यक हो जाता है।

इस दृष्टि से हम पाते हैं कि भारत्तेतर देशों में हिंदी कविता हिंदी भाषी कवियों के साथ साथ अन्य भाषा भाषी लोगों के द्वारा रची जा रही है। इनमें से एक बड़ी संख्या उन कवियों की भी है, जिनका हिंदी से सीधे तौर पर कोई जुड़ाव नही रहा है। मसलन या तो उनका कार्य क्षेत्र तकनीकी, चिकित्सा अथवा अन्य कोई व्यवसाय रहा है अथवा उनका जन्म ही हिन्दीतर प्रदेश में हुआ है। ऐसे परिवेश में जहाँ हिंदी भाषा को अंकुरित होना ही कठिन हो, वहाँ पर साहित्य सृजन की सुदीर्घ परंपरा का विकसित होना स्वयं में अति महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसलिए इस साहित्य धारा के प्रवाह को मूल्यांकित और विश्लेषित करने के लिए साहित्य समीक्षकों की दृष्टि अधिक उदारवादी होनी चाहिए। प्रवासी हिंदी कविता में हिंदी भाषा के साथ-साथ स्थानीय शब्दों एवं क्षेत्रीयता का प्रयोग इसकी वैविध्यता का परिचायक है, जो उसके भाषाई और शिल्पगत दोनों ही पक्षों को नवीनता से जोड़ता है। नई शब्दावलियों, नए प्रतीकों और उपादानों के प्रयोग ने इसे और अधिक समृद्ध किया है। इस प्रकार देखा जाए तो प्रवासी हिंदी कविता का भाव पक्ष जितना मजबूत है उसका शिल्पक्ष उतना ही नवीन और वैविध्यपूर्ण है।

अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता का शिल्प पक्ष बेजोड़ है। इसका सबसे बड़ा कारण इन कवियों का भारत एवं

अमेरिकी प्रवासी हिंदी कवियों का सीधा जुड़ाव हिंदी भाषा एवं भारत की जातीयता से रहा है। उन्होंने जिस काव्य परंपरा को भारत में देखा और समझा था, अमेरिका में भी उसी के अनुरूप ही सृजन का अंकुर विकसित किया। परिणामतः उनके काव्य में भाषा और शिल्प दृष्टि उतनी ही प्रखर और समृद्ध होकर उभरी है जितनी भारत मे साहित्य सृजन कर रहे हिंदी कवियों की।

अमेरिका दोनों से जुड़ा होना है। दरअसल अमेरिका में हिंदी कविता का सृजन लोक उन कवियों ने निर्मित किया है, जिनमें से अधिकांश लोग अमेरिका प्रवास से पूर्व ही अपनी पहचान निर्मित कर चुके है। गुलाब खंडेलवाल, डॉ. वेदप्रकाश 'वटुक', सुधा ओम ढींगरा, अंजना संधीर, रेखा मैत्र इसी श्रेणी के कवि, रचनाकार है, जो भारत में ही अपनी साहित्य प्रतिभा से सभी को परिचय करवा चुके थे। इस प्रकार अमेरिकी प्रवासी हिंदी कवियों का सीधा जुड़ाव हिंदी भाषा एवं भारत की जातीयता से रहा है। उन्होंने जिस काव्य परंपरा को भारत में देखा और समझा था, अमेरिका में भी उसी के अनुरूप ही सृजन का अंकुर विकसित किया। परिणामतः उनके काव्य में भाषा और शिल्प दृष्टि उतनी ही प्रखर और समृद्ध होकर उभरी है जितनी भारत मे साहित्य सृजन कर रहे हिंदी कवियों की। गुलाब खण्डेलवाल, वेदप्रकाश वटुक, डॉ. विजय कुमार मेहता, राकेश खण्डेलवाल इत्यादि कवियों का भावपक्ष जितना सबल है, उनका शिल्पपक्ष भी उतना ही सुदृढ और वैविध्यपूर्ण है।

इस संदर्भ में अमेरिकी प्रवासी हिंदी कवि डॉ. वेदप्रकाश वटुक लिखते हैं ''लब्धप्रतिष्ठ कवि गुलाब खंडेलवाल ने तो हर विद्या में रचना की है। 'निराला' द्वारा प्रशंसित इस महाकवि की रचनाएँ गुलाब खंडेलवाल रचनावली-पाँच खंड़ों में संकलित हैं। ग़ज़लों में वे शुद्ध सरल हिंदी का ही प्रयोग करते हैं। डॉ. विजय कुमार मेहता की कई रचनाओं में उनका महाकाव्य भिक्षुणी विशेष रूप से चर्चित हैं। रेणु राजवंशी की अपनी अनूठी शैली है। लघु कविताओं में भावों की गुरूता लिए। स्वः ओमप्रकाश गौड़ 'प्रवासी', रामेश्वर अशांत परंपरा गीतों के कवि हैं। 'प्रवासी' के प्रबंध काव्यों में रहस्यवाद की झलक है। अन्य जिन लोगों ने काव्य साधना में अपनी पहचान बनाई है, उनमें प्रमुख हैं, सुधा ओम ढींगरा, हिमाँशु पाठक, धनंजय कुमार, राकेश खंडेलवाल, सुरेंद्र कुमार तिवारी, अनंत कौर, अंजना संधीर आदि। अंजना संधीर गीतकार भी हैं और गायक भी। साथ ही अमेरिका पर पैना व्यंग्य करने वाली मुक्त छंद की कवि।'' इन कवियों की कविताओं को पढ़ते हुए पाठक उतना ही सहज रहेंगे, जितना किसी अन्य भारतीय कवि की रचनाओं को पढ़ते हुए रहते है।

भारतीय इतिहास, परंपरा और आत्मगौरव की वैचारिक पृष्ठभूमि से निर्मित इन कवियों का काव्यलोक वर्तमान एवं भविष्य के बीच नए आयामो को जोड़ता प्रतीत होता है। अस्तु अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता का अन्तर्लोक नए प्रयोगों, नई शैलियों और नए प्रतीक विधान के साथ नए कलेवर और नव स्वरूप धारण किए हुए है, जिसमें भारतीय काव्य विशेषणों के साथ साथ स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर के प्रतीक और उपादानों को भारतीयों सौंदर्य दृष्टि में गढ़ा गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता का शिल्पपक्ष, हिंदी कविता की भांति ही बेजोड और वैविध्यपूर्ण है। जिसने अमेरिका के विपरीत परिवेश और परिस्थिति में हिंदी भाषा एवं साहित्य की उर्वर जमीन को सींचा है। इसी संदर्भ में अमेरिकी प्रवासी हिंदी कवयित्री देवी नागरानी का कथन प्रासंगिक प्रतीत होता हैं ''आज की कविताएँ काव्य-शिल्प और काव्य भाव की समस्त भूमिका तोड़ती है और व्यवस्था की प्रतिगामी शक्तियों के प्रति समवेत रूप से हस्तक्षेप करती हैं।'' अमेरिका के प्रवासी हिंदी काव्य का शिल्प पक्ष इसी भाव के अनुरूप गढ़ा गया है।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी, अमेरिका प्रवासी हिंदी कविता का ऐसा ही नाम हैं, जिन्होंने अपनी काव्य चेतना से मानव जीवन से जुड़े इन्हीं भावों को संवेदनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। अभी तक आपकी चार काव्य पुस्तकें 'शिखंड़ी युग', 'बराह', 'यह युग रावण हैं, 'अंग-संग' प्रकाशित हुई हैं। आपकी कविता का मूल वर्ण्य विषय मानवीय सरोकारों की अभिव्यक्ति हैं। आपकी कविताएं, मानव जीवन में आई शून्यता और उसके प्रतिकारों से मुठभेड़ करती हुई आत्मचेतन् का ऐसा धरातल निर्मित करती हैं, जिसमें व्यक्ति के अशांत मन को शांति का अहसास होता हैं। निष्कर्षतः आपकी काव्य सर्जना का मूल विषय परवेदना को स्ववेदना बनाकर जगत कल्याण की राह को निर्मित करना है।

रेखा मैत्र, अमेरिकी प्रवासी हिंदी काव्य की एक और महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं। 'यादों का इन्द्रधुनुष', 'तलाश पहचान की', 'यादों की बारात', 'मिट्टी की खुशबू' जैसी महत्त्वपूर्ण काव्य कृतियों की रचयिता रेखा मैत्र जी की बारह से ज्यादा काव्य पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। वे मूलतः वैयक्तिक चेतना की कवयित्री हैं। आपकी कविताओं के वर्ण्य विषय मानव जीवन की गहन संवेदनाओं

से जुड़े हुए हैं। मानव मन की सूक्ष्म मनोवृतियों की रचनात्मक उपस्थिति, आपके काव्य का विशिष्ट पक्ष है जिसकी सार्थक अभिव्यक्ति उनकी प्रत्येक रचना हुई हैं। शशि पाधा, अनंत कौर, सुधा ओम ढींगरा, अंजना संधीर, कल्पना सिंह चिटनिस, अनिता कपूर इन्ही भावों और संवेदनाओं से जुड़ी हुई कवयित्रियाँ हैं, जिनके काव्य का अन्तर्लोक मानव मन और उसके सरोकार ही हैं। वस्तुतः कहा जा सकता हैं कि अमेरिकी प्रवासी काव्य संसार का फलक बहुत व्यापक और वैविध्यपूर्ण हैं। जिसमें देश और परदेश दोनों की अभिव्यक्ति समान रूप से हुई हैं।

अमेरिकी प्रवासी हिंदी काव्य के वैचारिक दर्शन भारतीयता से ओत-प्रोत हैं—''अमेरिकी प्रवासी हिंदी काव्य संसार पिछले कुछ दशकों में अब तक भारतीयों के अमेरिका प्रवास, प्रवास की कठिनाईयों और उपभोक्तावादी संस्कृति से बिखरते जीवन मूल्यों, तनाव-संघर्ष और भारत स्मृति का साहित्य है। अमेरिका में लेखन कर रहे प्रवासी भारतीयों में अधिकांश का जन्म भारत में ही हुआ है और वे बाद में वहाँ जाकर बसे हैं। फलस्वरूप उनकी रचनाओं में स्वदेश और विदेश दोनों का समावेश है। वे प्रवास के द्वंद्व में जीते हैं और इसी का प्रभाव उनके काव्य में भी दिखाई पड़ता है।... अमेरिका के सामाजिक परिवेश से जब इनका सामना होता है तब रिश्तों में छिजती संवेदना भीतर तक आहत करती है। संबंधों में आई यही रिक्तता, संस्कृतियों की टकराहट से बिखरते मूल्य, अस्मिता का संकट, उपभोक्तावाद में पनपती अवसरवादिता, उन्मुक्त भोग तथा दिशाहीनता; अमेरिकी प्रवासी काव्य का प्रमुख स्वर है।'' अमेरिकी प्रवासी हिंदी काव्य में निहित इन्हीं अवस्थितियों को अमेरिकी प्रवासी हिंदी साहित्य की प्रमुख हस्ताक्षर सुषम बेदी के इस कथन से भली-भाँति समझा जा सकता है—''अमेरिका में आने वाले हर समूह का शुरूआत का साहित्य उनके नये भूमि के अजीबोगरीब अनुभवों, अकेलेपन, अपने देश की याद या नॉस्टेलॉजिया का होता है फिर वे वहाँ की पूँजीवादी, भौतिक सुविधाओं वाले देश के लोगों के घोर स्वार्थ और लालच की कहानियाँ सुनाते लिखते हैं।'' अमेरिकी समाज व साहित्य का यही जीवन दर्शन अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता में भी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

अंजना संधीर का काव्य अमेरिकी प्रवासी जीवन की दूसरी तस्वीर उभारकर सामने लाता है। अमेरिका के वैभव व वर्चस्व के झीने पर्दे के पीछे दबी हकीकत से रू-ब-रू कराती आपकी कविताएँ, अमेरिका में रह रहे प्रवासी भारतीय समाज की दोहरी तस्वीर को प्रस्तुत करती हैं। अमेरिकी समाज की स्वच्छंद जीवन शैली में प्रवासी भारतीयों के रचने-बसने और बहकने का कच्चा चिट्ठा खोलती आपकी कविताएँ, भारत एवं अमेरिकी संस्कृतियों के टकराव, बिखराव और सद्भाव की सामूहिक अभिव्यक्ति करती है।

अमेरिकी प्रवासी भारतीय समाज में व्यक्ति स्वातंत्र्य के नाम पर उच्छृंखलता, अनियंत्रित यौन संबंधों, विद्रोह से भरी युवा पीढ़ी की असलियत, अवसरवादी पुरुष मानसिकता, बेबस लाचार माता-पिता, परदेश में ब्याहकर गई स्त्री की अंतःव्यथा और संघर्ष की असली तस्वीर अंजना संधीर की कविताओं की विशिष्टता है। प्रवासी जीवन के संत्रासों से आकुल उनका प्रवासी मन अमेरिका में सर्वत्र भारत की खोज में भटकता है। उनके अंतर्मन की यही अकुलाहट उनकी कविताओं में स्पष्टतः दिखलाई पड़ती है। अमेरिका में प्रवासी भारतीय समाज एवं संस्कृति के अस्तित्व एवं अस्मिता की तलाश करती आपकी कविताएँ वहाँ के सुखद व दुखद सभी पहलुओं को अपना वर्ण्य विषय बनती है। परिणामस्वरूप आपके काव्य में पूर्व-पश्चिम का समन्वय, संस्कृतियों के टकराव व आदान-प्रदान के कई बिंदू दिखाई पड़ते हैं। आपके काव्य में भारतीय व पाश्चात्य जीवन-मूल्यों की वास्तविक अभिव्यक्ति होती है। अतः कहा जा सकता है कि आपका काव्य अमेरिकी प्रवासी भारतीय समाज की जीवनगत सच्चाईयों का प्रमाणिक दस्तावेज है, जिसमें उनके विसंस्कृतिकरण और विनिर्माण की झलक दिखाई पड़ती है।

वस्तुतः अमेरिकी प्रवासी हिंदी काव्य भारतीयता व भारतीय सांस्कृतिक बोध का काव्य है। इसमें प्राचीन भारतीय संस्कृति से जुड़ाव के साथ-साथ आधुनिक जीवन संघर्षों को ग्रहण करने की ललक है। वहाँ रह रहा प्रवासी भारतीय समाज इसी अंतर्द्वंद्व एवं मानसिक वेदना से गुजरता है। अमेरिका के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य में व्याप्त भिन्नताएँ, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य, आर्थिक दबाव, अलगाव व अजनबीपन की व्यथा, व्यक्ति स्वातंत्र्य की गुंज, रिश्ते जीवन का दर्द, प्रवासी जीवन से

निकलकर अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता का वर्ण्य विषय बने है। ''इन कविताओं को पढ़कर, सुनकर यही लगता है परदेश से भारतीय प्रवासी अब भी भारत को, उसकी संस्कृति को, सभ्यता को अपने सीने में धड़कता हुए पाते हैं, तब ही तो वे इस पीड़ा की तड़प को महसूस करते हैं, इज़हार करते है।'' इसी संदर्भ में प्रवासी हिंदी साहित्य के मर्मज्ञ डॉ. कमल किशोर गोयनका लिखते हैं—''डॉ. वेदप्रकाश 'वटुक' ने ठीक ही लिखा है कि अमेरिका के हिंदी लेखकों की रचनाओं में स्वदेश अर्थात् भारत का स्पंदन बोलता है जो उन्हें विदेश में जीवित रखता है। वह बार-बार विस्थापित अनुभव करता है और वह जानता है कि स्वेच्छा से वनवास भोगता है, परन्तु वह बार-बार अपनी जड़ें खोजने के लिए लौटता है। इस तरह अमेरिका जैसे देशों की हिंदी रचनाएँ, अस्मिता की खोज में होम करती हुई पीढ़ी की रचनाएँ कही जा सकती है।''

अमेरिकी प्रवासी हिंदी कविता अमेरिका में प्रवासी भारतीयों के वर्चस्व, संघर्ष और सरोकारों की सामूहिक वाणी बनती है। इक्कीसवीं सदी में अमेरिका के प्रवासी भारतीय समाज ने बहुत तीव्र गति से अपनी पहचान निर्मित की है। प्रवासी भारतीयों की इस विकास-यात्रा में उनके साथ-साथ भारतीय समाज, संस्कृति व भाषा की परिधि में भी विस्तार हुआ है। निष्कर्षतः अमेरिका में भारत का यह विस्तार भारत की संपूर्ण जातीयता का विस्तार है। जिसमें भारतीय साहित्य और संस्कृति को वैश्विक प्रतिनिधित्व मिला है। अमेरिकी प्रवासी हिंदी काव्य की वैचारिक पृष्ठभूमि भारतीयता के इसी भाव-बोध से निर्मित है जिसमें प्रवासी भारतीय समाज के भारतीय संस्कृति से गहन संपृक्ति के साथ-साथ अमेरिकी समाज व संस्कृति में समन्वय का भाव भी परिलक्षित हुआ है।

संदर्भ

1. योगेन्द्र सिंह, अमेरिकी प्रवासी हिंदी काव्य में समाज और संस्कृति, प्रवासी हिंदी साहित्य, दशा एवं दिशा, तक्षशिला प्रकाशन, 98-ए, हिंदी पार्क, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2018, पृ॰सं॰ 496
2. योगेन्द्र सिंह व प्रो॰ नवीनचन्द्र लोहनी, अमेरिका के प्रवासी हिंदी काव्य में संस्कृति एवं मूल्यबोध, हिंदी प्रवासी साहित्य में स्वदेश, एकेडमिक पब्लिशिंग नेटवर्क, 16-ए, मंडावली, दिल्ली-110092, प्रथम संस्करण-2020, पृ॰सं॰ 56
3. कमल किशोर गोयनका, हिंदी का प्रवासी साहित्य, 4648/1, 21-अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 2017, पृ॰सं॰ 46
4. शशि पाधा, सांस्कृतिक धरोहर के संवाहक- प्रवासी भारतीय, प्रवासी हिंदी साहित्य स्वरूप और अवधारणा, भावना प्रकाशन, 109-ए, पटपड़गंज गाँव, दिल्ली-110091, प्रथम संस्करण 2020, पृ॰सं॰ 63
5. योगेन्द्र सिंह व प्रो॰ नवीनचन्द्र लोहनी, अमेरिका का प्रवासी हिंदी साहित्य: अवधारणा और स्वरूप, प्रवासी हिंदी साहित्य और सुदर्शन प्रियदर्शिनी, शुभम पब्लिकेशन, 3ए-128, हंसपुरम, कानपुर, 208021, प्रथम संस्करण 2018, पृ॰सं॰ 39
6. योगेन्द्र सिंह व प्रो॰ नवीनचन्द्र लोहनी, अमेरिका के प्रवासी हिंदी साहित्य में समाज एवं संस्कृति, वाङ्मय (त्रैमासिक हिंदी पत्रिका), जुलाई-दिसंबर 2018, पृ॰सं॰ 14
7. अनीता कपूर, अमेरिका की कवयित्रियों की मनोभूमि, प्रवासी जगत्, जुलाई-सितंबर 2018 (त्रैमासिक पत्रिका), पृ॰सं॰ 210
8. डॉ॰ करूणाशंकर उपाध्याय, हिंदी का विश्व संदर्भ, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा0लि0, जी-17, जगतपुरी, दिल्ली-110051, तृतीय संस्करण 2019, पृ॰सं॰ 130-131
9. डॉ॰ वेदप्रकाश 'वटुक', अमेरिका में हिंदी साहित्य, हिंदी का प्रवासी साहित्य, आराधना ब्रदर्स, 124/152, गोविन्द नगर, कानपुर-208006, प्रथम संस्करण 2018, पृ॰सं॰ 44
10. देवी नागरानी, अमेरिका के प्रवासी भारतीयों का हिंदी काव्य साहित्य, प्रवासी जगत (त्रैमासिक पत्रिका), सितंबर-नवंबर 2017, पृ॰सं॰ 16
11. योगेन्द्र सिंह, प्रवासी हिंदी काव्य में अभिव्यक्त भारतीय संस्कृति (अमेरिका के विशेष संदर्भ में), प्रवासी साहित्य और भारतीय संस्कृति, ऐकडेमिक पब्लिशिंग नेटवर्क, 16-ए, मंडावली, दिल्ली-110092, प्रथम संस्करण 2019, पृ॰सं॰ 156
12. सुषम बेदी, प्रवासी साहित्य के विषय और सरोकार, भावना प्रकाशन, 109-ए, पटपडगंज गाँव, दिल्ली-110091, प्रथम संस्करण 2019, पृ॰सं॰ 20
13. देवी नागरानी, अमेरिका में प्रवासी भारतीयों का हिंदी काव्य साहित्य, प्रवासी जगत् (त्रैमासिक पत्रिका), सितंबर-नवंबर 2017, पृ॰सं॰ 23
14. कमल किशोर गोयनका, हिंदी का प्रवासी साहित्य, स्वराज प्रकाशन, 464811, 21-अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 2017, पृ॰सं॰ 64

———•••———

1. शोधार्थी, 2. विभागाध्यक्ष
हिंदी विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ।

महुआ माजी की लेखनी : विस्तृत फलक का कथा साहित्य

— डॉ. कुमारी उर्वशी

हिंदी जगत में चर्चित झारखंड राज्य की महत्वपूर्ण उपन्यासकार महुआ माजी ने सन् 2006 में बांग्लादेश के एक गांव की कहानी पर "मैं बोरिशाइल्ला" नामक उपन्यास लिखा। उनके इस उपन्यास की हिंदी जगत में बहुत सराहना की गयी और वह हिंदी साहित्य जगत पर छा गईं। शायद वह भी नहीं जानती थीं कि अपने पहले उपन्यास से ही वह इतनी प्रसिद्ध हो जाएंगी। महुआ माजी के दो ही उपन्यास प्रकाशित हुए हैं और दोनों उपन्यास गंभीर विषयों पर हैं। 'मैं बोरिशाइल्ला' बांग्लादेश की मुक्तिगाथा पर केंद्रित है, जिसमें सांप्रदायिकता की बात की गई है। दूसरा उपन्यास 'मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ' में यूरेनियम रेडिएशन के दुष्प्रभाव का चित्रण किया गया है। उनकी अब तक आठ-दस कहानियां प्रकाशित हो चुकी हैं। हालांकि अब तक उनका संग्रह नहीं आया है।

महुआ माजी के दोनों उपन्यास ('मैं बोरिशाइल्ला' तथा 'मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ') समाज की विविधता और असमानता ,गैर- बराबरी, गरीबी और भी कई सामाजिक गंभीर मुद्दों को विषय के रूप में लेते हैं। 'मैं बोरिशाइल्ला' बांग्लादेश की मुक्तिगाथा पर केंद्रित है, जिसमें सांप्रदायिकता के असर की बात की गई है। दूसरा उपन्यास 'मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ' में यूरेनियम रेडिएशन के दुष्प्रभाव का चित्रण किया गया है।

महुआ माजी साहित्यिक फलक पर तब उभरी जब इनकी पहली कहानी 'मोइनी की मौत' कथादेश के नवलेखन अंक में छपी। इसके बाद इनकी कहानी 'रोल मॉडल' वागर्थ में छपी। हंस में 'मुक्ति योद्धा', नया ज्ञानोदय में 'चंद्र बिंदु', कथाक्रम में 'सपने कभी मरते नहीं', सहारा समय में 'उफ ये नशा कालीदास', इरावती में 'ड्राफ्ट', अक्षयपर्व में 'ताश का घर' और प्रभात खबर, अमर उजाला समाचार पत्र में 'झारखंडी बाबा' कहानी छपी और पाठकों ने इन्हें बेहद पसंद किया।

महुआ माजी साहित्यिक फलक पर तब उभरी जब इनकी पहली कहानी 'मोइनी की मौत' कथादेश के नवलेखन अंक में छपी। इसके बाद इनकी कहानी 'रोल मॉडल' वागर्थ में छपी। हंस में 'मुक्ति योद्धा', नया ज्ञानोदय में 'चंद्र बिंदु', कथाक्रम में 'सपने कभी मरते नहीं', सहारा समय में 'उफ ये नशा कालीदास', इरावती में 'ड्राफ्ट', अक्षयपर्व में 'ताश का घर' और प्रभात खबर, अमर उजाला समाचार पत्र में 'झारखंडी बाबा' कहानी छपी और पाठकों ने इन्हें बेहद पसंद किया। महुआ माजी चूंकि समाजशास्त्री भी हैं, इसलिए किसी चीज को पैनी निगाह से देखती हैं।

महुआ माजी चूंकि समाजशास्त्री भी हैं, इसलिए किसी चीज को पैनी निगाह से देखती हैं। एक समय समाजशास्त्री की नजर से लिखी गई रचनाएं समाज को बेहद पसंद आईं। 2007 में अपने पहले उपन्यास "मैं बोरिशाइल्ला" के लिए महुआ माजी को यू०के० कथा सम्मान 'इंदु शर्मा कथा सम्मान' से हाउस ऑफ लॉर्ड्स में ब्रिटेन के आंतरिक सुरक्षा मंत्री के हाथों नवाज़ा गया था।

महुआ माजी का उपन्यास 'मैं बोरिशाइल्ला' बांग्लादेश की मुक्ति-गाथा (बांग्लादेश का स्वतंत्रता संग्राम 1971 में हुआ था, इसे 'मुक्ति संग्राम' भी कहते हैं। यह युद्ध वर्ष 1971 में 25 मार्च से 16 दिसम्बर तक चला था। इस रक्तरंजित युद्ध के माध्यम से बांग्लादेश ने पाकिस्तान से स्वाधीनता प्राप्त की। 16 दिसम्बर सन् 1971 को बांग्लादेश बना था। भारत की पाकिस्तान पर इस ऐतिहासिक जीत को विजय दिवस के रूप में मनाया जाता है। पाकिस्तान पर यह जीत कई मायनों में ऐतिहासिक थी। भारत ने 93 हजार पाकिस्तानी सैनिकों को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया था।

1971 के पहले बांग्लादेश, पाकिस्तान का एक प्रान्त था जिसका नाम 'पूर्वी पाकिस्तान' था जबकि वर्तमान पाकिस्तान को पश्चिमी पाकिस्तान कहते थे। कई सालों के संघर्ष और पाकिस्तान की सेना के अत्याचार और बांग्लाभाषियों के दमन के विरोध में पूर्वी पाकिस्तान के लोग सड़कों पर उतर आए थे। 1971 में आज़ादी के आंदोलन को कुचलने के लिए पाकिस्तानी सेना ने पूर्वी पाकिस्तान के विद्रोह पर आमादा लोगों पर जमकर अत्याचार किए। लाखों लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया और अनगिनत महिलाओं की आबरू लूट ली गई। भारत ने पड़ोसी के नाते इस जुल्म का विरोध किया और क्रांतिकारियों की मदद की। इसका नतीजा यह हुआ कि भारत और पाकिस्तान के बीच सीधी जंग हुई। इस लड़ाई में भारत ने पाकिस्तान को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिए। इसके साथ ही दक्षिण एशिया में एक नए देश का उदय हुआ।

महुआ माजी ने 'मैं बोरिशाइल्ला' के माध्यम से बांग्लादेश के जन-संघर्ष की रोमांचकारी गाथा को जिस शिल्प और कौशल से उभारा है, उसमें ऐतिहासिक घटनाओं को घटित होते देखा जा सकता है। गुरिल्ला-युद्ध के बारीक वर्णन तथा तैयारियों, पाकिस्तानी फौजों के आधुनिकतम हथियारों और उनके इस्तेमाल या परिणामों की लोमहर्षक कहानियाँ का वर्णन करता यह एक एक्शन-पैक्ड उपन्यास है।

बोरिशाल के रहनेवाले एक पात्र केष्टो से शुरू हुई इस उपन्यास की कथा पूर्वी पाकिस्तान के मुक्ति-संग्राम और बांग्लादेश के रूप में एक नए राष्ट्र के अभ्युदय तक ही सीमित नहीं रहती बल्कि उन परिस्थितियों की भी पड़ताल करती है, जिनमें साम्प्रदायिक आधार पर भारत का विभाजन हुआ और फिर भाषायी तथा भौगोलिक आधार पर पाकिस्तान से अलग बांग्लादेश बना। यह एक ऐसा उपन्यास है जिसमें प्रेम की अन्त:सलिला भी बहती है तथा एक देश का बनना भी शामिल है।

मूलतः यह उपन्यास लेखिका के गंभीर शोध पर आधारित है और इसमें बांग्लादेश मुक्ति-संग्राम के दौरान पाकिस्तानी सैनिकों तथा उर्दू भाषी नागरिकों द्वारा बांग्लाभाषियों पर किए गए अत्याचारों तथा उसके ज़बर्दस्त प्रतिरोध का बहुत प्रामाणिक चित्रण हुआ है। सांप्रदायिक हिंसा का बेहद सजीव चित्रण लेखिका ने उपन्यास में किया है। उपन्यास का एक बड़ा हिस्सा उस दौर के लूट, हत्या, बलात्कार, आगजनी की दास्तान बयान करता है। उस दौरान मानवीय आधार पर भारतीय सेना द्वारा पहुँचाई गई मदद और मुक्तिवाहिनी (बांग्लादेश की आज़ादी की लड़ाई के दौरान मुक्तिवाहिनी का गठन पाकिस्तान सेना के अत्याचार के विरोध में किया गया था। 1969 में पाकिस्तान के तत्कालीन सैनिक शासक जनरल अयूब के खिलाफ पूर्वी पाकिस्तान में असंतोष बढ़ गया था और बांग्लादेश के संस्थापक नेता शेख मुजीबुर रहमान के आंदोलन के दौरान 1970 में यह अपने चरम पर था। मुक्तिवाहिनी एक छापामार संगठन था, जो पाकिस्तानी सेना के खिलाफ गुरिल्ला युद्ध लड़ रहा था। मुक्तिवाहिनी

को भारतीय सेना ने समर्थन दिया था। ये पूर्वी पाकिस्तान के लिए बहुत बुरा समय था।) को प्रशिक्षण देने के लिए भारतीय सीमा क्षेत्र में बनाए गए प्रशिक्षण शिविरों तथा अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भारत सरकार द्वारा निभाई गई भूमिका का उल्लेख भी इसमें है। राष्ट्र-राज्य बनाम साम्प्रदायिक राष्ट्र की बहस को बहुत ही गंभीरता से इस उपन्यास में उठाया गया है। एक गंभीर मसले को उठाने के बावजूद यह कृति बेहद रोचक और पठनीय है।

उपन्यास में 1948 से 1971 तक के बांग्लादेश के ऐतिहासिक तथ्यों, पाकिस्तानी हुकूमत द्वारा बांग्लादेशी जनता पर किए अत्याचारों की घटनाओं को वर्णित किया गया है। इस उपन्यास की रचना प्रक्रिया के विषय में महुआ माजी कहती हैं कि बांग्लादेश के मुक्ति-संग्राम को अपने पहले ही उपन्यास का विषय बनाने का कारण था कि मैं नई पीढ़ी के लिए उसे एक दृष्टांत के रूप में पेश करना चाहती थी कि आज बेशक पूरी दुनिया में सारी लड़ाइयाँ धर्म के नाम पर ही लड़ी जा रही हैं, लेकिन सच तो ये हैं कि सारा खेल सत्ता का है। ये लड़ाइयाँ अब बंद होनी चाहिये। आज हमारी धरती पर सांप्रदायिकता एक जहर के समान है जिसे जितनी जल्दी समाज से दूर कर दिया जाए हमारा समाज उतना ही खूबसूरत हो जाएगा।

'मैं बोरिशाइल्ला' उपन्यास को दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहले चरण में लेखिका केष्टो की बचपन की शरारतों से लेकर किशोरावस्था में मुंबई भागने और फिर प्रेम में असफल होकर वापस बोरिशाल में एक बड़े व्यवसायी

और बॉडी बिल्डर बनकर अपने आप को स्थापित करने की कहानी कहती हैं। उपन्यास का अगला चरण स्वतंत्र पाकिस्तान के पूर्वी हिस्से में उभरे भाषाई राष्ट्रवाद की कथा कहता है। पश्चिमी पाकिस्तान के शासकों द्वारा निरंतर बरते जाने वाले भेदभाव, से ये भाषाई राष्ट्रवाद स्वतंत्रता संग्राम में तब बदल जाता है जब चुनावी जीत के बाद पाकिस्तानी शासक शेख मुजीब को सत्ता हस्तांतरित किये जाने से आनाकानी करते हैं।

फिर शुरु होती है मुक्तिवाहिनी के अभ्युदय के साथ पाकिस्तानी शासकों के बर्बर जुल्म की गाथा जो कई जगह रोंगटे खड़ी कर देती है। अगर आप मुक्तिवाहिनी की उत्पत्ति के कारणों, उनके लड़ने के तरीकों और उस कालखंड में पाक सेना द्वारा की गई बर्बरता और भारत द्वारा किए गए परोक्ष और प्रत्यक्ष सहयोग के बारे में विस्तार से जानने में रुचि रखते हैं तो यह उपन्यास जरुर पढ़े। भारत के युद्ध में निर्णायक सहयोग के बावजूद भी बाँग्लादेशियों की भारत के प्रति संदेह करने की प्रवृति और विगत वर्षों में अल्पसंख्यक हिंदुओं के साथ होने वाली दंगाई हिंसा का जिक्र भी एक कचोट के साथ लेखिका ने किया है। उनका ये उपन्यास बांग्लादेश के तथ्यों पर आधारित है। किस तरह वहां रहने वाले लोगों पर अत्याचार किए जाते थे। इस में एक आदमी इन सब के खिलाफ खड़ा होता है और सब को एक साथ कर खुद पर हो रहे अन्याय के खिलाफ लड़ाई लड़ता है।

महुआ माजी ने 'मैं बोरिशाइल्ला' के माध्यम से बांग्लादेश के जन-संघर्ष की रोमांचकारी गाथा को जिस शिल्प और कौशल से उभारा है, उसमें ऐतिहासिक घटनाओं को घटित होते देखा जा सकता है। गुरिल्ला-युद्ध के बारीक वर्णन तथा तैयारियों, पाकिस्तानी फौजों के आधुनिकतम हथियारों और उनके इस्तेमाल या परिणामों की लोमहर्षक कहानियाँ का वर्णन करता यह एक एक्शन-पैक्ड उपन्यास है।

महुआ माजी का दूसरा उपन्यास 'मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ' जनजातियों के जीवन संघर्ष पर केन्द्रित है। इस उपन्यास में महुआ माजी ने रेडियेशन के खतरनाक नतीजों पर अपने विचारों को व्यक्त किया है। मरंग गोड़ा वस्तुतः जमशेदपुर से तीस चालीस कि.मी. दूर स्थित 'जादूगोड़ा' (जादूगोड़ा अपने यूरेनियम की खानों के लिये मशहूर है। जादूगोड़ा का पुराना नाम जारागोरा हुआ करता था। जादूगोड़ा में एक छोटी सी कॉलोनी है जिसमें यूरेनियम खान को नियंत्रित करने वाली कंपनी यूरेनियम कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड में काम करने वाले लोग रहते हैं।) नामक

उपन्यास का टैग लाइन है, विकिरण, प्रदूषण व विस्थापन से जूझते आदिवासियों की गाथा। यह गाथा कोल्हान के उस क्षेत्र की है, जहां के आदिवासी पिछले कई दशकों से यूरेनियम के कचरे का शिकार हो जवानी में ही दम तोड़ दे रहे हैं। कई तरह की बीमारियां, गर्भपात हो जाना, लाइलाज चर्म रोग और असमय बुढ़ापे की मार यह सब अतिरिक्ति सौगातें हैं। विकास का एक भयावह चेहरा यहां दिखाई देता है। हालांकि कंपनी इससे अपना पल्ला झाड़ती रही है, लेकिन देश-विदेश के कई विशेषज्ञों की टीम ने इस क्षेत्र का दौरा किया और पाया कि ये सारी बीमारियां यूरेनियम के कचरे की वजह से पैदा हो रही हैं। महुआ माजी ने अपने उपन्यास में इसी विषय को उठाया है।

वह कस्बा है जहाँ सन 1967 में शुरू हुए यूरेनियम अयस्क खनन से आसपास के पंद्रह गांवों के तीस हजार से अधिक लोग बुरी तरह विकिरण से प्रभावित हुए थे। जो जमीन रेडियोधर्मी धातु यूरेनियम के जहर को पीकर देश दुनिया को ऊर्जा प्रदान कर रही है, वह यही आबादी है जो नीलकंठ हुई है।

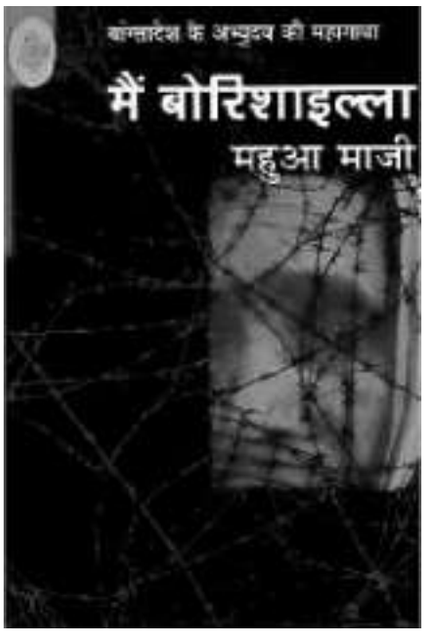

लेखिका लिखती हैं कि "ये उन दिनों की बात है जब मरंग गोदा में सभी के हाथ पाँव बिलकुल सही सलामत थे। किसी का सिर असामान्य रूप से बड़ा या छोटा नही दीखता था। किसी की देह घिनौने घावों से बजबजाती नही थी। गाय-बकरियों के जबड़े, दांत या मसूड़े सड़कर गिरते नहीं थे"। अर्थात मरंग गोडा का अभी का समाज इन सभी विकृतियों के साथ जीने को अभिशप्त है। अंग्रेजी शासन काल से शुरू होकर मरंग गोडा की कथा 2011 तक आते-आते अपने स्वरूप में वैश्विक हो जाती है। उपन्यास का कथानक नायक सगेन के दादा जाम्बिरा के समय से आगे बढ़ते हुए आदिवासी समाज के रीति-रिवाज, उनके पर्व-त्यौहार, उनकी सामुदायिक संस्कृति का सूक्ष्मतम विश्लेषण करते हुए धीमी गति से आगे बढ़ता है। उपन्यास की शुरुआत में ही जब लोहे और तांबे के खनन के लिए आदिवासियों को विस्थापित करने के साथ ही कानून बनाकर इनके जंगलो को भी सरकारी संपति घोषित कर काटा जाने लगता है तो आदिवासी आंदोलित होते हैं और सवाल पूछते हैं कि "जंगल के बिना हम जियेंगे कैसे? हमारी झोपडी, खटिया बनाने की लकड़ी और रस्सी जंगल से ही आती है। जब धान नहीं होता तो जंगली फल-कंद-मूल आदि खाकर ही तो हम पेट भरते हैं। साल की लकड़ी और पत्तो के बिना शादी व्याह से लेकर कोई भी संस्कार सम्भव है क्या?"

इस उपन्यास में महुआ माजी यूरेनियम की तलाश से जुड़ी जिस सम्पूर्ण प्रक्रिया को उजागर करती हैं वह गहरे शोध, सर्वेक्षण और समाजशास्त्रीय दृष्टि का सहारा लेकर एक जरूरी हस्तक्षेप है। उपन्यास का केन्द्रीय पात्र सगेन विकिरणविरोधी वैश्विक आन्दोलन के साथ संवाद बनाता है। हिरोशिमा की दहशत और फुकुशिमा सरीखे हादसे उसकी चेतना को लगातार दिशा देते हैं। यह सबकुछ मानवीय सम्बन्धों की ऊष्मा एवं अन्तर्द्वन्द्व में घुल-मिलकर प्रस्तुत हुआ है। उपन्यास के अंत में जापान के फुकुशीमा परमाणु संयंत्र में विस्फोट के बाद संगेन लिखता है "तुम विकसित लोगो के पास बेशक इस धरती पर हिम युग आने में देर नहीं लगेगी"।

उपन्यास का टैग लाइन है, विकिरण, प्रदूषण व विस्थापन से जूझते आदिवासियों की गाथा। यह गाथा कोल्हान के उस क्षेत्र की है, जहां के आदिवासी पिछले कई दशकों से यूरेनियम के कचरे का शिकार हो जवानी में ही दम तोड़ दे रहे हैं। कई तरह की बीमारियां, गर्भपात हो जाना, लाइलाज

जादूगोड़ा के साथ ही सारंडा की कहानी भी कही गई है। साल बनाम सागवान की लड़ाई को भी उठाया गया है। विकिरण, प्रदूषण व विस्थापन से जूझते जनजातीय समाज की गाथा को महुआ माजी ने इस उपन्यास का मुख्य कथानक बनाया है, जो आदिवासियों की वास्तविक समस्याओं से रूबरू करने का प्रयास करता है। उपन्यासकार महुआ माजी ने झारखंडी समाज में व्याप्त विभिन्न परंपराओं, रूढ़ियों और उनसे उत्पन्न विकृतियों, सामाजिक व्यवस्थाओं पर सवाल उठाया है।

चर्म रोग और असमय बुढ़ापे की मार यह सब अतिरिक्ति सौगातें हैं। विकास का एक भयावह चेहरा यहां दिखाई देता है। हालांकि कंपनी इससे अपना पल्ला झाड़ती रही है, लेकिन देश-विदेश के कई विशेषज्ञों की टीम ने इस क्षेत्र का दौरा किया और पाया कि ये सारी बीमारियां यूरेनियम के कचरे की वजह से पैदा हो रही हैं। महुआ माजी ने अपने उपन्यास में इसी विषय को उठाया है।

लंदन से माओवाद पर शोध करने आई प्रज्ञा के बहाने लेखिका ने विकास के नाम पर किये जा रहे शोषण और अन्याय को आदिवासी क्षेत्रों में माओवाद और नक्सलवाद के उदय से जोड़कर देखती हैं।

सगन कहता है—"यह कैसी विडम्बना है कि हमारी औरतें बाँझ हो रही हैं। हमारे बच्चे विकलांक पैदा हो रहे हैं। हमारे लोग जवानी में ही कैंसर या टीबी से मर रहे हैं और हम इसके विरोध में आवाज उठाते हैं। कोई कदम उठाते हैं तो देशद्रोही करार दिए जाते हैं! कमाल है! यह कैसा लोकतंत्र है? यह कैसी सभ्यता है?"

उपन्यास में कैमरामैन आदित्य श्री के माध्यम से वर्णन किया गया है:- "पहले दिन मरंग गोड़ा में कदम रखते ही उस युवा पत्रकार आदित्यश्री ने देखा था, ढेर सारे औरत, मर्द, बच्चे, बूढ़े एक तालाब में उछल कूद करते हुए हाथ से ही मछली पकड़ रहे हैं। बड़ा आश्चर्य हुआ था उसे। अपने वीडियो कैमरे से शॉट लेते हुए उसने जाना था कि अचानक उस दिन तालाब की तमाम मछलियां मर मरकर पानी की सतह पर चली आई थीं। तभी इतनी आसानी से लोग उन्हें पकड़ पा रहे थे। बाद में सगेन ने खुलासा किया था— 'तालाब में टेलिंग डैम का जहरीला पानी कुछ ज्यादा ही चला आया था शायद..."

सगेन को ततंग यानी उसके दादा पत्थरों का डाक्टर बनाना चाहते थे, लेकिन जैसे-जैसे सगेन बड़ा होता है, उसे जादूगोड़ा का सच दिखाई देने लगता है और फिर लोगों को जागरूक करने, एकजुट करने के लिए वह कमर कस लेता है।

सगेन की भेंट जब आदित्यश्री से होती है तब जादूगोड़ा के सच से देश-दुनिया परिचित होती है। आदित्यश्री जादूगोड़ा पर कई डाक्यूमेंट्री बनाता है। उसका प्रदर्शन जापान सहित कई अन्य देशों में होता है। इस डाक्यूमेंट्री के माध्यम से आदिवासियों का दर्द लोगों के सामने आता है। जब देश-दुनिया में कंपनी की करतूतों का पता चलता है तो कंपनी वाले भी थोड़ा मानवीय रुख अपनाने को बाध्य होते हैं।

आदित्यश्री एक एनजीओ की मदद से ही डाक्यूमेंट्री बनाता है। एनजीओ का नाम देने से लेखिका ने परहेज किया है। एनजीओ के मुख्य कर्ता-धर्ता का नाम भी यहां बदल दिया गया है, जबकि उपन्यास में कुछ पात्र अपने सही नामों के साथ उपस्थित हैं। जादूगोड़ा के साथ ही सारंडा की कहानी भी कही गई है। साल बनाम सागवान की लड़ाई को भी उठाया गया है। विकिरण, प्रदूषण व विस्थापन से जूझते जनजातीय समाज की गाथा को इस उपन्यास का मुख्य कथानक बनाया है, जो आदिवासियों की वास्तविक समस्याओं से रूबरू करने का प्रयास करता है। विकिरण से उत्पन्न बीमारियों एवं इन से हो रही भयानक मौत का इल्जाम निर्दोष 'सगेन की ताई' पर लगाया जाता है। उसे डायन घोषित करके उसकी जान लेने पर लोग उतारू हो जाते हैं।

दरअसल उपन्यासकार महुआ माजी ने झारखंडी समाज में व्याप्त विभिन्न परंपराओं, रूढ़ियों और उनसे उत्पन्न विकृतियों, सामाजिक व्यवस्थाओं पर सवाल उठाया है। इसके साथ ही उन्होंने देश में व्याप्त समस्याओं को भी अपने कथा साहित्य में स्थान दिया है।

———•••———

सहायक प्राध्यापिका
हिंदी विभाग, रांची विमेंस कॉलेज, रांची, झारखंड

हिन्दी पत्रकारिता पर भूमंडलीकरण का प्रभाव

— कुमारी मनीषा

मानव विकास के इतिहास में जनसंचार माध्यमों का विकास में एक नवीन परिघटना है। जॉन गुटेनबर्ग ने 1450 ई. में छापेखाने का अविष्कार करके जनसंचार के माध्यमों का विकास किया है। यह मानव के ज्ञान के संग्रह का नया एवं व्यापक माध्यम बन गया। भारत में प्रथम छापाखाना की स्थापना गोवा के संत पॉल कॉलेज में नवम्बर 1556 ई. में की गई थी। भारत में जनसंचार के माध्यमों के प्रारम्भ हाने में अंग्रेजों एवं पूर्तगालियों का बहुत बड़ा योगदान है। यूरोपियनों द्वारा छापाखाने की स्थापना का प्रारम्भिक उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना था। लेकिन यह व्यापारी वर्ग धीरे-धीरे शासक के रूप में तब्दील होने लगे, उनके कार्यक्षेत्र में विस्तार आता गया।

अठारहवीं शताब्दी तक प्रेस संबंधी कोई स्पष्ट नियम कानूनों का भारत में अभाव था। स्वतंत्र रूप से प्रेस का कार्य करने वाले व्यक्तियों को ब्रिटिश सरकर

द्वारा प्रताड़ित किया जाता था। भारतीय भाषायी समाचारपत्रों का दौर सन् 1816 ई. से प्रारम्भ हुआ। इसके पूर्व जो भी समाचारपत्र प्रकाशित हुए उनके संपादक और प्रकाशक यूरोपीय ही थी। पहला भारतीय समाचारपत्र 'बंगाल गजट' के नाम से अस्तित्व में आया। इसी अवधि में भारतीय समाचारपत्र जगत में जेम्स सिल्क बकिघम और राजा राम मोहन राय जैसी विभूतियों का पदार्पण हुआ। इनके प्रयास से भाषायी पत्रकारिता की नींव पड़ी। इन्होंने पत्रकारिता के माध्यम से समाज में व्याप्त समस्याओं के समाधान का प्रयास किया। यह बहुत हद तक सफल भी हुए। बर्नस्टीन के अनुसार—"अच्छी पत्रकारिता जनता को चुनौती देती है उसका विवेकहीन ढंग से शोषण नहीं करती है।"[1] पर बाद में विभिन्न दबावों के फलस्वरूप राजा राममोहन राय कमजोर पड़ने लगते हैं। फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि रामपुर के ईसाई मिशनरियों द्वारा किये जा रहे तेज आक्रमण से हिन्दूवाद की रक्षा राममोहन राय के कारण ही सम्भव हुई। इन्हीं परिस्थितियों के बीच 30 मई 1826 को पं. जुगल किशोर शुक्ल ने प्रथम हिन्दी पत्र 'उदंत मार्तन्ड' कलकत्ता से निकाला। सन् 1867 ई. में काशी से भारतेन्दु ने 'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' का सम्पादन और प्रकाशन किया। बालकृष्ण भट्ट ने प्रयाग से मासिक पत्र 'हिन्दी प्रदीप' सन् 1877 ई. में निकाला। भारतेन्दु मंडल के सभी लेखक पत्रकार थे।

भारतेन्दु युग की हिन्दी पत्रकारिता में देशभक्ति के साथ-साथ राजभक्ति भी थी, क्योंकि उस दौर में अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक था। "उस समय के अनेक पत्रों की यह विशेषता थी कि वे अपने पाठकों को सभी विषयों से थोड़ा परिचित करना चाहते थे।"[2] इस काल में पत्रकारिता के कर्म को समाज सुधार का अंग माना जाता था। इसके द्वारा समाज की अनेक कुरीतियों को समाप्त करने का प्रयास किया गया, साथ ही राजनीतिक उदारवाद की वकालत भी की। "भारतेन्दु युग के सम्पादक उच्च आदर्शो से युक्त थे। विपरीत परिस्थितियाँ भी उन्हें अपने लक्ष्य से विमुख नहीं कर सकीं। उन्होंने देश दशा के यथार्थ चित्र खीचें और ब्रिटिश सरकार की कारगुजारियों की ओर जनता का ध्यान खीचें।"[3] इसी समय दूसरी भाषाओं में महादेव गोविंद रानाडे, बाल गंगाधर तिलक, गोखले आदि स्वतंत्रता सेनानियों ने मराठी अखबारों के द्वारा समाज सुधार के कार्यो को बढ़ावा दिया। इस युग में पत्रकारिता और समाज सुधार को एक दूसरे के पूरक माना जाता था। "पत्रकारिता ने ही देश प्रेम, समाज सुधार और जनजागरण को मध्यवर्ग की चेतना और चिंता को अनिवार्य हिस्सा बना दिया।"[4]

भूमंडलीकरण ने जिस प्रकार जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है, वैसा ही समाचार पत्रों के साथ भी हुआ है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विभिन्न रूपों में खबर की परिभाषा, उसकी संरचना एवं प्रस्तुति में व्यापक बदलाव लाया है। प्रौद्योगिकी में विकास के साथ-साथ बाजार और पाठक के दबाव ने भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। वर्त्तमान भूमंडलीकरण में हिन्दी समाचार पत्रों की अंतर्वस्तु का निर्धारण बाजार की माँग और पूर्ति के सिद्धान्त के आधार पर तय होने लगा है। विज्ञापन बाजार, ग्राहक, ज्यादा महत्वपूर्ण हो गये हैं।

उन्नीसवीं सदी में हिन्दी पत्रकारिता ने गति पकड़ ली। सामाजिक, राजनीतिक पत्रों के साथ-साथ साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएँ भी बड़ी संख्या में निकलने लगी। लोग अखबारों और खबरों का महत्व जानने लगे थे। इस अवधि के प्रमुख पत्र-पत्रिकाअें में सरस्वती (1900), भारत मित्र, कलकत्ता समाचार (1914), विश्वमित्र (1916) और स्वतंत्र (1920) आदि प्रमुख थे।

बीसवीं सदी का शुरूआती दशक पत्रकारिता और राजनीति में अनेक परिवर्त्तन एव हलचलों से भरा था। देश में राजनीतिक गतिविधियाँ जोर पकड़ने लगी थी। इसी समय देश में विरोध के स्वर मुखर होने लगे थे। "उग्र तेवर की राजनीति के कारण लोगों में इसे जानने की उत्सुकता पैदा हुई और इसके लिए वे समाचार पत्रों से जुड़ने लगे। इस कारण समाचार पत्रों का व्यापक विस्तार हुआ। पत्रकारिता अब देश सेवा और स्वाधीनता संग्राम का पर्याय बन गई थी।"[5]

बीसवीं सदी के दूसरे दशक के मध्य में स्वतंत्रता आंदोलन के केन्द्र में महात्मा गाँधी थे। गाँधी जी के प्रभाव में आकर हिन्दी पत्रकारिता में भी नई उर्जा का प्रवाह हुआ। "उनके रचनात्मक कार्यो में और असहयोग आंदोलन के प्रचार के लिए देश में अनेक दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रों का प्रकाशन हिन्दी में हुआ।"[6]

बीसवीं शताब्दी के तीसरे और चौथे दशक में जैसे-जैसे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन तेज हुआ, हिन्दी में भी अनेक पत्र निकले और उसने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। सन् 1920 से 1947 की अवधि में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का बिगुल बजाने में हिन्दी के राजनीतिक और साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का सक्रिय योगदन रहा। उनमें मदन मोहन मालवीय जी का 'अभ्युदय', गणेश शंकर विद्यार्थी जी का 'प्रताप', पराड़कर जी का 'आज', कमलापति त्रिपाठी जी का 'संसार' आदि महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाएँ हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रभाव में आकर छोटी पूँजी के समाचार पत्र बड़ी पूँजी में बदलने लगी। "पूँजी और तकनीक पत्रकारिता के क्षेत्र में आने से अखबार अब घरेलू कुटीर उद्योग नहीं रह गए बल्कि अच्छी तरह से संयोजित होकर छपने लगे।"[7]

आजादी के बाद हिन्दी पत्रकारिता में पूँजी निवेश होने लगा, देश के कई हिस्सों से दैनिक प्रारम्भ होने लगे। इनमें 'नवभारत टाइम्स' दिल्ली (1947), 'नई दुनिया', इंदौर (1947), 'युगधर्म' नागपुर (1951), 'जागरण' कानपुर (1947), 'अमर उजाला' आगरा (1947), 'पंजाब केसरी' जालंधर (1964), 'देशबन्धु' भोपाल (1956), 'स्वदेश' इंदौर, ग्वालियर (1966), 'नई दुनिया' जबलपुर (1959) आदि प्रमुख हैं, जिन्होंने अपने-अपने क्षेत्रों में खास जगह बनाई है। आजादी के 10 वर्षों में हिन्दी पत्रकारिता निरन्तर विकास करती रही। इसने भारत निर्माण, स्थानीय समस्याओं को उभारने तथा उनकी ओर ध्यान आकर्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सातवें दशक में हिन्दी पत्रकारिता ने राजनीति में आये बदलाव, जिसने गैर-काँग्रेसी सरकारों का राज्यो में बनना एवं अनेक क्षेत्रीय पार्टियों का उभार के साथ-साथ प्रशासनिक भ्रष्टाचार की शुरूआत के कारण समाचार पत्रों ने अपने को वास्तविक रूप से सफल बनाने के प्रयास में अपने में बदलाव लाया। "वस्तुतः यह दशक क्षेत्रीय और राष्ट्रीय हिन्दी पत्रकारिता के नये उभार का दौर है। सन् 1967 ई. में 'नई दुनिया' ने अपना मुद्रण ऑफसेट रोटरी मशीन पर प्रारम्भ किया। इस प्रकार की मशीन भारत में पहली बार 'नई दुनिया' के पास आई।"[8]

बीसवी शताब्दी के आठवें दशक में हिन्दी समाचार पत्रों ने देश में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में हो रहे व्यापक बदलाव को प्रस्तुत किया। हिन्दी समाचार पत्रों को सरकारी के साथ-साथ निजी कम्पनियों के विज्ञापन भी मिलने लगे। हिन्दी अखबारों के नये संस्करण भी प्रकाशित होने लगे।

जुलाई, 1991 ई. के बाद भारत ने मुक्त व्यापार को बढ़ावा देने के लिए उदारीकरण तथा निजीकरण को पूर्णतः अपना लिया। यह पूर्णतः बाजारवादी व्यवस्था के अनुकूल थी। सन् 1991 ई. में भूमंडलीकरण की औपचारिक शुरूआत होने के साथ पूँजी निवेश और मुक्त व्यापार पर सरकार का नियंत्रण हटने से समाचार प्रत्र, पत्रिकाओं के साथ-साथ इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता में भी जबरदस्त विस्तार होने लगा। साथ ही हिन्दी पत्रकारिता में व्यापार और पूँजी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे, जिसके फलस्वरूप विज्ञान बाजार और उपभोक्तावादी संस्कृति समाचार पत्र-पत्रिकाओं में अपना प्रभुत्व स्थापित करती जा रही है। भूमंडलीकरण के प्रभाव के कारण हिन्दी

भूमंडलीकरण प्रक्रिया के परिणामस्वरूप हिन्दी पत्रकारिता का स्वरूप भी निरन्तर परिवर्तित हो रहा है। इस प्रक्रिया के कारण हिन्दी पत्रकारिता में ग्लोबल और लोकल प्रवृत्तियाँ एक साथ देखने को मिलती है। भविष्य में हिन्दी प्रिन्ट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक और मल्टीमीडिया नई-नई भूमिका में नजर आयेंगे। नई-नई तकनीक विकसित हो रही है, इंटरनेट का प्रभाव क्षेत्र बढ़ रहा है जिसके फलस्वरूप हिन्दी प्रिन्ट पत्रकारिता, इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता, मल्टीमीडिया सभी वेब पर स्थापित हो रहे हैं।

दैनिकों में एक-दूसरे के बाजार पर कब्जे और नये-नये क्षेत्रों में पहुँचने की प्रवृत्ति जोर पकड़ रही है।

भूमंडलीकरण ने जिस प्रकार जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है, वैसा ही समाचार पत्रों के साथ भी हुआ है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विभिन्न रूपों में खबर की परिभाषा, उसकी संरचना एवं प्रस्तुति में व्यापक बदलाव लाया है। प्रौद्योगिकी में विकास के साथ-साथ बाजार और पाठक के दबाव ने भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। वर्त्तमान भूमंडलीकरण में हिन्दी समाचार पत्रों की अंतर्वस्तु का निर्धारण बाजार की माँग और पूर्ति के सिद्धान्त के आधार पर तय होने लगा है। विज्ञापन बाजार, ग्राहक, ज्यादा महत्वपूर्ण हो गये हैं। सूचना क्रांति ने दुनिया को वैश्विक ग्राम में बदल दिया है। संचार माध्यमों ने सूचनाओं की उपलब्धता को बेहद आसान बना दिया है। आज का पाठक केवल सूचना को सूचना के रूप में नहीं बल्कि मनोरंजन और रोचक ढंग से बहुत जल्दी जानना चाहता है। टेलिविजन चैनलों द्वारा अपनाए जा रहे ग्लैमर का प्रभाव भी अखबारों पर पड़ा है। भूमंडलीकरण के दौर में ज्यादातर हिन्दी अखबारों ने अंगेजी अखबारों के तौर-तरीकों को अपनाना शुरू कर दिया। हिन्दी के अखबार इस भूमंडलीकरण के वाहक बन गये। "बड़ी कम्पनियों और बहुराष्ट्रीय निगमों को भी अपने उत्पादन के प्रचार के लिए संचार माध्यमों की जरूरत थी क्योंकि वैश्वीकरण संचार माध्यमों के पंख पर सवार होकर ही विस्तार पाता है। हिन्दी अखबारों ने इस विस्तार में अहम भूमिका निभाई।"[9]

हिन्दी समाचर पत्रों में भूमंडलीकरण के प्रभावों के फलस्व्रूप समाचार पत्र-पत्रिकाओं के प्रसार, अंतर्वस्तु कलेवर, संपादन मंडल, प्रबन्धक तंत्र, रिपोर्टिंग, सूचना सम्पर्क माध्यमों पर व्यापक असर पड़ा है। हिन्दी समाचार प़त्र-पत्रिकाएँ पहले से अधिक प्रतिस्पर्धी और व्यवसायिक हुए हैं। भूमंडलीकरण के दौर में शिक्षा के प्रसार और बाजार के विस्तार के कारण हिन्दी समाचार पत्रों की प्रसार संख्या तेजी से बढ़ रही है। इसके साथ ही हिन्दी पत्रकारिता में संपादक की सत्ता का ह्रास हुआ है, जिसके लिए मीडिया मालिक और व्यवसायिक दृष्टिकोण मुख्य भूमिका निभाते हैं। संपादकों के अधिकारों में कमी आ गई है। "वस्तुतः संपादक प्रबंधन-प्रकाशक और पाठक के बीच सेतु होता है। वह उस समुदाय का प्रतिनिधि होता है, जिसकी सेवा दैनिक करता है। संपादक समाचार-पत्र का सामाजिक अनुबंध है जिसके तहत दोनों एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। योग्य संपादक का नेतृत्व प्राप्त करके ही कोई पत्र लोकजीवन को जागृत और गतिशील बना सकता है।"[10]

भारत में आज संपादकों को अपना कार्य प्रबंधन के अनुसार ही करना पड़ता है। संपादकों की नियुक्ति प्रक्रिया भी इसकी महत्ता को समाप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। "वैश्वीकरण के दौर में बाजारवादी व्यवस्था की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है—हायर एण्ड फायर प्रथा यानि ठेके पर नियुक्ति करने और रद्द करने का अधिकार पूरी तरह से मालिक के हाथ में होना। अन्य क्षेत्रों के साथ ही हिन्दी अखबारों में भी यह प्रचलन प्रारम्भ हो गया है, खास तौर पर सन् 1990 ई. के बाद ही अधिकतर नियुक्तियाँ इसी व्यवस्था के तहत की जाने लगी हैं।"[11] यह संपादकों के मन में एक ऐसा असुरक्षा बोध पैदा करता है, जिसके खौफ में वे अपने कार्य को अंजाम देते हैं।

भूमंडलीकरण के इस दौर में हिन्दी अखबारों के आंतरिक संरचना में आमूल बदलाव आया है। यह परिवर्त्तन बाजार के हावी होने के साथ-साथ उच्च प्रौद्योगिकी को अपनाये जाने के कारण भी हुआ है। उच्च प्रौद्योगिकी के कारण उत्पन्न संचार और सूचना क्रांति ने संचार माध्यमों के विस्तार को संभव बनाया है। "वैश्वीकरण और सूचना माध्यमों के बीच रिश्तों को समझना है, लेकिन जहाँ संचार माध्यमों से वैश्वीकरण की दिशा और गति तय होती है, वहीं वैश्वीकरण स्वयं संचार माध्यमों को लगातार बदलता रहता है।"[12]

हिन्दी इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता के अन्तर्गत भी रेडियो पत्रकारिता और टेलिविजन पत्रकारिता के प्रबंधन तंत्र, संपादक मंडल, रिपोर्टिंग आदि में निरन्तर बदलाव हो रहा हैं रेडियो और टेलिविजन के सूचना सम्पर्क माध्यमों आधुनिक एडिटिंग सॉफ्टवेयर, ध्वनि मिक्सिंग सॉफ्टवेयर, इंटरनेट मोबाइल आदि महत्वपूर्ण भूमिका में नजर आते हैं। रेडियो और टेलिविजन दोनों के ही इंटरनेट संस्करण वेब पर प्रसारित होने लगे हैं। इंटरनेट पत्रकारिता और मोबाइल पत्रकारिता भूमंडलीकरण प्रक्रिया का उभरता हुआ भविष्य है जो बहुत तेजी से दुनिया में अपनी पकड़ बनाते जा रहे हैं। खास तौर पर इंटरनेट पत्रकारिता। आज इंटरनेट पर लगभग सभी समाचर पत्र,

पत्रिकाओं, न्यूज चैनलों आदि के वेब संस्करण मौजूद हैं।

इसके साथ ही भूमंडलीकरण प्रक्रिया के फलस्वरूप हिन्दी पत्रकारिता में कुछ परिवर्त्तन भी देखे जा रहे हैं। इस दौर में मीडिया संस्थानों का व्यवसायीकरण होता जा रहा है, जिसमें बाजार और पूँजी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। नई-नई तकनीक, उकरणों ने मीडिया संस्थानों का आधुनिकीकरण किया है। आज संपादकीय विभाग से लेकर समाचार पत्र के छपने तक अत्याधुनिक उपकरणें का समागम है। चूँकि भूमंडलीकरण का सबसे सशक्त हथियार सूचना प्रौद्योगिकी है जिसने विश्व को विश्वग्राम में परिवर्तित कर दिया है। इसी प्रौद्योगिकी का चमत्कार है कि हम घर बैठे विश्व दर्शन कर सकते हैं। हिन्दी पत्रकारिता में भी सूचना प्रौद्योगिकी के कारण लाखों कम्प्यूटर, फोन, फैक्स मशीने, प्रिन्टर, फोटो ऑफसेट मशीनें, इंटरनेट आदि का आगमन हो गया है। सूचना प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप नई-नई तकनीक हिन्दी समाचारपत्र, पत्रिकाओं को नये आयाम से जोड़ रही है।

भूमंडलीकरण तथा उपभोक्तावाद के दबाव ने समूचे विश्व को प्रभावित किया है। हिन्दी पत्रकारिता में देहवाद भूमंडलीकरण का ज्वलंत मुद्दा है। हिन्दी पत्रकारिता में स्त्री की देह को खूब भुनाया जाने लगा है। हिन्दी दैनिकों, टेलिविजन, फिल्मों और पत्रिकाओं में सौन्दर्य, फैशन व अश्लील तस्वीरों का प्रचलन बढ़ रहा है। दरअसल समाचर पत्र, चैनल प्रसार संख्या बढ़ाने के लिए स्त्री देह को मार्केटिंग की तरह प्रस्तुत करने लगा है। इसीलिए वह इस तरह की सामग्री अधिकाधिक प्रकाशित और प्रसारित करने लगे हैं। देह-व्यापार, बलात्कार, खरीद फरोख्त और यौन उत्पीड़न जैसी खबरें सनसनीखेज तरीके से प्रस्तुत की जाने लगी हैं, जो हिन्दी पत्रकारिता की पहचान पर भी कहीं न कहीं प्रश्नचिन्ह लगा रहें हैं।

भूमंडलीकरण तथा उपभोक्तावाद के दबाव ने समूचे विश्व को प्रभावित किया है। हिन्दी पत्रकारिता में देहवाद भूमंडलीकरण का ज्वलंत मुद्दा है। हिन्दी पत्रकारिता में स्त्री की देह को खूब भुनाया जाने लगा है। हिन्दी दैनिकों, टेलिविजन, फिल्मों और पत्रिकाओं में सौन्दर्य, फैशन व अश्लील तस्वीरों का प्रचलन बढ़ रहा है। दरअसल समाचर पत्र, चैनल प्रसार संख्या बढ़ाने के लिए स्त्री देह को मार्केटिंग की तरह प्रस्तुत करने लगा है। इसीलिए वह इस तरह की सामग्री अधिकाधिक प्रकाशित और प्रसारित करने लगे हैं।

भूमंडलीकरण आर्थिक और भौतिक प्रक्रिया है जो विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के माध्यम से चलाई जाती है। जिसमें मानवीय हितों का स्थान गौण होता है, इसी कारण हिन्दी पत्रकारिता में एफ.डी.आई. का निवेश बढ़ा है। भूमंडलीकरण के दौर में निश्चित रूप से हिन्दी पत्रकारिता प्रोफेशन के रूप में उभरा है। अब पत्रकारिता संस्थान मीडिया हाउस बन गये हैं जो वहाँ करोड़ों और अरबों का कारोबार करते हैं। इसी कारण मीडिया ने पत्रकारिता को एक व्यवसाय के रूप में स्वीकार कर लिया है। मीडिया के समाचारपत्र, पत्रिकाएँ, समाचार चैनल आदि सभी उपभोक्तावादी संस्कृति को बढ़ावा दे रहे हैं और रात दिन दौड़ने वाले विज्ञापन इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यहाँ विज्ञापन या उपभोक्तावादी संस्कृति मीडिया का हिस्सा बनती जा रही है।

हिन्दी पत्रकारिता में विज्ञापन का प्रभुत्व निरन्तर बढ़ने लगा है। पिछले दो दशकों में हिन्दी पत्रकारिता के फैलाव और प्रसार में वृद्धि के पीछे विज्ञापन ही रहे हैं। जैसे-जैसे समाचारपत्रों में व्यावसायिकता का प्रभाव बढ़ा है, विज्ञापनों की महत्ता में भी वृद्धि होती गई है। "पत्रकारिता के विकास के साथ विज्ञापन का विकास साथ-साथ होता चला है, जिसमें दोनों के परस्पर संबंधों का स्वरूप बदलता रहा है। पत्रकारिता की भूमिका बदली तो विज्ञापन भी पीछे नहीं रहा। यदि यह कहा जाए कि पत्रकारिता की भूमिका बदलने में विज्ञापनों की बड़ी भूमिका रही तो अतिश्योक्ति न होगी।"[13]

भूमंडलीकरण प्रक्रिया के परिणामस्वरूप हिन्दी पत्रकारिता का स्वरूप भी निरन्तर परिवर्तित हो रहा है। इस प्रक्रिया के कारण हिन्दी पत्रकारिता में ग्लोबल और लोकल प्रवृत्तियाँ एक

साथ देखने को मिलती है। भविष्य में हिन्दी प्रिन्ट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक और मल्टीमीडिया नई-नई भूमिका में नजर आयेंगे। हिन्दी पत्रकारिता की अंतराष्ट्रीय पहचान हिन्दी मीडिया के रूप में हो रही है। नई-नई तकनीक विकसित हो रही है, इंटरनेट का प्रभाव क्षेत्र बढ़ रहा है जिसके फलस्वरूप हिन्दी प्रिन्ट पत्रकारिता, इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता, मल्टीमीडिया सभी वेब पर स्थापित हो रहे हैं। आज अधिकतर सभी समाचार पत्र, पत्रिकाओं के इंटरनेट संस्करण वेब पर मौजूद हैं, जहाँ पाठक एक क्लिक के द्वारा सीधे-सीधे खबरों से जुड़ रहे हैं और अपनी प्रतिक्रिया भी दे रहे हैं। इसी क्रम में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी वेब पर सक्रिय है जिससे दूर-दराज के देशों में बैठे लोग इंटरनेट के द्वारा हिन्दी पत्रकारिता से जुड़ सके।

अतः कहा जा सकता है कि भूमंडलीकरण का हिन्दी पत्रकारिता पर पड़नेवाला प्रभाव बहुआयामी रहा है। इस प्रभाव को निम्न रूपों में देखा जा सकता है—भूमंडलीकरण और हिन्दी पत्रकारिता—भूमंडलीकरण की प्रक्रिया द्वारा मीडिया के माध्यम से जीवन के परम्परागत क्षेत्रों, आस्थाओं तथा मूल्यों में गहराई तक हस्तक्षेप हुआ है। भूमंडलीकरण वस्तुतः एक तरफ तो पुराने मूल्यों के प्रति विध्वंसात्मक रवैया अपनाता है, वहीं दूसरी तरफ नये मूल्यों की स्थापना को लेकर भी इसका प्रभाव अति तीव्र गति वाला प्रतीत होता है। इसने पत्रकारिता के हर माध्यम के द्वारा नैतिकता और मूल्यों को तहस-नहस किया है। विवाहेत्तर संबंधों, दुराचार, बलात्कार आदि पर आधारित खबरों और धारावाहिकों को समस्त परिवार एक साथ बैठकर देखता है और उन पर चर्चा करता है। भारतीय महानगरीय समाज इन विषयों पर नैतिकता के मापदण्डों को रखने के बजाए इन्हें आधुनिक समाज की दिशा में कदम के रूप में स्वीकार करता है।

भूमंडलीकरण के फलस्वरूप पत्रकारिता में प्रतिवाद, प्रतिरोध और बदलाव के मूल्यों के स्थान पर बाजार, वस्तु और उपभोग के मूल्य हावी हो गये हैं। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्विकरण के प्रभाव ने एक तरफ तो हिन्दी पत्रकारिता को अंग्रेजी पत्रकारिता के समक्ष नये आत्मविश्वास से भरा है, वहीं दूसरी तरफ इन्होंने हिन्दी पत्रकारिता को वर्त्तमान में एक उद्योग बना दिया है।

अंत में, उपर्युक्त समस्त विश्लेषणों के उपरान्त यह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है कि वैश्वीकरण ने हिन्दी पत्रकारिता के स्वरूप, भाषा, प्रसार, विषयवस्तु इत्यादि अनेक पक्षों को अंदर तक प्रभावित किया है। इन प्रभावों ने हिन्दी पत्रकारिता के समक्ष भावनाओं एवं चुनौतियों के नये द्वार प्रस्तुत किये हैं। वर्त्तमान समय में आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दी पत्रकारिता को वैश्वीकरण के लाभों से वंचित न करते हुए उसके दुष्प्रभावों से कैसे बचाया जाए उस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। मीडिया में आर्थिक सामा्रज्यवाद का साधन बनने की जो प्रवृत्ति घर कर गई है उस पर तत्काल रोक लगाते हुए मीडिया को उसके नैतिक कर्त्तव्य पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चतुर्वेदी, जगदीश्वर, सिंह, सुधा, 'भूमंडलीकरण और ग्लोबल मीडिया', अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली, संस्करण - 2008, पृ.सं. - 240
2. शर्मा, रामविलास, 'भारतेन्दु-युग और हिन्दी भाषा का विकास-परम्परा', राजपाल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2006, पृ.सं. - 37
3. कुमार, बिजेन्द्र, 'हिन्दी पत्रकारिता और भूमंडलीकरण', श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ.सं. - 58
4. शर्मा, क्षमा, 'पत्रकारिता और साहित्य', श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2000, पृ.सं. - 21
5. वही, पृ.सं. - 47
6. जैन, रमेश, 'हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास', बोहरा प्रकाशन, संस्करण 1987, पृ.सं. - 51
7. संपादक - भारती, जयप्रकाश, 'हिन्दी पत्रकारिता - दशा और दिशा', संस्करण 1994, पृ.सं. - 66
8. कुमार, बिजेन्द्र, 'हिन्दी पत्रकारिता और भूमंडलीकरण', श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ.सं. - 64
9. वही, पृ.सं. - 107
10. वही, पृ.सं. - 109
11. जेशी, रामशरण, 'मीडिया: मिशन से बाजारीकरण तक', वाग्देवी प्रकाशन, गाजियाबाद, पहला संस्करण 2008, पृ.सं. - 36
12. कौल, जवाहरलाल, 'हिन्दी पत्रकारिता का बाजार भाव', प्रभात प्रकाशन, संस्करण 2000, पृ.सं. - 61
13. कुमार, बिजेन्द्र, 'हिन्दी पत्रकारिता और भूमंडलीकरण', श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007, पृ.सं. - 118

———•••———

शोधार्थी, राँची विश्वविद्यालय, राँची (झारखण्ड)
मे. नं. 9861738250

काव्य में अध्यात्म-तत्व का निरूपण

— राकेश भारतीय

कविता में आध्यात्मिक महत्व की गूढ़ बातों को काव्य-कौशल के साथ सामान्य पाठक के स्तर तक लाकर सहज भाषा में निरूपित कर पाना साहित्य का परम पुरुषार्थ है। इसके लिए दो चीज़ें आवश्यक हैं – पहली, कवि आध्यात्मिक रूप से उन्नत हो और, दूसरी, ऊँचे दर्जे की काव्यक्षमता भी उसके पास हो जिससे आध्यात्मिक अनुभूति के गूढ़ पक्षों को वह काव्य में कुशलता से उद्घाटित कर सके। मध्यकाल के राजनीतिक और सामाजिक रूप से बेहद निराशाजनक परिदृश्य में भारतवर्ष में कुछ संत-कवियों ने साहित्य में यह परम पुरुषार्थ सम्भव कर दिखाया। उनकी उत्कृष्ट और आध्यामिक रूप से बेहद महत्वपूर्ण कविताओं को आज इक्कीसवीं सदी के घनघोर भौतिकवादी युग में भी लाखों व्यक्ति खोज-खोजकर पढ़ते हैं, उनमें निहित आध्यात्मिक महत्व की गूढ़ बातों पर मनन कर उस 'तत्त्व' को तमाम तरह की मुसीबतों के बीच एक मार्गदर्शक प्रकाश-स्तंभ की तरह देखते हैं।

उपनिषद हमारी आध्यात्मिक थाती में ज्ञानमार्ग के निरूपण के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण तो हैं ही, श्रेष्ठ कविता के भी एक से बढ़कर एक उदाहरण वहाँ देखे जा सकते हैं। आकार में छोटा पर अध्यात्म-तत्त्व के निरूपण में अप्रतिम 'ईशावास्योपनिषद' तो अद्भुत रूप से गेय कविता में अपना सानी नहीं रखता, ऐसी कविता जो अध्यात्म-तत्त्व का सहज ही निरूपण करती जाती है, जैसे –

"यस्तुसर्वाणिभूतानि आत्मन्येवानुपश्यति सर्वभूतेषु चात्मानंततो न विजुगुप्सते।"

(जो सभी जीवों को आत्मन् (ब्रह्म) में देखता है और सभी जीवों में आत्मन् (ब्रह्म) देखता है वह इस बोध के कारण जुगुप्सा (घृणा) का अनुभव नहीं करता (घृणा से परे हो जाता) है।) परंतु उपनिषदों तक सामान्य जन (विशेषकर संस्कृत भाषा से अपरिचित) की पहुँच नहीं थी और फलस्वरूप उनके माध्यम से अध्यात्म-तत्व ग्रहण कर पाना मात्र विद्वानों के लिए सम्भव हो पाया। 'महाभारत' के ही एक भाग पर अपने अद्भुत आध्यात्मिक एवम् व्यावहारिक संदेश के लिए अलग से ही प्रसिद्ध और समादृत 'भगवद्गीता' ने अवश्य उपनिषदों में निहित 'अध्यात्म-तत्त्व' को सहज ग्राह्य बनाने का पहला महत्त्वपूर्ण प्रयास किया और तदनुसार उसकी महत्ता आजतक निर्विवाद है। फिर भी, सामान्य जन की बोलचालवाली भाषा-बोली, जो एक निरक्षर व्यक्ति भी सुनकर समझ ले, में अध्यात्म-तत्व के गूढ़ार्थ कविता के माध्यम से निरूपित करने का कार्य बाकी था और यह कार्य मध्यकाल के संत-कवियों ने किया। पहुँचे हुए संत और कवि, इस अतिदुर्लभ संयोग के उदाहरण कबीर, रैदास, दादूदयाल, नानक जैसी विभूतियाँ है, इसीलिए, आजतक हमारी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक ही नहीं साहित्यिक थाती के भी बेहद महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। और, एक और बेहद महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इतना महत्त्वपूर्ण काम उन संत-कवियों ने अपने सामान्य कामकाजी जीवन की व्यावहारिक जिम्मेदारियों निभाते हुए किया।

अध्यात्म के पथ पर सारी दुनियावी सीमाओं और कमियों से ऊपर उठना पड़ता है और यह अपनी सामान्य व्यावहारिक जिम्मेदारियाँ उठाने के साथ भी सम्भव है, यह संत-कवियों ने अपने दृष्टान्त से जनसामान्य को भलीभाँति दिखा दिया। कोई संत-कवि इसे मृदु ढंग से बताता चला तो कोई कठोर या लट्ठमार शब्दावली में, पर संदेश यही था कि भेदभाव, ऊँच-नीच, ईर्ष्या-घृणा जैसी कमज़ोरियों से ऊपर उठो तभी अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानते हुए परमसत्ता (ब्रह्म) और अपने बीच के अद्वैत भाव की अनुभूति कर सकोगे, आदमी-आदमी के बीच दुनियावी प्रपंचजनित भेदभाव की मानसिक बेड़ियाँ तोड़कर। अद्वैत भाव के उपनिषद के संदेश को कबीर किस सहजग्राह्य पर बेहद सटीक शब्दावली में समझाते चलते हैं –

"हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ
बूँद समानी समंद में, सो कत हेरी जाइ।"

इसी अद्वैत भाव की अनुभूति को दादूदयाल भी क्या खूब परिभाषित करते हैं, ब्रह्म को सहजग्राह्य राम के नाम से सम्बोधित करते हुए –

"जहाँ राम तहँ मैं नहीं, मैं तहँ नाहीं राम
दादू महल बारीक है, द्वैकों नाहीं ठाम।"

जात-पाँत, हिन्दू-मुसलमान जैसी दुनियावी सीमाएँ ही 'माया' का निर्माण करती हैं जो अध्यात्म-तत्व की अनुभूति में बाधा हैं। दादूदयाल के शब्दों में –

"दादू जेहि घर ब्रह्म न प्रगटै,
तहँ माया मंगल गाइ
दादू जागे जोति जब,
तब माया भरम बिलाइ।"

यही 'जोति' यानी ब्रह्मज्ञान या 'हरि' के प्रचलित नाम से जानी गई परमसत्ता से एकत्व को कबीर किस सहज ढंग से सारे अज्ञान (अँधियारे) का नाश बताते हैं –

"जब मैं था तब हरि नहीं,
अब हरि हैं मैं नाहिं,
सब अँधियारा मिटि गया,
जब दीपक देख्या माहिं।"

पर अध्यात्म के पथ पर चलकर आत्मसाक्षात्कार यानी अपने असली स्वरूप का भान हो जाना कोई चुटकी भरने से तो हो नहीं जाता; ढेर सारा भ्रमजाल हटाना पड़ता है, अज्ञान का बोझ उतारना पड़ता है, परम अनुशासन से चलकर तमाम तरह के प्रलोभनों इत्यादि को परे झटकना पड़ता है। संत-कवि सहज बोधगम्य प्रतीकों के माध्यम से सामान्य शब्दावली में ये सब बड़े धैर्य से समझाते हैं –

सबसे पहले तो यह समझना होता है कि अध्यात्म का पथ मंज़िल तक पहुँचाने के लिए मन का अनुशासन माँगता है, सिर्फ़ तन के अनुशासन से काम नहीं चलता –

"तन कौं जोगी सब करै,
मन कौं बिरला कोइ
सब सिधि सहजे पाइए,
जे मन जोगी होइ।। (कबीर)

'मुक्ति' यानी परमतत्त्व (ब्रह्म) की अनुभूति बहुत कुछ मायाजनित भ्रमजाल मारकर (तोड़कर-छोड़कर) ही मिलेगी, जैसा गोरखनाथ कहते हैं –

"मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरख मरि दीठा।"

(मरणी–जीवन्मुक्ति, दीठा–देखा, आत्म-साक्षात्कार किया)

मायाजनित भ्रमजाल का बहुत मुश्किल से कट पानेवाला पक्ष है मनुष्य का वाह्य-प्रतीकों में ही उलझकर परमसत्य तक पहुँच ही न पाना। कबीर इस कोटि के भ्रमजाल को लेकर बेहद लट्ठमार ढंग से बात समझाते चलते हैं तो अन्य संत-कवि भी उसी बात को अपने तरीके से किंचित मुलायम लहज़े में समझाते हैं। पहले कबीर को ही लें –

"मूँड़ मुड़ाये हरि मिले,
सब कोहि लेहि मुड़ाय
बार बार के मूँड़ते,
भेड़ न बैकुण्ठ जाय।"

"कांकर पाथर जोरि के,
मसजिद लई चुनाय
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे,
क्या बहिरा हुआ खुदाय।"

'परमपद' यानी अध्यात्म-पथ की मंज़िल में तो कोई हिन्दू-मुसलमान, मंदिर-मस्जिद का भेद या भ्रम है नहीं, गोरखनाथ कितने सहज ढंग से समझाते हैं –

"हिन्दू ध्यावै देहुरा मूसलमान मसीत
जोगी ध्यावै परमपद जहाँ देहुरा न मसीत।"

(देहुरा – देवालय, मसीत – मस्जिद)

दरअसल, आध्यात्मिक यात्रा बाहर से अंदर की यात्रा है, अपने ही अंदर बैठे हुए ब्रह्म को जान पाने की यात्रा। उपनिषद में कहते ही हैं –

"अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य
आत्मनि तिष्ठति" (कठोपनिषद)

(यह अँगूठे बराबर (जगह में) परमपुरुष यानी ब्रह्म जीवात्मा के मध्य ही स्थित है।)

कई संतकवियों ने अध्यात्म के इस मूल सूत्र को बड़ी अच्छी काव्यात्मक अभिव्यक्ति दी है, जैसे गुरु तेगबहादुर ने –

"काहे रे बन खोजन जाई
सर्ब निवासी सदाअलेपा
तोहे संग समाई।"

रैदास तो सबसे ऊपर उस 'राम' को रखते हैं जो अपने अंदर ही व्याप्त हैं, दशरथ के बेटे राम नहीं –

"रैदास हमारो रामजी
दशरथ करि सुत नाहिं
राम हमउ महिं रमि रह्यो,
बिसब कुटुंबह माहिं।"

अध्यात्म के पथ पर जहाँ ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, लालच जैसे अवगुणों को छोड़ना पड़ता है वहीं इस पथ के यात्री के पास परोपकार, परदुःखकातरता, दया जैसे गुणों का होना आवश्यक है। संतकवि इसे बड़े अच्छे ढंग से अपनी कविताओं में समझाते हैं –

"मलुका सोई पीर है जो जाने पर-पीर
जो पर-पीर न जानहीं सो काफ़िर-बेपीर।"

(मलूकदास)

"दया धर्म हिरदै बसै, बोलें अमरत बैन
तेई ऊँचे जानिए, जिनके नीचे नैन।"

(मलूकदास)

"विषय-अलंपट सील-गुनाकर
पर दुख दुख, सुख सुख देखें पर
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी;
लोभा मरष हरष भय त्यागी।

(तुलसीदास)

"दरिया लच्छन साधु का,
क्या गिरही क्या भेख;
निष्कपटी निरपच्छ रहि,
बाहर-भीतर एक।"

(दरियासाहब)

(गिरही – गृहस्थ, भेख – भेषधारी साधु)

'बाहर-भीतर एक' पढ़ने-सुनने में जितना आसान लगता है, कर पाना बहुत ही मुश्किल है। जिसका मन 'बाहर-भीतर एक' यानी किसी भी प्रकार के दोगलेपन से अछूता यानी 'निर्मल' है उसके पीछे तो, कबीर के अनुसार, स्वयम् भगवान ही चलने लगते हैं –

"कबीर मन निर्मल भया जैसे गंगा-नीर
पाछे-पाछे हरि फिरैं, कहत कबीर-कबीर।"

संत-कवियों ने अध्यात्म-तत्त्व का निरूपण सुन-सुनाकर नहीं किया, वे पहुँचे हुए संत थे और तत्त्वानुभूति के चरम पर पहुँचने के बाद उन्होंने उस अनुभूति की यथासम्भव झलक भी दी है –

"पार ब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान
कहिबै कौं सोभा नहिं, देखे ही परमान।"

(कबीर)

"झल उठी झोली जली, खपरा फूटम फूटि
जोगी था सो रमि गया, आसनि रही विभूति।"

(कबीर)

(झल – ज्वाला (ज्ञान-विरह की अग्नि), झोली – संचित कर्म, खपरा (खप्पड़)— क्रियमाण कर्म, रमि गया – ब्रह्मलीन हो गया, विभूति – राख)

"पिंजर प्रेम प्रकासिया, जागी जोति अनंत
संसा खूटा सुख भया, मिला पियारा कंत।"

(कबीर)

(पिंजर – शरीर (अन्तर्मन), संसा – संशय, खूटा – नष्ट हुआ, कंत – परमतत्व)

"झरि लागी महलवा, गगन घहराय
खन गरजै, खन बिजुरी चमकै,
लहर उठे, सोभा बरनि न जाय।
सुन्न-महल में अमृत बरसै,
प्रेम अनंद में साध नहाय।।"

(धरमदास)

इक्कीसवीं सदी के प्रौद्योगिकी के नित नये नमूनों पर सवार होकर सबकुछ एक क्लिक पर ही पा लेने की आदत पालते जा रहे, विशेषकर नई पीढ़ी के, लोगों को यह भी समझना होगा कि अध्यात्म-तत्त्व का संधान वैसे 'शॉर्टकट' वाला पुरुषार्थ है ही नहीं, इसमें तो लौकिक बाधाओं से निपटते और पार पाते हुए लम्बा मार्ग तय करना होता है –

"लम्बा मारग दूरि घर विकट पंथ बहु मार
कहौ संतों क्यों पाइये दुर्लभ हरि दीदार।"

(कबीर)

(मार – बटमार, डाकू (लौकिक बाधाएँ))

और, अध्यात्म-तत्त्व के निरूपण में अब भी अपना सानी न रखने वाली संत-कवियों की कविताएँ भोग-विलास के मवाद से ऊब कर या सहज ही प्रवृत्त हुए, तत्व-संधान के दोनों किस्म के आकांक्षियों के लिए समान रूप से इक्कीसवीं सदी में भी उतनी ही प्रासंगिक हैं जितनी वे मध्यकाल में थीं।

———•••———

स्वतंत्र स्तंभकार

चीन में योग के प्रसारक सोहन सिंह

— सुरेन्द्र अग्निहोत्री

मानवता को सनातन की अनुपम धरोहर योग को हिमालय की चोटी पर 75 योगासन करके कीर्तिमान स्थापित करने की चाह में राह पर निकल चुके सोहन सिंह चीन में पिछले 20 वर्षों से सोहन योगा के माध्यम से योग के चिरंतन रंग और आसन से चीन के युवाओं को परिचित करा रहे है। मानव जाति और मानव सभ्यता के इतिहास में अब तक कोई भी ऐसा प्रयास नहीं किया गया है। हिमालय रीजन में माउट एवरेस्ट विश्व की सबसे ऊँची चोटी (8 हजार 848 मीटर) है उस पर किसी ने योग का प्रयास नहीं किया है। लक्ष्य योग करके योग की वैज्ञानिकता को सामने लाना है। योग प्रतिकूल वातावरण में मानव शरीर को इस लायक बनाता है कि वो अनसर्वाइवल कंडीशन में सर्वाइव कर सकता है। योग, ध्यान, अध्यात्म और दर्शन की भारतीय परंपरा के वाहक सोहन सिंह चीन ही नही अपितु दुनिया भर के लोगों को योग सिखाकर उन्हें जीवन में सुगम, शान्त और अध्यात्म जीवन जीने का अनुभव का अहसास कराने के लक्ष्य के लिए कठिन राह के बाद मंजिल पर पहुचें है। उ.प्र. के ललितपुर जनपद के विरधा ब्लाक के बारखेड़ा गांव से निकल कर जमीन के यथार्थ मूल्य से जुड़े रह कर कमाल का काम कर रहे है। सोहन कहते है कि मेरे जैसे हजारों लाखों करोड़ों बच्चे गाँव में है जिनके पास एक चड्डी होती है जैसी मेरे पास हुआ करती थी, बुन्देली में मेरा एक दोहा है—

योग, ध्यान, अध्यात्म और दर्शन की भारतीय परंपरा के वाहक सोहन सिंह चीन ही नही अपितु दुनिया भर के लोगों को योग सिखाकर उन्हें जीवन में सुगम, शान्त और अध्यात्म जीवन जीने का अनुभव का अहसास कराने के लक्ष्य के लिए कठिन राह के बाद मंजिल पर पहुचें है। उ.प्र. के ललितपुर जनपद के विरधा ब्लाक के बारखेड़ा गांव से निकल कर जमीन के यथार्थ मूल्य से जुड़े रह कर कमाल का काम कर रहे है।

हर चकमक में आग है बार सके तो बार,
सुर सरगम लिपटाये है तार तार में सार।

संभावना सभी के अन्दर बराबर है बस जगाने की बात है योग बस यही चकमक की आग है। सोहन सिंह की बचपन में अच्छी स्थिति नहीं थी एक दिन में दो बार भोजन मिल जाये तो हमारे लिए सब से खुशी की बात होती थी। तब ज्यादा बड़े सपने तो नहीं थे । थोड़ी बहुत पढ़ाई-लिखाई कोई काम मिल जाये या नौकरी मिल जाये ताकि परिवार का ठीक ठाक भरण पोषण हो जाये। मुट्ठी भर सुख की तलाश में भारतीय संस्कार और भारतीय संस्कृति की छाप परिवार के माध्यम से मिलने के कारण मेरे मन पर बहुत गहरी रही है। गरीब तो थे, आर्थिक रूप से गरीब थे लेकिन बौद्धिक रूप से खिलना और महकना,जीवन में अर्थ की तलाश की ओर अग्रसर हुए। माँ योग किया करती थी घर में उन्होनें उन्हें योग की ऊर्जा से बचपन में परिचित कराया। इस ऊर्जा ने भारतीय सनातन, भारतीय योग को हृदय में सही मायने में उतारा, फिर स्वाध्याय किया जिससे चेतना जगी और अपने शास्त्रों में उपनिषद को पढ़ा, योग शास्त्रों को खोजा और जाना। योग की प्रखर ज्योति की ज्वाला को और कैसे प्रखर किया जा सके इस दिशा में निरंतर प्रयास, साधना, मनन, चिंतन तथा अध्ययन ने रुपांतरण किया। जीवन जीने के लिए महत्वपूर्ण रोटी, कपडा, मकान की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु नौकरी के लिए स्वदेश से विदेशी धरती पर पलायन (23-24 साल पहले) किया। पारिवारिक स्थिति दयनीय थी इसलिए आईटी का जो जॉब मिला उसके बाद योग की कक्षा लेना लक्ष्य बनाया। शाम को 5 बजे जॉब खत्म होती तथा उसके बाद शाम में सात, साढ़े सात से साढ़े आठ बजे तक कही न कही हफ्ते में तीन या चार दिन योग कक्षा लेने लगे। धीरे धीरे योग का प्रभाव गहराता गया और 2013 में विश्वविद्यालय में जब मैं प्रोफेसर था उस दौरान भीतर से ऐसा अनुभव ऊपर की तरफ आया कि योग में उतर जाने का मन है । विश्वविद्यालय से प्रोफेसर पद से इस्तीफा देकर सोहन इंटरनेशनल की स्थापना चीन में की, तब से योग ही मेरी इबादत है यही रोजगार है। चीन के इतिहास में कभी कोई योगा टीचर ने टी.वी. पर जाकर टी.वी. स्टार के रूप में योगा नहीं कराया हैं। पहली बार एक भारतीय ने टी.वी. योग स्टार बनकर योग कराया और इस कार्यक्रम में 70 करोड़ लोगों ने हूनान टी.वी. से जुड़कर योग को देखा है। सोहन को 9-10 भाषाएं आती है ।

सोहन योग का मुख्यालय फुजियन प्रांत के जियामिन द्वीप में है, जो दक्षिण चीन में स्थित है। आज चीन मे, भारतीय योग संपदा और भारतीय ध्वज को ऊँचा रखे हुए है। वह कहते है कि हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ही पहचान है यहीं मेरा राष्ट्रधर्म, गुणधर्म का अहम हिस्सा है यह ऐसा अंग है जिसके बिना सब छिन्न-भिन्न लगता है। चीन के समाज में हर अच्छी चीज ग्रहण करने की चाहत के कारण योग को सहज स्वीकार हो रहा है।चीन के जियामिन, शेनझेन, गुइयांग, नानचांग, लोंग येन आदि शहरों में 9 योग सेंटर चल रहे हैं। पिछले चार सालों में चीन के 178 शहरों में योग के कार्यक्रम कर चुका हूं। निरोग होने के लिए चीनी समाज योग रूचि के साथ कर रहा है। योग कोई कथा कहानी नहीं है योग विज्ञान है अद्भुत विज्ञान जैसा हमारे बुजुर्गों ने हमें दिया है। यह अनुभव पर आधारित विद्या है। 2017 में माननीय पी.एम. मोदी जी ब्रिक्स की मीटिंग में मेरे शहर ज़ियामेन में आये थे। जियान मेरे शहर का नाम है। माननीय प्रधानमंत्री जी को अपने शहर में देखकर ऊर्जा का नया आभास हुआ उसके बाद सोहन योग ने ब्रिक्स के अलग-अलग फोरम

पर योग का प्रतिनिधित्व किया साथ ही पीपुल एक्सचेंज फोरम, चाइनीज इण्डिया डायलॉग फोरम आदि सभी जगह मेरी कोशिश रही है योग के माध्यम से ऐसे प्लेटफार्म तैयार हो कि लोग भारतीय योग संपदा भारतीय संस्कृति और हमारी जो सोफ्ट पावर है उसे अच्छे से समझ सके।

योग के सम्बन्ध में ढेरों परिभाषाऐं टीका टिप्पणी मिल जाती है। मेरे लिए योग का परम लक्ष्य है किसी व्यक्ति का आंतरिक रूपांतरण अर्थात शरीर और मन दोनें एक हो जाये ऐसी स्थिति में आचार विचार और संचार तीनों का एकीकरण हो जाता है। फिर एक ऐसे मनुष्य की कल्पना संभव होती है जहां हर चीज वैसी ही होती है जैसी प्राकृतिक तरीके से होना चाहिए। योग के माध्यम से शरीर स्वस्थ मन स्वस्थ होता है। योग के माध्यम से एक स्वस्थ परिवार के साथ स्वस्थ समाज के निर्माण की संभावना तथा स्वस्थ शरीर स्वस्थ चित निर्माण के साथ एक अच्छे राष्ट्र के निर्माण की परिकल्पना मेरे लिए योग का लक्ष्य है। यूरोप में जर्मनी आस्ट्रेलिया में बहुत सारे लोग यह पूछते है कि भारत सदा से अध्यात्म का केंद्र रहा है, अगर अध्यात्म को पढ़ना है जानना है तो किसे पढ़ा जाये? गूगल पर देखते है तो इतना कुछ निकल कर आता है सामने की समझ में नहीं आता है कहाँ से शुरू करूँ? तो फिर मै उनको बताता हूँ सनातन संस्कृति समझने के लिए शंकराचार्य से आप शुरू करें। द्वैत-अद्वैत के साथ आगे बढ़े फिर स्वामी विवेकानन्द को समझे,स्वामी रामकृष्ण परमहंस को उनके गुरू तोता पुरी को। ईश्वरीय धारण के परे भगवत्ता को जानना है भारतीय अध्यात्मिकता की आत्मा हमारे उपनिषदों को पढ़ें किसी भी उपनिषद को उठा लें मांडूक्य उपनिषद को । एक सूत्र समझ में आ जाये तो जीवन की चेतना समझ में आ जाती है। योग के माध्यम से आगे बड़ने का पथ पतंजलि के बारे में बताता हूँ एक-एक सूत्र एक-एक महाग्रंथ की रचना है। 9वां सूत्र शब्द ज्ञानानुपाति वस्तु शून्यो विकल्प। एक-एक सूत्र में जैसे एक एक सिन्धु समाया है। फिर मैं लोगों को भारतीय अध्यात्म समाज की उस परम्परा जहां रस बरसा है वहां कबीर है दादू है रैदास है नानक है—*नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात"*।

यही तो मेरी कोशिश है विदेश में रहते हुए योग से इतने लोगों को लाभप्रद किया है तो अपने लोगों बच्चों, और अपनी मिट्टी के प्रति भी मेरा सर्मपरण और जिम्मेदारी है। मेरा सभी से अनुरोध है खासकर युवाओं से कि योग से जुड़िये योग में वजन नही उठाना पड़ता योग वजन उठाना नही सिखाता है बल्कि योग खुद के शरीर को उठाना सिखाता है। मन को उठाना सिखाता है।

संस्कृत हमारी बोल चाल की भाषा थी लेकिन आज कर्मकांड की भाषा बन कर रह गयी है। हम उसे युवा से नही जोड़ पाये। भारतीय योग युवाओ के लिए बहुत कारगर है। आज हमारा युवा लुम्बा सुम्बा और जिम करने में लगा है। उसे भारतीय योग की तरफ लेकर आना मेरा लक्ष्य है। योग की वैज्ञानिकता मुझे सामर्थ देती है। जब मैं उसके सामने योग को विस्तार से रखूँगा और वह जुड़ेगा तब एक अद्भुत ट्रांसमीशन हो सकेगा। माँ से बचपन से योग सीखने के बाद सागर विश्व विद्यालय से पीजीडीसीए योगा तथा योगा में मास्टर डिग्री प्राप्त की। शाकाहारी जीवन शैली तथा आयुर्वेद से विदेशी लोगों को भारतीय योग से जोड़ता हूँ। मेरे जो फैन फॉलोइंग है जहाँ भी कार्यक्रम होता मेरी कोशिश होती भोजन का जो इंतेजाम हो शाकाहारी हो, शाकाहारी भोजन के विचार को विदेशी लोगों के सामने निरंतर रखता हूँ और एक हद तक हमें सफलता भी मिली है। लोगों ने जाना है शाकाहार हमारे शरीर के लिए कितना जरूरी है क्योंकि तामसी भोजन करेंगे तो तामसी गुण आते जायेगें सात्विक भोजन करेंगे तो सात्विक गुण आते चले जायेंगे इस बात हम को लोगों के सामने रखते है।

———•••———

लेखक तथा स्तंभकार

उज्बेकिस्तान और भारत : साहित्यिक सांस्कृतिक संबंधों का फलक

— डॉ. मनीष कुमार मिश्रा

हिमालय की ऊंची ऊंची चोटियों को पार करते हुए मध्य एशिया और भारत के बीच साहित्यिक सांस्कृतिक संबंधों को उज्बेकिस्तान और भारत के संदर्भ में देखना महत्वपूर्ण है। सोवियत संघ के विघटन के बाद मध्य एशिया में कई नए राष्ट्रों का उदय हुआ, इन्हीं में से एक महत्वपूर्ण राष्ट्र उज्बेकिस्तान है। उज्बेकिस्तान में भारतीय साहित्य और संस्कृति के वैश्विक प्रचार-प्रसार को लेकर ऐसा बहुत कुछ हो रहा है जो हमें खुश कर सके। दरअसल हमारे देखे हुए ख्वाब हैं जिसे उज़्बेकिस्तान और भारत के लोग मिलकर साकार कर रहे हैं। हिंदी उज्बेकी के रिश्ते का नयापन और उनकी भाषायी कशीदाकारी का यह जाल एक ऐसे ताने-बाने को बुन रहा है जो दोनों देशों के हित में है। दोनों तरफ के साहित्यिक विद्वान जिस तरह आदान-प्रदान के कार्य में अनुवाद के माध्यम से लगे हुए हैं, उसमें यह निश्चित कर पाना बड़ा मुश्किल सा लगता है कि कौन किसका ज्यादा मुरीद है। ऐसा लगता है कि एक दूसरे की भाषा के जादू में सम्मोहित होने की हद तक काम हो रहा है। यह फैलाव और प्रभाव निश्चित तौर पर भविष्य में एक नई दिशा का आगाज होगा। पसर जानेवाली मुस्कान की तरह हिंदी उज्बेकियों के दिल को छू रही है और भाषा के स्तर पर इन दोनों ही देश में अभी एक-दूसरे को आजमाने की बहुत गुंजाइश है। इन दोनों देश के लोगों के बीच की स्वभावगत उदारता और किरदार का बड़प्पन इन्हें

उज्बेकिस्तान में भारतीय साहित्य और संस्कृति के वैश्विक प्रचार-प्रसार को लेकर ऐसा बहुत कुछ हो रहा है जो हमें खुश कर सके। दरअसल हमारे देखे हुए ख्वाब हैं जिसे उज़्बेकिस्तान और भारत के लोग मिलकर साकार कर रहे हैं। हिंदी उज्बेकी के रिश्ते का नयापन और उनकी भाषायी कशीदाकारी का यह जाल एक ऐसे ताने-बाने को बुन रहा है जो दोनों देशों के हित में है। दोनों तरफ के साहित्यिक विद्वान जिस तरह आदान-प्रदान के कार्य में अनुवाद के माध्यम से लगे हुए हैं, उसमें यह निश्चित कर पाना बड़ा मुश्किल सा लगता है कि कौन किसका ज्यादा मुरीद है। ऐसा लगता है कि एक दूसरे की भाषा के जादू में सम्मोहित होने की हद तक काम हो रहा है। यह फैलाव और प्रभाव निश्चित तौर पर भविष्य में एक नई दिशा का आगाज होगा।

बेहतरीन की तलाश में एक साथ लाया है।

एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उज्बेकिस्तान मध्य एशिया में स्थित एक देश है। इसके उत्तर में कजाकिस्तान, उत्तर पूर्व में किर्गिस्तान, दक्षिण पूर्व में ताजिकिस्तान, दक्षिण में अफगानिस्तान और दक्षिण पश्चिम में तुर्कमेनिस्तान स्थित है। इसकी राजधानी और सबसे बड़ा शहर ताशकंद है। उज़्बेक भाषा उज्बेकिस्तान में बोली जाने वाली भाषा है, जबकि रूसी पूरे देश में व्यापक रूप से बोली और समझी जाती है। उज्बेकिस्तान में इस्लाम प्रमुख धर्म है, अधिकांश उज्बेक सुन्नी मुसलमान हैं। उज्बेकिस्तान में जातीय समूहों और संस्कृतियों का व्यापक मिश्रण है, जिसमें उज्बेक बहुसंख्यक समूह है। उज्बेक भोजन, स्थानीय कृषि से प्रभावित है। उज्बेकिस्तान में अनाज की खेती बहुत अधिक है। यहां ब्रेड और माँस प्रमुख भोजन का हिस्सा है। देश में भेड़ों की प्रचुरता के कारण मटन लोकप्रिय है और यह विभिन्न उज्बेक व्यंजनों का हिस्सा है। समोसा और पुलाव जैसे भारतीय व्यंजनों का मूल स्थान संभवतः उज्बेकिस्तान ही है।

एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उज्बेकिस्तान की पहचान नई है। यह एक समृद्ध इस्लामी विरासत वाला मुस्लिम बहुल देश है। यह मुस्लिम दुनिया में कुछ उत्कृष्ट व्यक्तित्वों का जन्मस्थान रहा है, जैसे हदीस (इस्लाम के पैगंबर मोहम्मद की परंपराएं) के पहले संकलनकर्ता सलीह बुखारी और नक्शबंदी सूफी संप्रदाय के संस्थापक बहाउद्दीन नक्शबंदी। मध्यकाल में बुखारा और समरकंद शहर इस्लामी शिक्षा के केंद्र के रूप में प्रसिद्ध थे। समरकन्द काफ़ी लम्बे समय से इतिहास के प्रसिद्ध नगरों में से एक रहा है। उज्बेकिस्तान इतिहास में दर्ज अपने जिन पूर्वजों पर गर्व करता है उनमें इमाम बुखारी,आल तर्मिज़ी,नक्शबंद, अहमद यसावी, अल- खोरेजमी, बरूनी,इब्न सीना (एवी सेन्ना), अमीर तैमूर (तैमूर लंग), उलूघबेक और बाबर का नाम प्रमुख है। इन सभी ने पूरे विश्व में अपने साहस, शौर्य और चातुर्य की छाप छोड़ी है। ताशकंद, समरकंद, बुखारा और खीवा जैसे उज्बेकिस्तान के प्राचीन शहर अपनी सांस्कृतिक विरासत और व्यापार से जुड़ी गतिविधियों के लिए हमेशा से ही मशहूर रहे। यहां अनेकों जातियों-

भारत और उज्बेकिस्तान का प्राचीन इतिहास इस 'सिल्क रुट' के ताने-बाने से भरा हुआ है। बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार से भी इन दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक जुड़ाव मजबूत हुआ। भारत में मुगल वंश की नींव डालनेवाले बाबर को भी एक महत्वपूर्ण इतिहास पुरुष के रूप में देखा जा सकता है। ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में भी यहां से कई विद्वान हुए जिन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता से पूरी दुनिया को प्रभावित किया। बीजगणित के विद्वान मूसा ख्वारे जमीं, भूगोलशास्त्री अलबरूनी, खगोल शास्त्री उलुग बेग और चिकित्साशास्त्र के विद्वान अबू अली का नाम विश्व प्रसिद्ध है।

जनजातियों के बीच सह अस्तित्व की परंपरा ने इस देश में साझी संस्कृति को बढ़ा दिया। सह अस्तित्व और साझी विरासत भारत की भी पहचान है। ईरानी, तुर्की, मुस्लिम, यहूदी और ईसाई समाज ने मिलकर उज्बेकिस्तान को एक राष्ट्र के रूप में नया गौरव प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

अगस्त 1992 में उज्बेकिस्तान के तत्कालीन राष्ट्रपति श्री इस्लाम करीवमोव ने भारत की पहली यात्रा की और दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान का नया और सुनहरा अध्याय शुरू हुआ। इन संबंधों को और प्रगाढ़ करने के लिए बाद में भारतीय प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिम्हा राव ने भी उज्बेकिस्तान की यात्रा की। सन 1994 में उज्बेकिस्तान के राष्ट्रपति ने जब दोबारा भारत की यात्रा की तो शैक्षणिक दृष्टि से यह बड़ा महत्वपूर्ण साबित हुआ। दिल्ली विश्वविद्यालय एवं जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में'उज्बेक भाषा विभाग" इस यात्रा के तहत किए गए समझौते के कारण ही संभव हो सका। भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने 07 जुलाई 2015 को उज्बेकिस्तान की यात्रा कर इन संबंधों को संभावनाओं से भर दिया।

उज्बेक उपनाम के संदर्भ में खीवा के शासक रहे अबुलगाजी बहादुर खान (1642-1663) ने अपनी किताब 'शजर-ए-तुर्क' में उल्लेख किया है कि उज्बेकों ने अपना उपनाम उज्बेक खान (1312-1340) से लिया है। उज्बेक का शाब्दिक अर्थ है 'स्व आधिपति या स्वतंत्र'। बेक का अर्थ है - आधिपति। जोजी खान का पुत्र उरुस खान जब किचपक का शासक बना, तभी से उसे उज्बेक शासकों की स्थायी रूप से पदवी की परंपरा शुरू हुई।

भारत के संदर्भ में साहित्य रचनेवाले उज्बेकी साहित्यकारों में गफूर गुलाम, हमीद गुलाम,अस्काद मुहतार,हमीद अलीमजान, मिरतेमीर, सईदा जुनुनोवा, एरकीन वहीदोवा और तमारा खोदजाएवा का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। उज्बेक कवि उईगुन ने भारत को केंद्र में रखकर 'बुलबुल'और 'हिमालय के ऊपर' नामक कविता लिखी है। अली सरदार जाफरी, सुभद्रा कुमारी चौहान, अमृतलाल नागर, पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, केदारनाथ सिंह, मुक्तिबोध, अशोक बाज़पई और यशपाल के साहित्य पर शोध पर पुस्तकों का लेखन कार्य भी उज्बेकी साहित्यकारों व विद्वानों द्वारा किया गया है।

उज़्बेकिस्तान पर कई शासकों ने शासन किया। छठवीं शताब्दी में अंकमैनियनों, चौथी शताब्दी ईसा पूर्व सिकंदर के नेतृत्व में यूनानियों का शासन, दूसरी शती ईसा पूर्व में कुषाणों का शासन और 751 ईसवी में अरबों का शासन इस क्षेत्र पर रहा। परिणाम स्वरुप एक मिली जुली संस्कृति के बीज यहां शुरू से रहे। सामानी, गजनवी और तैमूर राजवंश यहाँ के प्रमुख राजवंशों में रहे हैं। प्राचीन 'सिल्क रुट' या 'रेशम मार्ग' उज्बेकिस्तान के बुखारा और समरकंद जैसे शहरों से होकर गुजरता है। भारत और उज्बेकिस्तान का प्राचीन इतिहास इस 'सिल्क रुट' के ताने-बाने से भरा हुआ है। बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार से भी इन दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक जुड़ाव मजबूत हुआ। भारत में मुगल वंश की नींव डालनेवाले बाबर को भी एक महत्वपूर्ण इतिहास पुरुष के रूप में देखा जा सकता है। ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में भी यहां से कई विद्वान हुए जिन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता से पूरी दुनिया को प्रभावित किया। बीजगणित के विद्वान मूसा ख्वारे जमीं, भूगोलशास्त्री अलबरूनी, खगोल शास्त्री उलुग बेग और चिकित्साशास्त्र के विद्वान अबू अली का नाम विश्व प्रसिद्ध है। अलीशेर नवाई (1441-1501) उज्बेकिस्तान के महान और श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं वे बाबर के समकालीन थे। मंगोलों के आक्रमण के काल में इस क्षेत्र से कई विद्वानों ने भारत को अपनी शरण स्थल बनाया था। ऐसे विद्वानों में शेख जलालुद्दीन बुखारी (1370-1383) प्रमुख हैं। अमीर खुसरो के पूर्वज भी मध्य एशिया से भारत में जाकर बस गए थे।

राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, मौलाना आजाद पुस्तकालय और

रजा लाइब्रेरी, रामपुर में कई उज्बेकी विद्वानों से संबंधित महत्वपूर्ण ग्रंथ आज भी सुरक्षित रखे गए हैं। 'बाबरनामा' के माध्यम से बाबर ने उज्बेकिस्तान के इलाकों और भारत की प्राकृतिक सुषमा, रीति- रिवाज,परंपराएं इत्यादि का विस्तार से वर्णन किया है। 'बाबरनामा' में कई कविताएं लिखते हुए बाबर ने हिंदुस्तानी का प्रयोग किया है। उज्बेक बादशाह उबाईदुला हसान का तुर्की में हस्तलिखित दीवान भारत में सुरक्षित है। इसी तरह काही, खरजेगी,वदी,शही इत्यादि कवियों के हस्तलिखित दीवान यहां उपलब्ध हैं। मध्य एशिया में तैमूर वंश के बारे में लिखा गया ग्रंथ'तारीस्व-ए-खानदान-ए- तिमूरिया' भी भारत के खुदा बख्श पुस्तकालय में सुरक्षित है। बाबर को हिंदुस्तानी सीखने को लेकर 'हिंदूबेग' के नाम का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि यह इब्राहिम लोदी का एक सैन्य अधिकारी था जो असंतुष्ट होकर बाबर से मिलने अदीजान चला आया था। इसका नाम इंदर था लेकिन बाबर की बेगों में शामिल होने के बाद यह 'हिंदूबेग' के नाम से जाना गया।

उज्बेकिस्तान में सन 1925 के आसपास रविंद्रनाथ टैगोर की कहानियों एवं कविताओं का उज्बेकी एवं रूसी भाषा में अनुवाद के माध्यम से परिचय हुआ। सन 1940 से 1960 के बीच प्रेमचंद, मोहम्मद इकबाल, मिर्जा गालिब,अमृता प्रीतम और यशपाल की रचनाएं यहां की भाषा में अनुवाद करके प्रकाशित की गयीं। इस तरह अनुवाद के माध्यम से भारतीय साहित्यकारों के साहित्य से उज्बेकिस्तान के लोग परिचित होते रहे। अब तक अनुमानतः30 से 35 भारतीय साहित्यकारों का साहित्य उज्बेकी भाषा में अनुवाद के माध्यम से पहुंच चुका है। अमृता प्रीतम ने कई बार उज्बेकिस्तान की यात्रा की। उनके काव्य संग्रह 'काला गुलाब' में 'मेरे ताशकंद वाले दोस्त को' नाम की कविता भी है। अमृता प्रीतम ने अपनी उज़्बेकिस्तान की यात्राओं से संबंधित कुछ निबंध भी लिखे जो सन 1962 में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'अतीत की परछाइयां' में संकलित हैं। 'आंसुओं का रिश्ता','खाबिदा हुसीना','उज्बेकिस्तान की जुल्फ़' उनके ऐसे ही निबंध हैं। उज्बेकी भाषा की कवयित्री जुल्फिया से अपनी दोस्ती का भी उन्होंने जिक्र किया है। सन 1978 में भारत के 30 लेखकों की कहानियों को उज्बेकी में अनुवाद करके पुस्तक के रूप में ताशकंद से प्रकाशित किया गया। इन लेखकों में प्रेमचंद, अमृतलाल नागर, भगवती चरण वर्मा, विष्णु प्रभाकर, यशपाल, उपेंद्रनाथ अश्क, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, इस्मत चुगताई ,अमृता प्रीतम, केशव देव और मलयालम की सरस्वती अम्मा शामिल हैं। इसी तरह सन 2006 में 'दिया जला सारी रात' पुस्तक का प्रकाशन भी हो चुका है।

भारत के संदर्भ में साहित्य रचनेवाले उज्बेकी साहित्यकारों में गफूर गुलाम, हमीद गुलाम,अस्काद मुहतार,हमीद अलीमजान, मिरतेमीर, सईदा जुनुनोवा, एरकीन वहीदोवा और तमारा खोदजाएवा का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। उज्बेक कवि उईगुन ने भारत को केंद्र में रखकर 'बुलबुल'और 'हिमालय के ऊपर' नामक कविता लिखी है। अली सरदार जाफरी, सुभद्रा कुमारी चौहान, अमृतलाल नागर, पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, केदारनाथ सिंह, मुक्तिबोध, अशोक बाज़पई और यशपाल के साहित्य पर शोध पर पुस्तकों का लेखन कार्य भी उज्बेकी साहित्यकारों व विद्वानों द्वारा किया गया है। डॉ. बेकाएवा ने यशपाल के उपन्यासों पर शोध पर कार्य किया है। उज्बेकी कवि कोदरी की कविता 'भारतीय कवयित्रीयों को' एवं बाबा जान की 'भारत की मां' कविता भारत के प्रति उनके प्रेम को दर्शाती है।

उज़्बेकिस्तान और भारत के बीच पारस्परिक ऐतिहासिक संबंधों से इस देश में हिंदी का विकास प्रभावित है। भारत की स्वतंत्रता के बाद ये संबंध अधिक विकसित हुए। आधुनिक युग में ऐसे मैत्रीपूर्ण संबंधों की नींव भारत के प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने स्थापित की और अब उज़्बेकिस्तान गणराज्य के राष्ट्रपति श्री शौकत मिर्जियोयेव और भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी इस नींव को अधिक मज़बूत कर रहे हैं।

'उज्बेकिस्तान और भारत के साहित्यिक संबंध' एक पाठ्यक्रम के रूप में यहां ताशकंद में पढ़ाया जाता है। इसी तरह 'समकालीन भारतीय साहित्य में नई धारा','विदेश से भारत के साहित्यिक संबंध','साहित्य शास्त्र','दक्षिण भारत का साहित्य',''बांग्ला साहित्य' और 'पंजाबी साहित्य' भी यहां कोर्स के रूप में पढ़ाया जाता है। यहां रहते हुए मैं पर्यटन, राजनीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र और अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों को भारत के संविधान, भारत के प्रमुख राजनेता, भारत में पर्यटन का भविष्य जैसे विषयों पर व्याख्यान देते हुए उन्हें हिंदी में अधिक से अधिक बोलने के लिए प्रेरित करता हूं। विद्यार्थी विषयों में न केवल रुचि लेते हैं बल्कि अपने प्रश्नों के माध्यम से आशंकाओं का निराकरण भी करते हैं।

रविंद्रनाथ ठाकुर पर पहली बार सन 1920 में 'लाल पूर्व' पत्रिका में उनकी एक कविता उज्बेकिस्तान में प्रकाशित हुई। उज्बेकी कवि चुल्पोन ने सन 1924 में एक लंबा लेख रविंद्रनाथ ठाकुर पर उज्बेकी में लिखा जो यहां की 'शिक्षा और शिक्षक' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ। सन 1947 में 'पूर्व का तारा' नामक पत्रिका ने रविंद्रनाथ ठाकुर की कहानियों के अनुवाद छापे। 'नौका डूबी' उपन्यास का सन 1957 में न केवल यहां अनुवाद किया गया बल्कि उसके अंशों का मंचन भी हुआ। इस उपन्यास को लेकर संभवतः यहां टीवी धारावाहिक भी बना। उज्बेकी कवि बाइकोबिलोव ने गुरुदेव पर केंद्रित एक कविता 'ठाकुर के घर में' सन 1970 के आसपास लिखी।

अमृता प्रीतमभारत और उज्बेकी बच्चों के लिए'खिड़कियां' नाम से एक पुस्तक भी लिख चुकी हैं। उनकी कई कविताओं, कहानियों एवं उपन्यासों के अंश उज्बेकी भाषा में प्रकाशित हो चुके हैं। उज्बेकी कवयित्री नादिरा की कविताओं का उन्होने हिंदी में अनुवाद भी किया। उसी का एक अंश देखें –

फूल खिल पड़े हैं
बुलबुल तू अपनी खामोशी तोड़ दे
यदि तेरे पास गीत समाप्त हो गए हैं तो
इस नादिरा के कलाम में से फरियाद ले जा।

ताशकंद में भारतीय दूतावास सन 1993 में खुला। इसके साथ ही स्टेट बैंक आफ इंडिया का कार्यालय, भारत और उज्बेक संयुक्त कारखानों समेत अनेकों संस्थाओं का संचालन शुरू हुआ। भारतीय दूरदर्शन का लोकप्रिय धारावाहिक रामायण उसे उज्बेकिस्तान टेलीविजन पर भी प्रसारित किया गया। इसका उज्बेकी अनुवाद अमीर फैजुलाएव ने किया था। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद स्कॉलरशिप एवं केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा की छात्रवृत्ति योजना द्वारा उज्बेकी छात्रों को लगातार यह मौका मिलने लगा है कि वह भारत में जाकर हिंदी की पढ़ाई कर सकें। 'नमस्ते' नामक कार्यक्रम से उज्बेकी की जनता भारतीय संस्कृति से परिचित होती रही है। इसी तरह उज्बेकी रेडियो पर 'नमस्ते हिंदुस्तान' कार्यक्रम प्रसारित होता रहा है। यहां टेलीविजन पर महाभारत का भी प्रसारण उज्बेकी भाषा में डब करके हुआ। इसके अनुवाद कार्य को अमीर फैजुलाएव ने अंजाम दिया।

राजस्थानी लेखिका रानी लक्ष्मी कुमारी चुंडावत ने अपनी पुस्तक 'हिंदू कुश के उसे पार' में उज्बेकी भाषा प्रेम को लेकर लेखन कार्य किया है। उज्बेकी लेखक शराफ़ रशीदोव के उपन्यास का सुधीर कुमार माथुर ने हिंदी अनुवाद 'विजेता' नाम से किया। ताशकंद के गफूर गुलाम प्रकाशन गृह ने उज्बेकी कवियों का एक संग्रह उर्दू में प्रकाशित किया। जिससे भारत में उर्दू अदब के जानकारों से इनका परिचय हो सका। इसके उर्दू अनुवाद में दिल्ली विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग के प्रोफेसर कमर रईस ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। सन 1973 में कमर रईस की कविताओं का संग्रह उज्बेकी भाषा

में प्रकाशित हुआ। विश्व मित्र उपाध्याय, कन्हैयालाल नंदन और भीष्म साहनी ने उज्बेकिस्तान से जुड़ी अपनी यात्राओं के संस्मरण और यात्रा वृतांत समय-समय पर लिखे हैं। भारतीय साहित्य पर पहली पाठ्य पुस्तक उज्बेकिस्तान में सन 1991 में प्रोफेसर तमारा खोजाएवा द्वारा तैयार की गई जिसमें रविंद्रनाथ ठाकुर, प्रेमचंद, वृंदावनलाल वर्मा,कृष्ण चंद्र,वृंदावन र की गई जिसमें रविंद्र यशपाल, जैनेंद्र कुमार, अमृता प्रीतम, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह जैसे साहित्यकारों एवं आलोचकों को शामिल किया गया। कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला',सुमित्रा नंदन पंत, हरिवंश राय बच्चन, केदारनाथ सिंह इत्यादि को शामिल किया गया।

विश्व हिन्दी सचिवालय की साहित्यिक पत्रिका द्वारा 12वें विश्व हिन्दी सम्मेलन के उपलक्ष्य में निकाले गए "विश्व हिन्दी साहित्य 2022" विशेषांक में सुश्री हुसनोरा बोटिरोवा का 'उज्बेकिस्तान' में हिन्दी' आलेख प्रकाशित हुआ है। इस आलेख के माध्यम से सुश्री हुसनोरा बोटिरोवा बताती हैं कि हिन्दी के बढ़ते हुए अंतरराष्ट्रीय महत्व के कारण ही उज्बेकिस्तान में भी विद्यार्थियों के मन में हिन्दी सीखने की ललक लगातार बढ़ रही है। भारत सरकार के सहयोग से स्थापित अनेकों संस्थानों में उज्बेकी लोग बड़ी संख्या में कार्य भी कर रहे हैं। ताशकंद स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ ओरिएंटल स्टडीज़ जैसे शिक्षा संस्थानों का हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन में महत्वपूर्ण योगदान है। दोनों देशों के सांस्कृतिक सम्बन्धों को मज़बूत करने में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (ICCR), उज्बेक इंडियन फ्रेंडशिप सोसायटी तथा उज्बेक इंडियन इन्फॉर्मेशन टेक्नालजी सेंटर ने सरहनीय कार्य किया है।

सन 1947 में भारत की स्वतंत्रता के साथ ही "डिपार्मेंट आफ साउथ एशियन लैंग्वेज" की स्थापना ताशकंद स्टेट इंस्टिट्यूट ऑफ़ ओरिएंटल स्टडीज में हुआ। यह संस्थान वर्तमान में एक बड़े विश्वविद्यालय के रूप में कार्यरत है। यहां शुरू से हिंदी अध्ययन अध्यापन की परिपाटी रही है। उज्बेकिस्तान तब सोवियत रूस का हिस्सा था जिसे सन 1991 में स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में मान्यता मिली। पिछले 75 सालों में अकेले इसी संस्थान द्वारा करीब 800 से 1000 विद्यार्थी भाषा अध्ययन अध्यापन से जुड़े रहे हैं। भारत के समसामयिक संदर्भ, भाषा, संस्कृति, इतिहास से जुड़े विषयों पर 50 से अधिक विद्यार्थी यहां से अपनी PhD उपाधि हासिल कर चुके हैं। हिंदी अध्यापन से जुड़ी पाठ्य पुस्तकों का भी बड़े पैमाने पर निर्माण यहां के प्राध्यापकों ने किया है। इन पाठ्य पुस्तकों/मोनोग्राम इत्यादि की संख्या 300 से अधिक बताई जाती है। यह विभाग सन 1947 में 'नॉर्थ इंडियन फिलोलॉजी' के नाम से जाना जाता था जिसे बाद में 'इंडियन फिलोलॉजी' और 'लैंग्वेज ऑफ साउथ एशिया' नाम से जाना गया। सन 2018 से यह विभाग 'डिपार्टमेंटऑफ़ साउथ एंड साउथ ईस्ट एशियन लैंगवेजेज़' के नाम से जाना जाता है। इस विभाग के सहयोगी संगठन /पार्टनर आर्गेनाइजेशन के रूप में गुजरात विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय नई दिल्ली एवं विवेकानंद रिसर्च इंस्टीट्यूट जैसे भारतीय संस्थान जुड़े हुए हैं।

उज्बेकी-हिन्दी शब्दकोश का निर्माण भी यहां की शिक्षकों द्वारा हाल ही में किया गया है। 7 जुलाई 2015 को देश के यशस्वी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा इस पहले उज्बेकी-हिन्दी शब्दकोश का लोकार्पण किया गया। प्रधानमंत्री नरेंद्र

हिन्दी प्रचार-प्रसार की दृष्टि से उज्बेकिस्तान मध्य एशिया में उम्मीदों के प्रकाश का ऐसा अन्तः केंद्र बनकर उभरा है जो हिन्दी जगत की आखों में नाच उठे। भारत और उज्बेकिस्तान दोनों ही उस सपने से परिचित हैं जो आपसदारी एवं विश्वास के कंधों पर खड़ा हुआ है। अपनी भाषा और संस्कृति के वैश्विक विस्तार में ये दोनों राष्ट्र एकसाथ हैं। अपनी भाषा और संस्कृति के माध्यम से मानवीय करुणा,विश्वास और संवेदना का सौंदर्य पूरे विश्व में बिखेरने के लिए ऐसी साझेदारी दोनों राष्ट्रों के हित में है।

मोदी ने अपनी यात्रा के दौरान भारतीय फिल्म और संगीत की उज्बेकिस्तान में लोकप्रियता के साथ-साथ यह भी याद दिलाया कि सन 2012 में उज्बेक रेडियो ने हिंदी ब्रॉडकास्टिंग के 50 वर्ष पूर्ण किए। वर्तमान में ताशकंद स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ ओरिएंटल स्टडीज के डिपार्मेंट आफ साउथ एंड साउथ ईस्ट एशिया लैंग्वेज के माध्यम से हिंदी अध्ययन अध्यापन का कार्य हो रहा है। डॉ. निलूफर खोजिएवा वर्तमान मेँ यहां विभाग प्रमुख के रूप में कार्यरत हैं। डॉ निलूफर खोजिएवा को फ़िजी के विश्व हिंदी सम्मेलन में हिंदी सेवा के लिए भारत सरकार ने हाल ही मे सम्मानित भी किया है। डॉ निलूफर खोजिएवा ने बताया कि उज्बेकिस्तान में हिंदी को भी अब पढ़ाया जाता है। अनुवाद के क्षेत्र में भी खूब विकास हुआ है। हिंदुस्तानी जर्नलिज्म को भी पढ़ाया जाने लगा है। मैंने खुद प्रेमचंद की हिंदी भाषा से उज्बेकिस्तानी अनुवाद पर रिसर्च किया है। यहां पर हिंदी में पीएचडी होती है और रिसर्चर की संख्या में भी वृद्धि हो रही है। यहां भाषा विज्ञान, हिंदी साहित्य के इतिहास अनुवाद पर रिसर्च होता है। कई भारतीय विद्वान भी उज्बेकी साहित्य को अनुवाद के माध्यम से हिन्दी में लोकप्रिय करने के लिए प्रयास कर रहे हैं। आमिर फैजुल्ला के अनुवाद कार्य की वजह से प्रेमचंद को उज्बेकी भाषा में पढ़ना संभव हो सका।

उज्बेकिस्तान में हिंदी शीर्षक से अपने एक लेख में सुश्री हुसनोरा बोटिरोवा (उज़्बेकिस्तान) लिखती हैं कि— उज़्बेकिस्तान में हिंदी सीखने के प्रति लोगों में बहुत रुचि है। उज़्बेकिस्तान में स्कूल ऑफ़ इंडियन स्टडीज़ की स्थापना को हाल ही में 75 साल हो गए हैं। पिछले सालों के दौरान हज़ारों उज़्बेक युवाओं ने अनुभवी और जानकार विशेषज्ञों से ज्ञान प्राप्त किया है और वर्तमान में भारत के सहयोग से स्थापित विभिन्न संगठनों में वे काम कर रहे हैं। उज़्बेकिस्तान और भारत के बीच पारस्परिक ऐतिहासिक संबंधों से इस देश में हिंदी का विकास प्रभावित है। भारत की स्वतंत्रता के बाद ये संबंध अधिक विकसित हुए। आधुनिक युग में ऐसे मैत्रीपूर्ण संबंधों की नींव भारत के प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने स्थापित की और अब उज़्बेकिस्तान गणराज्य के राष्ट्रपति श्री शौकत मिर्जियोयेव और भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी इस नींव को अधिक मज़बूत कर रहे हैं। पूर्व विदेश मंत्री स्वर्गीय सुषमा स्वराज्य ने अपनी उज्बेक यात्रा के संदर्भ में कहा था कि ''कोई मेरे पास आया और मेरी साड़ी और बिंदी की ओर इशारा करते हुए कहा 'इंडिया, इंडिया'। मैने हां कह दिया! फिर उस शख्स ने आगे कहा, 'राज कपूर की धरती' और एक लाइन बोली, 'मैं आवारा हूं'। मैंने कभी भी किसी भी देश में किसी अभिनेता की लोकप्रियता का यह स्तर नहीं देखा है।''

कूटनीति और गणराज्य के विभिन्न क्षेत्रों से संबंधित राज्य एजेंसियों में उज़्बेक के इंडोलॉजिस्ट उच्च पदों पर काम कर रहे हैं। उज़्बेकिस्तान में इंडोलॉजी के विकास में वे अपना योगदान देते हैं। उनकी राजनयिक गतिविधियों के लिए कई इंडोलॉजिस्ट को भारत और अन्य देशों के सर्वोच्च पुरस्कार मिले हैं। प्रोफ़ेसर ओज़ोद शामतोव और जाने - माने अनुवादक अमीरुल्ला फ़ैज़िएव को भारत सरकार ने जॉर्ज ग्रियर्सन पुरस्कार से सम्मानित किया है। भाषाविज्ञान की प्रोफ़ेसर उल्फ़त मुखीबोवा और सिरोजिद्दीन नूरमातोव को भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा हिन्दी भाषा के विकास में उनके योगदान के लिए सम्मानित किया गया है। उज़्बेकिस्तान में भारतीय सांस्कृतिक केंद्र की स्थापना 1995 में हुई थी। मार्च 2005 में इसका नाम बदलकर लाल बहादुर शास्त्री भारतीय सांस्कृतिक केंद्र कर दिया गया। लाल बहादुर शास्त्री केंद्र ताशकंद में भारतीय स्वतंत्रता दिवस और गणतंत्र दिवस समारोह के दौरान विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। लाल बहादुर शास्त्री केंद्र विभिन्न प्रतियोगिताओं का भी आयोजन करता है। वहाँ भारत से संबंधित विषयों पर प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिताएँ, भारतीय गीतों का गायन, हिंदी कविता का पाठ और भारत से संबद्ध विषयों पर हिंदी में निबंध लिखवाए जाते हैं। हिंदी फ़िल्मों का भी प्रदर्शन होता है। हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के लिए केंद्र हिंदी कक्षाएँ, संगोष्ठियाँ और प्रतियोगिताएँ आयोजित करता है। केंद्र यहाँ के कई संस्थानों को हिंदी पुस्तकें भी प्रदान करता है।

आई.सी.सी.आर की छात्रवृत्ति की योजनाओं के तहत उज्बेकिस्तान के कई छात्रों को भारत में हिंदी पढ़ने का अवसर प्राप्त होता है। हर साल 2 छात्रों को हिंदी में प्रशिक्षण के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा भी भेजा जाता है। भारत सरकार की ओर से उज्बेकिस्तान

में हिंदी भाषा और भारतीय संस्कृति को बढ़ावा देने के प्रयास सतत जारी हैं। अपनी एक सोशल मीडिया पोस्ट में पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रोफ़ेसर गुरमीत सिंह जी जानकारी साझा करते हुए लिखते हैं कि ''एक लंबे इंतजार के बाद आखिरकार आज नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा उज़्बेकिस्तान की लोक कथाओं के हिंदी अनुवाद की पुस्तक छपकर आ गई। ठीक 2 वर्ष पहले यानी 2021 के अक्तूबर-नवंबर में ताशकंद स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ ओरियंटल स्टडीज में था। विश्वविद्यालय के अनुवाद अध्ययन व अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकारिता विभाग की अध्यक्ष डॉ निलूफर खोजिएवा(जिन्हें फ़िजी के विश्व हिंदी सम्मेलन में हिंदी सेवा के लिए भारत सरकार ने सम्मानित किया है) के निमंत्रण पर विजिटिंग प्रोफेसर के रुप में वहां का अनुभव शानदार रहा। एमए (अनुवाद) की मेधावी विद्यार्थी नूरखोन के साथ कक्षा में ही उज़्बेकी लोककथाओं के अनुवाद की योजना बनी जिसे डॉ निलूफ़र ने भी सहर्ष अनुमति दी। वही प्रयास अब एक छोटी सी पुस्तक के रुप में सामने है। डॉ निलूफर, नूरखोन के सहयोग के बिना तो यह संभव ही नहीं था लेकिन उज़्बेकिस्तान के सभी मित्रों विशेषकर उज़्बेकिस्तान में भारत के राजदूत श्री मनीष प्रभात का ह्रदय से आभार जिन्होंने हमेशा स्नेह और समर्थन दिया। अंत में प्रकाशक NBT का धन्यवाद।''

वार्षिक दर्पण नामक पत्रिका जो कि इंडिया क्लब ताशकंद द्वारा प्रकाशित है, उसके माध्यम से हिन्दी में उज्बेकी छात्रों का साहित्य प्रकाशित होता रहता है। उज्बेकिस्तान में तामिल साहित्य का स्वागत नामक अपने आलेख में मुर्तजाखोदजायेवा लिखती हैं कि— उज्बेकिस्तान में भारतीय भाषा अध्ययन का इतिहास 70 वर्षों का है। तमिल भाषा और साहित्य इस क्षेत्र में नया अध्याय है। तमिल भाषा पर यहाँ काम किया जा रहा है। आधुनिक तमिल रचनाकार चिन्नप्प भारती का उपन्यास "पवलाई" ने उज्बेकिस्तान में पहले तमिल उपन्यास के तौर पर प्रवेश किया। मुर्तजाखोदजायेवा मानती हैं कि पवलाई, तन्कम्मा, पेरियननान, जैसे सीधे साधे और मेहनती लोग उज़बेकों में भी हैं, लेकिन उनका नाम ही दूसरा है...। भाषाविज्ञान की प्रोफ़ेसर उल्फ़त मुखीबोवा पिछले 40 वर्षों से हिन्दी अध्ययन-अध्यापन से जुड़ी हुई हैं। प्रोफेसर उल्फ़त मुखीबोवा ने वर्ष 2023 में आगरा में व्याख्यान के दौरान बताया कि उज्बेकिस्तान में रामायण, महाभारत, अथर्ववेद, पंचतंत्र की कहानियाँ, सूफी साहित्य जैसे भारतीय साहित्य को उज्बेकी भाषा में अनुवाद करके पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। उन्होंने बताया कि रविंद्रनाथ टैगोर, प्रेमचंद, यशपाल, इकबाल जैसे भारती लेखकों की बहुत सारी रचनाएँ उनके यहां पत्रिकाओं जैसे कि 'पूर्व का सितारा' और "विश्व का साहित्य' में अनूदित होकर प्रकाशित हो रही हैं।

समग्र रूप में हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी प्रचार-प्रसार की दृष्टि से उज्बेकिस्तान मध्य एशिया में उम्मीदों के प्रकाश का ऐसा अन्तः केंद्र बनकर उभरा है जो हिन्दी जगत की आखों में नाच उठे। भारत और उज्बेकिस्तान दोनों ही उस सपने से परिचित हैं जो आपसदारी एवं विश्वास के कंधों पर खड़ा हुआ है। अपनी भाषा और संस्कृति के वैश्विक विस्तार में ये दोनों राष्ट्र एकसाथ हैं। अपनी भाषा और संस्कृति के माध्यम से मानवीय करुणा,विश्वास और संवेदना का सौंदर्य पूरे विश्व में बिखेरने के लिए ऐसी साझेदारी दोनों राष्ट्रों के हित में है। भाषायी मेलजोल दरअसल ख़ुशबू से भरे वे रंग हैं जो फ़ासलों के गुबार को दरकिनार कर छनकर आती हुई उम्मीद को अपनी कोह में बसा सजाते और सँवारते हैं। इस तरह की भाषायी साझेदारी भविष्य के भारत और उज्बेकिस्तान के लिए निश्चित ही प्रगति के नए आयाम गढ़ेगी।

संदर्भ

1. भारत और उज्बेकिस्तान के साहित्यिक संबंध—असा. प्रोफ़ेसर तमारा खोदजाएवा, ब्राउन बुक्स पब्लिकेशन प्रा. लि.,अलीगढ़,भारत। प्रथम संस्करण 2021।
2. उज्बेकिस्तान में इक्कीसवीं सदी का नवोदय—इस्लाम करीमोव, यू.बी. एस. पब्लिशर डिस्ट्रीबूटर्स लिमिटेड,नई दिल्ली,भारत। प्रथमसंस्करण1999।
3. Central Asia-India Dialogue: Building a partnership on the foundation of rich cultural and Historical Heritage—edited by Jyotsna Bakshi, published by Lal Bahadur Shastri center for indian culture, Tashkent & Mahatma Gandhi Indological center, Tashkent state institute of oriental studies, first edition 2018

———•••———

विजिटिंग प्रोफ़ेसर (ICCR Chair)
ताशकंद स्टेट युनिवर्सिटी ऑफ ओरिएंटल स्टडीज़,
ताशकंद, उज्बेकिस्तान

प्राकृत भाषा में राम कथा

— डॉ. ममता जैन

प्राकृत भाषा में राम कथा पउमचरियं की हिंदी भाषा में रचित कथा है। पउमचरियं महाराष्ट्री प्राकृत में 2000 वर्ष पूर्व लिखित रामकथा पर आधारित विशालकाय महाकाव्य है। इसमें लगभग 9000 श्लोक और 118 सर्ग है। भाषा, शैली और काव्यगत सौंदर्य के साथ महाकाव्य के सभी आधार तत्वों से परिपूर्ण यह महाकाव्य अति आकर्षक मनोवैज्ञानिक तथ्यपरक रामकथा है। प्रकृति चित्रण, वस्तु वर्णन, नगर वर्णन, मनोहारी है सर्वजन सुलभार्थ विदुषी डॉ. नीलम जैन ने इसमें से सभी रामायण के पुरुष, महिला पात्रों विभिन्न घटनाओं काव्यगत विशेषताओं के वर्णन से इस शोध ग्रंथ बना दिया है। राम भरत के वैराग्य, राम लक्ष्मण के साथ लव-कुश युद्ध, कैकेई के पश्चाताप, मंदोदरी रावण संवाद विभीषण राम संवाद अशोक वाटिका में सीता द्वारा मंदोदरी को फटकार का अति सजीव चित्रण है। रावण और सीता का वार्तालाप अति विशिष्ट है सीता रावण से भयभीत नहीं होती अपितु धिक्कारती है|

इस कृति की विशेषता है कि प्रतिपाद्य विषय की महत्ता और प्रतिपादन शैली की रमणीयता का अनुपम समन्वय हुआ है। कवि ने अपनी विराट भाव योजना के लिए विशाल फलक पर लोक कल्याण की मंगलमय भाव भूमि पर प्रतिष्ठित किया है,

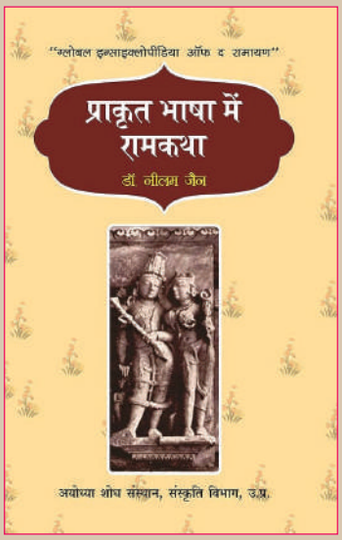

प्रकाशक :
वाणी प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली
व अयोध्या शोध संस्थान लखनऊ
मूल्य : ₹695

हिंदी में इसका अनुवाद विषय वस्तु आने से यह 2000 वर्ष से भी अधिक प्राचीन रचना को आज का पाठक समझ सकेगा/ पढ़ सकेगा। इस कृति की उपयोगिता एवं महत्व को देखते हुए अयोध्या शोध संस्थान उत्तर प्रदेश सरकार लखनऊ ने अपने ग्लोबल एनसाइक्लोपीडिया आफ दी रामायण प्रोजेक्ट के अंतर्गत लिया है। यह पुस्तक मनीषियों, राम कथा प्रेमियों, शिक्षाविदों शोधकर्ताओं सभी के लिए पठनीय एवं संग्रहणीय है।

लेखिका ने प्रभावपूर्ण आकर्षक भाषा एवं विविध विषयों को समाहित करते हुए किया है। स्वयं कवि विमल सूरी जी ने लिखा है- यह कथा पुण्यदायी सर्वसुख प्रदाता एवं दुर्गति से बचाने वाली है तथा इसके पढ़ने से समस्त मनोवांछित परियोजनाओं की सिद्धि होती है। इस कालजयी कृति का गौरव भी द्विसहस्त्र वर्षों के पश्चात भी प्रतिष्ठित है। प्राकृत भाषा में राम कथा सत्यं शिवमं सुंदरम से अभिमण्डित है।

सुंदर जागा स्वप्न से

— डॉ. अनुपम

नामवर सिंह पर लिखे अपने एक संस्मरण में विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं कि आलोचक का प्रधान कार्य रचना और रचनाकार का नया पाठ प्रस्तुत करना है। वे कहते हैं कि ऐसा कार्य आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने गोस्वामी तुलसीदास और मलिक मोहम्मद जायसी पर, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर और चंद वरदाई पर तथा रामविलास शर्मा ने सूर्यकांत त्रिपाठी निराला पर लिखकर किया। रचना और रचनाकार का ऐसा ही नया पाठ दलपत राजपुरोहित द्वारा निर्गुण धारा के संत सुंदरदास पर किया गया है। उनकी हाल ही में प्रकाशित पुस्तक 'सुंदर के स्वप्नः आरंभिक आधुनिकता, दादूपंथ और सुंदरदास की कविता' (राजकमल प्रकाशन, 2022, दूसरा संस्करण 2023) काफ़ी चर्चा में रही है। यह पुस्तक 'भक्ति मीमांसा श्रृंखला' की चौथी पुस्तक है जिसके संपादक पुरुषोत्तम अग्रवाल हैं। दलपत की यह किताब सुंदरदास और उनकी कविता को तो नए सिरे से खोजती ही है साथ ही वह दादूपंथ और आरंभिक आधुनिकता पर तथ्यात्मक चर्चा करती है।

हिंदी में अधिकतर प्रसिद्ध साहित्यकारों पर ही शोध कार्य करने की परंपरा रही है। उपेक्षित और कम चर्चित कवियों पर प्रायः शोध और आलोचना करने के प्रयास कम हुए हैं। दलपत की यह पुस्तक दूसरी श्रेणी में आती है जिसमें भक्तिकाल के कम चर्चित कवि सुंदरदास पर शोध कार्य किया गया है। यह कार्य उनके शोध-प्रबंध का संशोधित और संवर्द्धित रूप है जिसे उन्होंने प्रेसिडेंसी विश्वविद्यालय, कोलकाता से पूरा किया था। दलपत पिछले एक दशक से संयुक्त राज्य अमेरिका के टेक्सस विश्वविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक हैं जहाँ इस पुस्तक का एक बड़ा हिस्सा लिखा गया। पिछले दशक से हिंदी साहित्य के इतिहास में 'आधुनिकता' की शुरुआत को लेकर एक व्यापक बहस हुई है। इसकी शुरुआत रामविलास शर्मा के लेखन से होती है जिसे आगे बढ़ाने का कार्य पुरुषोत्तम अग्रवाल ने अपने लेखन द्वारा समय-समय पर किया है। रामविलास शर्मा यह मानते हैं कि भारत के इतिहास का मध्यकाल जिसे हम तथाकथित 'अंधकार का समय' मानते हैं वस्तुतः वह आधुनिक काल की शुरुआत है। इतिहास के इस आधुनिक काल के केंद्र में उत्पादन और व्यापार के नये नियम थे जिसके केंद्र में कारीगर और दस्तकार थे। कारीगरों और व्यापारियों के उभार व व्यापार के बढ़ाव को रामविलासजी व्यापारिक पूंजीवाद के रूप में व्याख्यायित करते हैं जो भारत में 13- 14वीं सदी से शुरू होता है। इस दौर में व्यक्ति सत्ता, विवेक और सहिष्णुता प्रमुख रूप से मौजूद थी।

दलपत इसी बहस को आगे बढाते हुए पुस्तक के पहले अध्याय में आरंभिक आधुनिकता पर विचार करते हैं। वे मध्यकाल को 'आरंभिक' आधुनिक काल मानने के लिए प्रसिद्ध इतिहासकार जॉन रिचर्ड्स के कार्य का हवाला देते हैं। जिनका यह मानना था कि 15वीं से 18वीं शताब्दी तक दुनिया भर में मुख्यतः छह सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाएं चल

रही थी जिनके आधार पर हम भारत के उस समय को भी 'अर्ली मॉडर्न पीरियड' कह सकते हैं। वे मुख्य प्रक्रियाएँ थी वैश्विक समुद्री मार्ग का प्रचलन, सुदृढ़ वैश्विक अर्थव्यवस्था का अस्तित्व, विशाल साम्राज्यों का उद्भव, आबादी का अभूतपूर्व रूप से बढ़ना, नई तकनीक आना, और बसावटों में विस्तार होना। दलपत के अनुसार ये सभी प्रक्रियाएं किसी न किसी रूप में मध्यकाल में भारत में भी मौजूद थीं इस आधार पर हम इस समय को आरंभिक आधुनिक काल कह सकते हैं। दलपत पुरुषोत्तम अग्रवाल के इस तर्क को भी रेखांकित करते हैं कि यह जरूरी नहीं है आधुनिकता हमेशा यूरोपीय औद्योगीकरण से जुड़ी हो जो कि एक उपनिवेशवादी तर्क था। 'आधुनिक' होना एक भावबोध का होना है जो भारत में यूरोप के आगमन से पहले भी मौजूद था।

यदि हम यह मान भी लें कि 13वीं-14वीं सदी से हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल शुरू होता है तो हमारे सामने दूसरी बाधा रीतिकाल के रूप में सामने आती है। क्योंकि रीतिकाल को सामंती अभिरुचि का काल मानकर आधुनिकता के विरोध में देखा गया है। इसके उत्तर में दलपत कहते हैं कि यह हमारे द्वारा भक्ति और रीति दोनों काव्य धाराओं को बाइनरी (परस्पर विरोधी श्रेणियों) में रखने का नतीजा है। इस तरह के विभाजन से पूरे काल को समझने में विरोध पैदा होता है। क्योंकि हम एक ही प्रवृत्ति को प्रधान मानकर आधुनिकता की चर्चा करते हैं और प्रवृत्तियों के आपसी संवाद पर हमारी दृष्टि नहीं जा

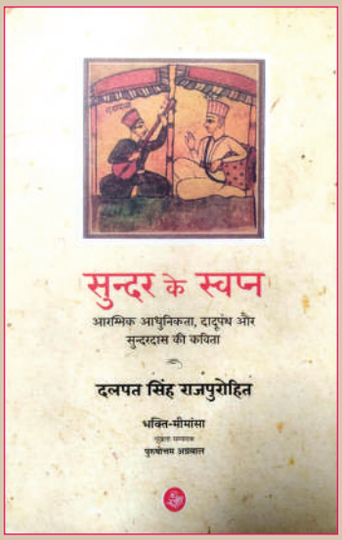

प्रकाशक :

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.

मूल्य : ₹795

पाती। रीति कविता रस विवेचना के क्षेत्र में सामाजिक या भावुक की प्रधानता पर बल देती है और लेखन प्रक्रिया के स्थान पर कविता के ग्रहण को केंद्र में लाती है। केशवदास और अन्य रीति कवियों के काव्य को सांस्कृतिक 'इतिहास' लेखन का अंग माना जाना चाहिए क्योंकि वे मुगल राजपूत व राजपूत आश्रयदाताओं के चरितों को लिखकर ऐतिहासिक कार्य करते हैं जो हिन्दी काव्य में युगांतरकारी था। मैनेजर पांडे के शब्दों में कहें तो रीतिकाल का अपने समय, समाज और इतिहास से जैसा संबंध है वैसा भक्तिकाल का नहीं है। इन सब कारणों से रीतिकाल पतन का समय न होकर आधुनिककाल का अगला चरण हो जाता है।

लेकिन आधुनिकता की इस चर्चा में फिर भी कुछ प्रश्न रह जाते हैं। जैसे कोई भी आधुनिकता हो वह स्त्री को 'माया' की श्रेणी से मनुष्य करती है जबकि जिस आरंभिक आधुनिक समय की हम बात कर रहे हैं उसके प्राय सभी कवि स्त्री को मनुष्य न मानकर माया मानते हैं। साथ ही आधुनिकता ईश्वर पर संशय से शुरू होती है जबकि इस काल के सभी कवि खुद को ईश्वर के दास मानते हैं। ईश्वर के न होने की तो उनकी कल्पना भी नहीं है जबकि आधुनिकता सबसे पहले ईश्वर की मौजूदगी पर ही प्रश्न उठाती है।

पुस्तक के दूसरे अध्याय में दलपत दादूपंथ के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर बात करते हैं। इसके लिए वे जॉन होली की 'भक्ति नेटवर्क' की अवधारणा का सहारा लेते हैं और दादूपंथ को ठेठ ग्रामीण और निर्गुण पंथ की छवि से मुक्त करते हुए उसके कस्बाई संबंधों को सामने लाते हैं। दलपत दादूपंथ की राजस्थान में प्रभावी उपस्थिति को रेखांकित करते हैं। यह ऐसा पंथ था जो शास्त्र-प्रवीण राज सत्ता द्वारा सुरक्षित था और एक ही समय में लोक और अभिजात दोनों वर्गों से संवाद कर रहा था। वे दादू और अकबर के ऐतिहासिक संबंधों की व्याख्या करते हैं। वे लिखते हैं—

"दादू की जन्मलीला परची में सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि दादू को अकबर के दरबार में कबीर के अवतार के रूप में प्रस्तुत किया गया। मतलब अकबर दादू से इसलिए मिलना चाहता था कि वह उन्हें जीवित कबीर के रूप में मानता है। आमेर के राजा भगवंत दास का दादू को अकबर के दरबार में ले जाने का आग्रह दादू के सामने कुंभनदास वाली दुविधा पैदा करता है। तब जन गोपाल कहते हैं

कि अगर को राजा दादू को सम्मान देता है तो जन-सामान्य में उनकी प्रसिद्धि बढ़ेगी। दादूपंथियों की दादू से अकबर के मिलन की यह व्यग्रता जैन साधुओं को मुग़लों से मिल रहे सम्मान से भी प्रेरित थी।"

मारवाड़ के दादूपंथी शिक्षा के लिए बनारस जाते थे। मारवाड़ के शासकों द्वारा दादूपंथ को वित्तीय सहायता भी दी जाती थी। दादूपंथ में सभी धर्म, वर्णों और स्त्रियों का दीक्षित होना उसकी उदारता को दर्शाता है। दादूपंथ की नागा शाखा प्राय राजपूत जाति से संबंधित थी। दलपत ये सभी तथ्य पांडुलिपियों के ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर बताते हैं। वणिक वर्ग की सहायता से दादूपंथी अपने मतों का निर्माण करते हैं व सामाजिक आयोजन करते हैं। शेखावाटी में दादूपंथ की प्रभावी उपस्थिति थी और ऐसा भी नहीं है कि इससे केवल दादूपंथ लाभान्वित हो रहा था। व्यापारी समुदाय को भी दादुपंथ से जुड़ने के कारण सामाजिक स्वीकृति मिल रही थी। यह पूरी प्रक्रिया दोनों के लिए उपयोगी थी।

किताब में आगे सुंदरदास के जीवन और साहित्य की खोज की गई है। सुंदरदास स्वयं वणिक समुदाय से थे। उनका जन्म दौसा में हुआ जो तत्कालीन समय में जयपुर के पास एक छोटा सा कस्बा था और दादू पंथ का एक बड़ा केंद्र था। सुंदरदास निर्गुण संतों में अपवाद स्वरूप थे क्योंकि वे न केवल शास्त्र शिक्षित थे बल्कि वे कविता की कसौटी को कवियों की सभा में सराहा जाने वाला मानते थे। वे इस मामले में भी अपवाद हैं कि अपने सभी ग्रंथों को एक पांडुलिपि में दर्ज कराते हैं। वे ज्ञानी को भक्त से ऊपर मानते हैं। उनका सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ 'ज्ञान समुद्र' है। सुंदरदास के लिए कविता करने का उद्देश्य भक्ति या हरिजस है उसके सिवा कुछ भी नहीं है। सुंदरदास नख शिख, रूप को सराहने वाली कविता की कड़ी आलोचना करते हैं और ऐसी कविता करने वालों को गंवार भी कहते हैं। वे प्रचलित मुहावरों और कहावतों के भी कुशल प्रयोगकर्ता थे। सुंदरदास के इस शास्त्रीय पक्ष के निर्माण में बनारस का असंदिग्ध महत्व है। दलपत कच्छ-भुज की ब्रजभाषा काव्यशाला का भी उल्लेख करते हैं जिसके बारे में बहुतों को नहीं पता है। यहाँ पर शुरू से संत काव्य को पढ़ाया जाता था और पूरे भक्ति काव्य से सुंदरदास अकेले थे जो इस पाठशाला के पाठ्यक्रम में थे। यह उनकी व्यापकता और लोक स्वीकृति का प्रमाण है।

पुस्तक के अंतिम अध्याय में दलपत उन्नीसवीं सदी के प्रिंट कल्चर और सुंदरदास की कविता में बहुभाषिकता पर बात करते हैं। वे कहते हैं कि सुंदरदास की कविता में दो तरह की ब्रजभाषा मिलती है एक तो सहज और चलती हुई ब्रजभाषा जो उनके 'सवैया ग्रंथ' 'पदावली' और 'साखी ग्रंथ' में उपलब्ध है जिससे उनको काफी प्रसिद्धि मिली। दूसरी कोटि उस काव्य भाषा की है जिसमें सुंदरदास काव्य विधाओं की मांग के आधार पर और परंपराओं को जानकर जरूरत के आधार पर भाषा को ढालते हैं। इस दूसरी कोटी की भाषा पर सुंदरदास का जबरदस्त अधिकार था। प्रिंट के क्षेत्र में सुंदरदास की पुस्तकों का देश के विभिन्न छापेखानों से छपना उनकी व्यापकता को दर्शाता है। 'सुंदरविलास' नाम का काव्य संग्रह सुंदरदास के नाम से सभी जगह छपता है परंतु 'सुंदरविलास' के प्रभाव को दलपत यह कह कर बताते हैं कि इसके ज़्यादा छपने के कारण वे अन्य संत कवियों की गणना में आ जाते हैं और उनका शास्त्र ज्ञान संपन्न कवि रूप पाठकों के सामने कम ही आ पाता है।

दलपत की यह पुस्तक सुगठित लेखन का एक अन्यतम उदाहरण है। पूरी पुस्तक पढ़ते हुए आप कहीं भी दोहराव को नहीं पाते जो आजकल की कई पुस्तकों में नजर आता है। आजकल यह भी देखने में आता है कि व्यक्ति अपने एक शोध कार्य को किसी एक पुस्तक में लेकर आने के बाद उससे जुड़े हुए लेखन को दूसरी और तीसरी किताब में लाता रहता है जिससे दोहराव की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। आशा है दलपत ऐसा नहीं करेंगे। यह पुस्तक हिंदी में शोधकार्य करने का एक निकस भी बनती है। साथ ही मूल स्रोतों को फिर से पढ़ने की जरूरत पर बल देती है। पुस्तक दादूपंथ, आरंभिक आधुनिकता और सुंदरदास की तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक स्तर पर स्थितियों पर विस्तार से बात करती है लेकिन सुंदरदास की कविता पर इस पुस्तक में विस्तार से चर्चा नहीं हुई है। आशा है दलपत आगामी वर्षों में सुंदरदास की कविता पर इस पुस्तक को बिना दोहराए विस्तार से चर्चा करेंगे।

———•••———

सहायक आचार्य (हिंदी) राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर

मेरी पेरिस यात्रा इतिहास से साक्षात्कार

— प्रो. शिवशंकर अवस्थी

भारत की राजधानी दिल्ली से लगभग 6500 किलोमीटर दूर 8.5 घंटे की उड़ान के बाद विमान से उतरते ही सुखद और सकारात्मक आभास हुआ मानो सारी थकान दूर हो गई। हो भी क्यों ना,सब जगह साफ सफाई,कूड़े करकट का कहीं नामोनिशान तक नहीं। उस दिन और दिनों की तरह विमानों की व्यस्त आवाजाही वाली कोई भीड़ नहीं थी, इसलिए जल्दी ही हवाई अड्डे की अनावश्यक औपचारिकताओं से मुक्ति मिल गई। बाहर आये तो टैक्सी भी मिल गई। टैक्सी में सामान रखा और जागरूक राहगीर की तरह एहतियात के तौर पर टैक्सी का नंबर मोबाइल में क्लिक करने लगा। लेकिन ये क्या, तुरंत ही टैक्सी चालक के प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। टैक्सी चालक अफ्रीकी मूल का फ्रेंच नागरिक था। उसने कहा—'आप ये क्या कर रहे हो? ये अधिकृत टैक्सी है और इसमें आपको कोई परेशानी नहीं होगी। इस तरह से फोटो खींचना गलत है।' जिस मुखरता और आत्मविश्वास से उसने अपनी बात की,वह न केवल चौंकाने वाला बल्कि मंथन का भी विषय था। मौके की नजाकत को भांपते हुए मैंने कहा ,ठीक है, मैं फोटो नहीं खींचता।

मंजिल तक पहुँचने के लिए बहुत समय था। पेरिस हवाई अड्डे से 14 किलोमीटर दूर वीरोफले में किराये पर लिए गए एक अपार्टमेंट की ओर बढ़ती टैक्सी की खिड़की से झांकते हम किसी दुल्हन की तरह सजे-धजे पेरिस को निहार रहे थे। बड़ा ही मनोहारी दृश्य था,रंग बिरंगा पेरिस जगमगा रहा था और टैक्सी में बैठे ही आँखें और दिल दोनों मानों परमानंद की अनुभूति कर रहे थे। टैक्सी चालक ने कहा कि उसकी टैक्सी में वाइफाइ की सुविधा है। उसने पासवर्ड बताया और अब हम टैक्सी के बाहर वैश्विक दुनिया से जुड़ चुके थे। 'आप भारतीय हैं', जिज्ञासा से ड्राईवर ने पूछा, हमने कहा 'हाँ', 'ओके', वह जोर से हंसा, 'नरेंद्र मोदी....'। मुझे आश्चर्य हुआ। 'यह टैक्सी चालक नरेंद्र मोदी जी को जानता है'। वह बोला—'नरेंद्र मोदी ने भारत में कंप्यूटर के क्षेत्र में क्रांति ला दी, इतना बड़ा काम कोई नहीं कर सका'। मैंने पूछा—'आप नरेंद्र मोदी के अलावा भारत के और किस व्यक्ति को याद कर सकते हैं'? वह उसी मुस्कुराहट के साथ बोला—'शाहरुख खान...' मैं फिर से आश्चर्यचकित। मेरे सामने एक ऐसा व्यक्ति था,जो बड़ी मुश्किल से अंग्रेजी बोल पा रहा है, हिंदी बोलनी तो आती नहीं, लेकिन शाहरुख खान को याद करता है। उसने बताया कि वो कभी-कभी शाहरुख खान की हिंदी फ़िल्में देखता है और उनका नृत्य उसे बहुत पसंद है।

सितंबर के तीसरे सप्ताह में हम लोग पेरिस पहुंचे थे, टैक्सी चालक ने अपने टूटी-फूटी अंग्रेजी के साथ, जिसमें अनेक बार फ्रेंच शब्दों का अनचाहे संगम हो जाता था, हमसे भरपूर बातचीत की,हालांकि उसकी बात को बड़े ध्यान से सुनना पड़ रहा था, लेकिन जो भी हो अनुभव सुखद था। उसके लहज़े में आत्मीयता थी, हमें भी उसकी बात को समझने की इच्छा थी। वह बोला-आप

भाग्यशाली हैं जो इस समय आये हैं। मैंने पूछा कैसे? उसने कहा कि "सितंबर–अक्तूबर का महीना फ्रांस में घूमने के लिए सबसे अच्छा समय है। अगस्त के अंत तक बाहर से आए विदेशी पर्यटकों की भीड़ खत्म हो चुकी होती है। इस समय में फ्रांस केवल स्थानीय फ्रेंच वासियों और आप जैसे भाग्यशाली नए पर्यटकों के भ्रमण के लिये रह जाता है'। मैंने अपनी पत्नी अंजलि की ओर मुस्कुराते हुए देखा। अंजलि बोली, 'लेकिन हम पेरिस पहली बार नहीं आ रहे हैं, हम तीन-चार बार आ चुके हैं,यहाँ हमारी बेटी रहती है,उसने यहीं फ्रांसीसी नागरिक से शादी की है और अब वह माँ बनने वाली है।' टैक्सी चालक ने हम लोगों को नाना—नानी बनने की बधाई दी और हमारी निश्चित मंजिल पर भी पहुंचा दिया। वो वहां तब तक मौजूद रहा,जब तक कि हमें अपने अपार्टमेंट का मालिक नहीं मिल गया और हमारा सामान कमरे में पहुंच गया।

फ्रांस में हमारी शुरुआत ही बहुत शानदार रही। जब हम पेरिस पहुंचे तो पतझड़ ने बागों और मैदानों को अपने आगोश में ले रखा था। अपने अपार्टमेंट के बाहर बड़ा सा बाग है। यह बाग पूरी तरह हरी -भरी घास से आच्छादित है। अपार्टमेंट के बाहरी तरफ दीवार की जगह विशाल शीशा था,जिससे पतझड़ की पूरी जवानी की खूबसूरती को मैं निहारता रहता था। पीले पड़ चुके सूखे पत्तों के बीच हरी—हरी घास के द्वीप दिखाई पड़ रहे थे। धीरे—धीरे वे द्वीप भी पीले -पीले पत्तों से ढक गए। एक दिन ऐसा आया जबकि वहां देखकर कोई कह ही नहीं सकता था कि नीचे हरी घास भी है। लेकिन फिर हरी घास दिखने लगी और अधिकांश बाग में वह दिखने लगी, क्योंकि वैक्यूम क्लीनर से एक कर्मचारी ने सफाई कर दी थी। लेकिन प्रकृति से लड़ना इतना आसान नहीं है। थोड़े ही दिनों में फिर से वही हालत हो जाती है। पूरे पेरिस में पेड़ों की भरमार है, यहां आपको 400 वर्ष पुराने पेड़ भी देखने को मिल जाएंगे, जिनके तनों की मोटाई देखना ही विशेष दर्शनीयता का संयोग कहेंगे। कुछ पेड़ों में पतझड़ धीरे-धीरे आता है और धीरे-धीरे पत्ते झड़ते हैं, कुछ में देर स।

फ्रांस में हमारी शुरुआत ही बहुत शानदार रही। जब हम पेरिस पहुंचे तो पतझड़ ने बागों और मैदानों को अपने आगोश में ले रखा था। अपने अपार्टमेंट के बाहर बड़ा सा बाग है। यह बाग पूरी तरह हरी -भरी घास से आच्छादित है। अपार्टमेंट के बाहरी तरफ दीवार की जगह विशाल शीशा था,जिससे पतझड़ की पूरी जवानी की खूबसूरती को मैं निहारता रहता था। पीले पड़ चुके सूखे पत्तों के बीच हरी—हरी घास के द्वीप दिखाई पड़ रहे थे। धीरे—धीरे वे द्वीप भी पीले -पीले पत्तों से ढक गए। एक दिन ऐसा आया जबकि वहां देखकर कोई कह ही नहीं सकता था कि नीचे हरी घास भी है। लेकिन फिर हरी घास दिखने लगी और अधिकांश बाग में वह दिखने लगी, क्योंकि वैक्यूम क्लीनर से एक कर्मचारी ने सफाई कर दी थी। लेकिन प्रकृति से लड़ना इतना आसान नहीं है। थोड़े ही दिनों में फिर से वही हालत हो जाती है।

अपने अपार्टमेंट पहुंचने के थोड़ी देर बाद दामाद और समधी ह्यूबर्ट तथा समधन ऐन आ गए। बेटी का मकान छोटा है। पिछली बार तो वहीं ठहरे थे, लेकिन अब घर में नए सदस्य का आगमन निश्चित था, उसे भी तो जगह चाहिए थी, इसलिए हमने एक अपार्टमेंट दो महीने के लिए ही लिया था। बेटी अस्पताल में थी और किसी भी समय बच्चे को जन्म दे सकती थी। हम सब उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ह्यूबर्ट ने अभी -अभी ही सेवानिवृत्ति ली थी। उन्होंने वादा किया कि बच्चे के जन्म के बाद घूमने का कार्यक्रम बनाएंगे,ये तो थी एक दादा की उत्सुकता और उल्लास। दूसरी तरफ ,हमारी भी इस बार घूमने में बहुत रुचि नहीं थी। बिटिया के घर एक नवजात शिशु आने वाला था जो कि हमें नाना कहकर पुकारेगा,जीवन के इस पड़ाव में सम्मान ही नहीं विशेष आनंद

की अनुभूति का इंतजार था। ये अनुभूति अपने आप में सुख दे रही थी। आज ज्यादा बात नहीं हो पायी क्योंकि दामाद को अस्पताल पहुंचना था। हम शीशे की दीवार से झांकते हुए बरसते पानी को देख रहे थे।

पेरिस में मानसून जैसी कोई अवधारणा नहीं है। मानसून तो दुनिया भर में ऋतुओं के लिए विख्यात अपने भारत देश के मौसम की विशेषता है। यहाँ पतझड़ के साथ ही बरसात शुरू हो जाती है और पतझड़ के आगे बढ़ते-बढ़ते बरसात भी बढ़ती है। कुछ दिन तो बरसात रुकी ही नहीं, हर दिन हमने देखा बारिश रुकने का नाम नहीं ले रही,लगातार जारी रही। यहाँ की बरसात की एक विशेषता नजर आई,यह सीधे गिरती है, टेढ़ी नहीं। कभी कभार ही हवा के तेज झोंके के आने से बारिश के छींटे टेढ़ी गति में गतिमान नजर आते हैं,ऐसे में यदि आपने ऊपर से बरसाती पहनी हो,सर ढक लिया हो तो फिर किसी प्रकार की चिंता शेष नहीं रहती, नीचे पैन्ट गीली नहीं होगी। इसे मैं स्वयंसिद्ध अनुभव इसलिए कहूँगा कि दो महीने में केवल एक बार ऐसा संयोग हुआ कि बरसात के कारण से मेरी पैंट का नीचे का हिस्सा गीला हुआ होगा।

हम जिस निमित्त फ्रांस पहुंचे थे, प्रभु की कृपा से वह बेला आयी,हमारी बिटिया ने एक बहुत ही सुन्दर और प्यारे बालक को जन्म दिया। पहले से ही उसका नामकरण तय हो चुका था—राहुल, फ्रेंच भाषा में राऊल को ध्वनित करता है। अब जहाँ एक ओर सभी परिजन अपने नवागंतुक बच्चे के साथ आनंद का अनुभव ले रहे थे और तो इसके साथ ही बीच-बीच में हम लोगों ने अपना भ्रमण कार्य भी जारी रखा।

पेरिस सुंदरता और संस्कृति का प्रतीक है। किसी समय फ्रांस का भी अपने आप में एक बड़ा साम्राज्य था,बेशक आज वैसा वैभव और विस्तार नहीं दिखाई देता लेकिन उसके प्रतीक रूप ,में ही आज फ्रांस का जो बहुसांस्कृतिक स्वरूप और विविध वाद से युक्त परिवेश दिखता है,वो इसकी व्याप्ति की पुष्टि करता है। फ्रांस ने इस विचार और भाव को सहज रूप में दिल से स्वीकार किया है। ,इस कारण अंतरजातीय और अंतर्नस्लीय विवाह यहाँ बड़ी संख्या में हो रहे हैं,कमाल की बात ये है कि यहां काले-गोरे का भेद तो नहीं बल्कि उसका संगम जरूर नजर आता है। हम एक परिवार से मिलने गए। हमारे दामाद के मित्र एडवर्ड सी गो के बच्चे का जन्मदिवस था । इस परिवार में पति गोरा फ्रांसीसी था,जबकि पत्नी कैरेबियन। पत्नी के पिता तो फ्रांसीसी थे, लेकिन माँ अफ्रीकी और दक्षिण भारत के मिश्रण से युक्त फ्रांसीसी । उसकी बहनों भी अफ्रीकी वंश की थीं ।

एडवर्ड के एक भाई ने आइरिश मूल की एक फ्रांसीसी लड़की से शादी की थी, जबकि तीसरे भाई ने एक भारतीय से शादी की थी। कुल मिलाकर यह एक वैश्विक परिवार था और सभी बड़ी प्रसन्नता से मिल रहे थे। सब ने दो -दो पैगवाइन के लिए। इसके बाद केक कटा और फ्रांसीसी भाषा में जन्मदिवस की शुभकामनाएं दी गई। मेरी पत्नी ने अंग्रेजी में हैप्पी बर्थडे गाना शुरू किया। जिसके बाद सबसे ने केक खाया और इसके बाद जन्म दिवस की पार्टी खत्म हुई। मैं सोच रहा था कि अंत में खाना होगा, तो ऐसा कुछ नहीं हुआ, हाँ सब उपहार लेकर आये थे। मेरे समधी ने बताया कि यहाँ जन्म का उत्सव ऐसे ही मनाया जाता है। धूमधाम के नाम पर गुब्बारे सजाया जा सकते हैं, लेकिन खाने -पीने की

एक समय था जब कि फ्रांसीसी आलू से अनभिज्ञ थे और इतना ही नहीं, यहाँ चीनी भी आम लोगों को नसीब नहीं थी। आलू का फ्रांस में आगमन 17वीं शताब्दी में हुआ और 18वीं शताब्दी के अंत में उसका व्यापक उपयोग हो रहा था। आलू का लाभ यह था कि इसे काफी समय तक सुरक्षित रखा जा सकता था। यह जल्दी खराब नहीं होता और भूख को भी शांत करता था। आलू के पहले शलजम का उपयोग खाने के लिए किया जाता था। 18वीं शताब्दी के अंत में आलू को भोजन के रूप में महत्वपूर्ण पकवान की मान्यता मिली और फ्रांस को भी बारम्बार पड़ने वाले अकाल से मुक्ति मिली।

कोई खास व्यवस्था नहीं होती। उन्होंने ने हमें यह भी बताया कि फ्रांस में बहु-सांस्कृतिक परिवारों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। किसी को इससे आपत्ति नहीं लेकिन बढ़ती मुस्लिम कट्टरता से भी लोग बहुत चिंतित है। इसके लिए वे फ्रांस के राजनीतिज्ञों को दोषी ठहराते हैं कि उन्होंने बाहर से आने वाले लोगों के संबंध में कोई नियम नहीं बना या, अपने वोटों के लिए फ्रांस सबके लिए खुला रखा। तब तक मध्य पूर्व में हमास और इजराइल का युद्ध शुरू हो चुका था और पेरिस में हमास के पक्ष में विशाल प्रदर्शन का आयोजन भी हुआ था।

पेरिस एक ऐतिहासिक शहर है। यहाँ एक ओर इतिहास की विरासतें मिलती है, जिन्हें फ्रांसीसियों ने बड़े गर्व के साथ सहेज रखा है तो दूसरी और यहाँ संग्रहालयों की धूम है। हमारे समधीजी को घूमने ओर घुमाने का शौक है। वे हमें हमेशा पेरिस का भ्रमण कराते रहे हैं । लेकिन एक दिन फ़ोन करके उन्होंने जिस संग्रहालय में चलने की बात की, वो तो अनोखा था। ये था—जीवंत वृक्ष संग्रहालय यानी कि पेड़ों का संग्रहालय। इसे आबरीटम (Arboretum) के नाम से पुकारा जाता है। समधीजी ने बताया कि इसे फ्रांस के राजा लुईस चौदह ने बनवाया था। फ्रांस के लोग आज भी लुईस चौदह की याद करते हैं। उसने 70 साल तक शासन किया और फ्रांस का जमकर विकास किया। मैं तो राजनीतिक शास्त्र का विद्यार्थी हूँ और लुईस चौदह को उसकी प्रसिद्ध सूक्ति के लिए याद करता हूँ जिसमें उसने बड़े शान से घोषणा की थी कि मैं ही राज्य हूँ । वर्साय के प्रसिद्ध राजमहल का निर्माण उसी ने करवाया था। उसके समय में फ्रांस के साम्राज्य का बहुत विस्तार हुआ और फ्रांस के हाथ बहुत सारे उपनिवेश लगे , इसके विपरीत उसके पुत्र लुईस पंद्रह को वो पसंद नहीं करते हैं क्योंकि उसने फ्रांस के अनेक उपनिवेश गवांये । वर्साय के राज़महल के बाहर उसकी विशाल मूर्ति आज भी उसके वैभव काल की याद ताजा करती है। लुईस चौदह द्वारा स्थापित 200 हेक्टेयर में फैले इस संग्रहालय में पांच महाद्वीपों से लाए गए विभिन्न वृक्षों की 2500 प्रजातियां हैं। यहाँ अनेक पेड़ों के तने की मोटाई देख दर्शक आश्चर्यचकित हो जाते हैं, अनेक वृक्षों की आयु 300 वर्ष से भी अधिक है। इसमें बड़ी संख्या में फ्रांसीसी घूमने आते हैं, हालांकि यहां प्रवेश निशुल्क नहीं है। सात यूरो का टिकट लेना पड़ता है। ये संग्रहालय 1865 तक फ्रांस की राजकीय व्यवस्था का अंग रहा और 1922 में इसे संग्रहालय का नाम दे दिया गया।

इस संग्रहालय में घूमते हुए समधीजी से अनेक रोचक जानकारियां मिलीं । एक समय था जब कि फ्रांसीसी आलू से अनभिज्ञ थे और इतना ही नहीं, यहाँ चीनी भी आम लोगों को नसीब नहीं थी। आलू का फ्रांस में आगमन 17वीं शताब्दी में हुआ और 18वीं शताब्दी के अंत में उसका व्यापक उपयोग हो रहा था। आलू का लाभ यह था कि इसे काफी समय तक सुरक्षित रखा जा सकता था। यह जल्दी खराब नहीं होता और भूख को भी शांत करता था। आलू के पहले शलजम का उपयोग खाने के लिए किया जाता था। 18वीं शताब्दी के अंत में आलू को भोजन के रूप में महत्वपूर्ण पकवान की मान्यता मिली और फ्रांस को भी बारम्बार पड़ने वाले अकाल से मुक्ति मिली ।

इसी तरह से चीनी 11वीं शताब्दी में मध्य पूर्व में ईसाइयों के पवित्र संघर्ष के दौरान सैनिकों द्वारा फ्रांस में लाई गई और लगभग 500 वर्षों तक चीनी का उपयोग विलासिता का प्रतीक रहा। इसका उपयोग राजघराने और अमीर परिवार

ही कर सकते थे। पहले चुकंदर से चीनी बनाई जाती थी। फिर वेस्टइंडीज से ईख से बनी चीनी सस्ती और सुलभ हो गई। इसी कारण से यूरोप में साम्राज्यवादियों के उपनिवेशों में गन्ने की खेती की जाती थी। शुरू में इसका उत्पादन ग्रामीणों से जबरदस्ती कराया जाता था। बाद में गुलाम प्रथा का विरोध होने लगा तो अनेक चीनी उत्पादकों ने यूरोप में विज्ञापन आदि के माध्यम से प्रचार करना शुरू किया कि उनकी चीनी गुलामों द्वारा नहीं बनाई जाती बल्कि ये पूर्व से भारत से आती थी। ये चीनी महंगी पड़ती थी, लेकिन यूरोप के उपभोक्ताओं ने इसे खरीदना बेहतर समझा। समधीजी बताते हैं कि आलू और चीनी को खाद्य उपयोग के रूप में अपनाने से फ्रांस वासियों के स्वास्थ्य में अभूतपूर्व सुधार हुआ और उनकी कार्य-क्षमता में 30% की वृद्धि हुई।

फ्रांसीसियों को हरियाली और फूलों से बेहद लगाव है। इनके घर भी बहुत साफ-सुथरे ,पुते हुए और रंग बिरंगे मिलेंगे। और हर घर में आपको बाग-बगीचे मिलेंगे जिनमें रंग बिरंगे फूल घर की खूबसूरती पर चार चाँद लगा देते हैं। अभी पतझड़ चल रहा था, लेकिन सड़कों के किनारे रंगीन पौधे लगाए जा रहे थे। पतझड़ में इन फूलों को सरकार द्वारा लगाया जाता है। सड़कों के किनारे खुली जगह में विक्री के लिए रंगीन फूल और छोटे-छोटे पौधे उपलब्ध होते हैं और फ्रांसीसी बड़े प्रेम से उन्हें खरीदकर घर ले जाकर लगाते हैं।

पेरिस में पौधा महोत्सव मनाने की परंपरा है। हमें यह जितना भी विचित्र लगे लेकिन यहां यह आयोजन निरंतर प्रत्येक वर्ष होता है। एक दिन समधीजी ने पौधा महोत्सव जाने का कार्यक्रम बनाया। यह शेटो दे बोरेगॉर्ड (Chateau de Beauregard) के महल में था। पेरिस के दक्षिण में स्थित इस महल को देखने का किसी का भी मन नहीं करता लेकिन यहाँ के पौधा महोत्सव में शामिल होने के लिए तो जैसे सारा पेरिस इकट्ठा हो जाता है। यहाँ फ्रांसीसी प्रणाली के बाग हैं जिसमें तरह-तरह के फल-फूल और सब्जियां हैं । लोग यहां परिवार सहित आते हैं और खाने योग्य पौधों में भी विशेष रुचि दिखाते हैं । लगभग सभी परिवार लौटते वक्त अपने साथ कुछ ना कुछ ले जा रहे थे । 17वीं शताब्दी में बने इस बाग में खाने योग्य पौधों पर तो विशेष तौर पर व्याख्यान आयोजित किया गया था । एक विशेषज्ञ थे और उनके साथ एक किसान, जोकि बड़े प्रेम से आगुंतकों का स्वागत कर रहे थे और उनकी जिज्ञासा शांत कर रहे थे। समधीजी विशेषज्ञ से बात करते हैं, मेरा परिचय कराते हैं। अब वे हम दोनों के बीच अनुवादक का कार्य भी कर रहे थे। यहाँ पर यह भी पता चला कि उन्होंने 6000 पौधों और फ्रांस की 300 नर्सरियों का डेटाबेस तैयार किया है और फ्रांस में उपलब्ध किसी भी पौधे के बारे में समस्त जानकारी इस डेटाबेस में मिलती है। इस प्रदर्शनी में यह भी दावा था कि यहाँ सभी प्रकार के खाने योग्य पौधे उपलब्ध थे। ये महोत्सव घरों में छोटे-छोटे उद्यान लगाने वालों से लेकर बड़े -बड़े बाग बगीचों के प्रतिनिधियों के आकर्षण का केंद्र था।

फ्रांस के लोगों में अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति बहुत ही लगाव है। प्रवेश करने पर स्वागत कक्ष में मैंने बताया कि मैं हिंदी अकादमी, दिल्ली सरकार की कार्यकारिणी का सदस्य हूँ तो मुझे उसमें उपलब्ध फ्रेंच अकादमी के कर्मचारी से मिलवाया गया। फ्रांसिस लाइब्रेरी में सहायक का कार्य करते हैं। उन्होंने बताया कि फ्रेंच अकादमी बिल्कुल लोकतांत्रिक व्यवस्था के अनुसार बनाई गई है। इसके 40 सदस्य हैं जो जीवन भर के लिए निर्वाचित होते हैं। हालांकि उन्हें हटाए जाने का प्रावधान भी है। हमें पता चला कि ये अकादमी 1635 से काम कर रही है। फ्रांसीसी क्रांति के तुरंत बाद इसकी स्थिति खराब हो गई थी, लेकिन नेपोलियन ने 1803 में इसकी पुनर्स्थापना की थी ,यह अकादमी फ्रेंच भाषा के आधिकारिक शब्दकोश बनाने के उद्देश्य से बनी है। हमें यह भी पता चला कि हर वर्ष अकादमी फ्रेंच भाषा में नए-नए शब्दों को शामिल करती है।

हमें यही पता चला कि इस उद्यान में मार्च से लेकर सितंबर तक हर माह कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं।

एक और क्षेत्र जो कि पेरिस वासियों को बहुत प्रिय है वह है—डेजर्ट दे रेट्ज़ (Le desert de Retz)। 18वीं शताब्दी में रेगिस्तान या डेज़र्ट एक ऐसी जगह को कहा जाता था जो कि अलग-थलग हो, दुनिया से पूरी तरह से कटा हो। 38हेक्टेयर में फैले और हरियाली से परिपूर्ण इस डेज़र्ट का निर्माण 18वीं शताब्दी में हुआ था। उस जमाने में यहाँ पर 20 इमारतें भी थीं। उनमें से अब केवल 10 ही बची हैं, शेष खंडहर में बदल चुकी हैं। फ्रांसीसी क्रांति के दौरान और उसके बाद कुछ समय तक यह क्षेत्र बहुत ही जीवंत रहा। यहां वॉलटेयर जैसे महान साहित्यकार और राजनीतिक विचारक आया करते थे। इस क्षेत्र को ज्ञानोदय काल की धरोहर के रूप में भी याद किया जाता है। उस समय इस प्रकार के बाग यूरोप के अनेक शहरों में थे। लेकिन यही बाग है जो कि मूल अवधारणा के अनुसार सुरक्षित रखा गया है। कुछ परिवर्तन अवश्य हुए हैं, लेकिन इसके निर्माता फ्रैंकिइसरेसीन यदि आज वापस आ जाएं तो उन्हें योजना में कोई खास परिवर्तन नहीं मिलेगा। फ्रांसीसी क्रांति के कुछ समय पश्चात यह क्षेत्र काफी समय तक उपेक्षित रहा और इमारतें खंडहरों में बदल गई। 1970 के दशक में स्थानीय नगरपालिका को यह क्षेत्र मिला और उसने इसका संरक्षण किया और अब यह डेजर्ट्स देश विदेश में बहुत ही लोकप्रिय है।

हमें फ्रेंच अकादमी देखने गए। समधीजी मेरे साथ थे। फ्रांस के लोगों में अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति बहुत ही लगाव है। प्रवेश करने पर स्वागत कक्ष में मैंने बताया कि मैं हिंदी अकादमी, दिल्ली सरकार की कार्यकारिणी का सदस्य हूँ तो मुझे उसमें उपलब्ध फ्रेंच अकादमी के कर्मचारी से मिलवाया गया। फ्रांसिस लाइब्रेरी में सहायक का कार्य करते हैं। उन्होंने बताया कि फ्रेंच अकादमी बिल्कुल लोकतांत्रिक व्यवस्था के अनुसार बनाई गई है। इसके 40 सदस्य हैं जो जीवन भर के लिए निर्वाचित होते हैं। हालांकि उन्हें हटाए जाने का प्रावधान भी है। हमें पता चला कि ये अकादमी 1635 से काम कर रही है। फ्रांसीसी क्रांति के तुरंत बाद इसकी स्थिति खराब हो गई थी, लेकिन नेपोलियन ने 1803 में इसकी पुनर्स्थापना की थी। यह अकादमी फ्रेंच भाषा के आधिकारिक शब्दकोश बनाने के उद्देश्य से बनी है। हमें यह भी पता चला कि हर वर्ष अकादमी फ्रेंच भाषा में नए-नए शब्दों को शामिल करती है। इसमें विदेशी भाषा के शब्द भी होते हैं। वैसे फ्रांसीसियों को अपनी भाषा पर गर्व है। उनका दावा है कि फ्रेंच भाषा अंग्रेजी भाषा से अधिक समृद्ध और प्राचीन है, इसलिए वह जब फ्रांसीसी बोलते हैं तो उसमें विदेशी भाषा के शब्द नहीं होते, केवल फ्रेंच अकादमी द्वारा निश्चित आधिकारिक शब्दों का प्रयोग होता है। मुझे याद आता है कि भारत में आम जनता और नेतागण जिस भाषा का उपयोग करते हैं, वह हिंग्लिश है। बिना अंग्रेजी भाषा के शब्द के कोई वाक्य पूरा नहीं होता। फ्रांसीसी लोगों को विशेष

पितृ पक्ष में हम भारतीय अपने पुरखों को याद करते हैं और उनका धन्यवाद करते हैं। इसी तरह से फ्रांसीसी लोग 1 नवंबर को संत दिवस मनाते हैं। इस दिन फ्रांसीसी कब्रगाह में जाते हैं और अपने रिश्तेदारों व पूर्वजों की कब्रों के समक्ष प्रार्थना कर उनका धन्यवाद करते हैं। मैं समधीजी के साथ कब्रगाह में गया। कब्रगाह तो पूरी तरह से किसी दुल्हन की तरह सजी हुई थी। रंग बिरंगे फूलों से सजे गुलदस्ते हर कब्र में दिखाई दे रहे थे, लेकिन कुछ में नहीं थे। समधीजी ने बताया कि जिन कब्रों की देखभाल नहीं की जाती या अकेला छोड़ दिया जाता है तो उसमें एक नोटिस लगा दिया जाता है और आवश्यकता पड़ने पर उस कब्र से ताबूत निकालकर उसे सामूहिक कब्र में दफनाया जाता है और वहां नई कब्र बन जाती है। अब ईसाइयों में भी दाह संस्कार की प्रथा शुरू हो गई है, हालांकि ईसाई धर्म में यह व्यवस्था नहीं है।

तौर पर अंग्रेजी भाषा पसंद नहीं है। बहुत से लोग अंग्रेजी जानते हैं लेकिन बोलते केवल तभी हैं जब उन्हें पता चलता है कि आपको फ्रेंच नहीं आती। इस फ्रेंच अकादमी में हिंदी की पुस्तकें हैं लेकिन हम उन्हें देख नहीं पाए। अधिकारियों का कहना था कि इसके लिए हमें बाद में आना होगा और कुछ औपचारिकताओं को पूरा करना होगा। वैसे यहाँ की लाइब्रेरी काफी बड़ी है और दूर दूर से फ्रेंच भाषा के माध्यम से शोध करने वाले छात्र यहाँ पढ़ने के लिए आते है।

फ्रेंच अकादमी में आकर मुझे एक और चौंकाने वाली बात पता लगी। इंग्लैंड का राष्ट्रीय गान 'गॉड सेव द किंग' मूल तौर पर फ्रांसीसी भाषा में लिखा गया था। इसके पीछे भी एक कहानी है, जो कि बहुत रोचक है। फ्रांस के राजा लुईस चौदह भगंदर रोग से पीड़ित थे। इलाज के लिए एक नाई चार्ल्सफैंकोईसफेलिक्स को बुलाया गया। उन दिनों डॉक्टर सर्जरी नहीं करते थे और दांत निकालने, भगंदर, रक्तस्राव रोकने जैसे काम भी नहीं किया करते थे। यह काम नाई किया करते थे। लेकिन चार्ल्स घबरा गया, क्योंकि ऑपरेशन करने में असफल होने पर उसे राजा का कोपभाजन होना पड़ता,लेकिन शीघ्र उसे समझ में आ गया कि उसे ऑपरेशन करना ही होगा क्योंकि उसके पास इसके सिवा कोई विकल्प भी नहीं है।

चार्ल्स ने ऑपरेशन के लिए छह महीने का समय मांगा। वह छह महीने ऐसे ही ऑपरेशन करके पारंगत होना चाहता था। उसने राजा से यह भी मांग की कि उसे अस्पताल व जेलों से भगंदर के रोगी

उपलब्ध कराए जाएं ताकि वो उनका ऑपरेशन कर पूर्ण तौर पर योग्य बन जाये। राजा ने दोनों बातें मान लीं। चार्ल्स को अस्पताल व जेलों से ऐसे लोगों को उधार लेने का अधिकार दिया गया जिन्हें राजा की तरह भगंदर रोग था। उसने कुल मिलाकर 75 लोगों के ऊपर प्रायोगिक ऑपरेशन किये। कुछ बच गए, कुछ मर गए। लेकिन अब चार्ल्स को विश्वास हो गया कि वह राजा के भगंदर का ऑपरेशन कर सकता था। तत्पश्चात उसने बिना बेहोश किए लुईस का ऑपरेशन किया, यह ऑपरेशन3 घंटे चला और सौभाग्य से राजा बच गया। पेरिस में चिकित्सा के इतिहास के प्रमाण के रूप में म्यूज़ियम में आज भी उस ऑपरेशन के औजार सुरक्षित रखे गए हैं, जिनके बल पर चार्ल्स ने ऑपरेशन किया था।

राजा के ऑपरेशन का समाचार गोपनीय रखा गया, लेकिन फिर भी जनता में एक खबर फैल गई। पूरे देश में लुईस के लिए प्रार्थना की गई। वर्साय से कुछ मील

दूर एक स्कूल था रॉयलगर्ल्स स्कूल। इस स्कूल की प्रशासिका ने 'गॉड सेव द किंग' गीत लिखा और स्कूल के बच्चे उसे रोज़ स्कूल में गाते थे और ईश्वर से रोज राजा को बचाने की प्रार्थना करते थे। स्वस्थ हो जाने के बाद राजा लुईस स्कूल में गया और फिर खुशी और उत्साह के साथ यह गीत गाया गया। इसके बाद यह परंपरा हो गई कि जब कभी लुईस स्कूल जाता तो ये गीत गाया जाता। 28 साल बाद 1714 में इंग्लैंड का एक संगीतकार हैंडल उस स्कूल से गुजर रहा था और उसने वह गीत सुना ,उसने इस गीत का अंग्रेजी में अनुवाद किया और इस तरह से यह गीत इंग्लैंड पहुंचा और 1745 में संभवतः इसे पहली बार वहाँ भी गाया गया और यह अंग्रेजों का राष्ट्रगान हो गया। उक्त अधिकारी से ये बात भी पता चली कि अमेरिकी राष्ट्रगान की धुन भी गॉड सेव द किंग से ही ली गई है।

पितृ पक्ष में हम भारतीय अपने पुरखों को याद करते हैं और उनका धन्यवाद करते हैं। इसी तरह से फ्रांसीसी लोग 1 नवंबर को संत दिवस मनाते हैं। इस दिन फ्रांसीसी कब्रगाह में जाते हैं और अपने रिश्तेदारों व पूर्वजों की कब्रों के समक्ष प्रार्थना कर उनका धन्यवाद करते हैं। मैं समधीजी के साथ कब्रगाह में गया। कब्रगाह तो पूरी तरह से किसी दुल्हन की तरह सजी हुई थी। रंग बिरंगे फूलों से सजे गुलदस्ते हर कब्र में दिखाई दे रहे थे, लेकिन कुछ में नहीं थे। समधीजी ने बताया कि जिन कब्रों की देखभाल नहीं की जाती या अकेला छोड़ दिया जाता है तो उसमें एक नोटिस लगा दिया जाता है और आवश्यकता पड़ने पर उस कब्र से ताबूत निकालकर उसे सामूहिक कब्र में दफनाया जाता है और वहां नई कब्र बन जाती है। अब ईसाइयों में भी दाह संस्कार की प्रथा शुरू हो गई है, हालांकि ईसाई धर्म में यह व्यवस्था नहीं है। जो लोग चाहते हैं कि मरने के बाद उनके नामोनिशान मिट जाएं। उनका उनकी इच्छानुसार दाह संस्कार किया जाता है। मैंने यहां की कब्रों को देखा,सबको क्रम संख्या से अंकित किया गया था और कब्रगाह के मुख्य प्रवेश द्वार में एक बैनर से खबरों की संख्या और उसमें सो रहे व्यक्ति का नाम लिखा था। यहां फ्रांस के विभिन्न युद्धों में मारे जाने वाले शहीदों की कब्रों के नाम अलग से लिखे गए थे। ह्यूबर्ट ने अपने रिश्तेदार की कब्र में माला चढ़ाई और फिर शहीदों की कब्रों में घूमते हुए हम बाहर आ गए। लेकिन यहां मुझे कोई पुजारी दिखाई नहीं दिया क्योंकि समधीजी बताते हैं कि पूर्वजों को याद करने के लिए किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं होती। मैंने उन्हें कहा कि हमारे यहां भी ऐसा होता है। फर्क ये है कि हम अपने घरों में ही पूर्वजों को याद करते हैं।

एक दिन समधीजी ने एक और म्यूज़ियम चलने का सुझाव दिया। उन्होंने ये कहकर मेरी उत्सुकता बढ़ा दी कि इस लेम्बीनेट म्यूज़ियम (Musee Lambinet) को देखने के बाद मुझे फ्रांसीसी क्रांति का इतिहास हमेशा के लिए रट जाएगा। हम 10:00 बजे सुबह लेम्बीनेट म्यूजियम पहुंच गए। समधीजी हमारा इंतजार कर रहे थे, टिकट तो वे ऑनलाइन ले ही चुके थे। समधीजी से पता चला कि कि इस भवन को लुईस पंद्रह के एक ठेकेदार ने बनवाया था। उनके वंशजों ने सरकार को इस विशाल भवन को इस शर्त पर दिया कि इसमें अजायब घर बनाया जायेगा। तीन मंजिल और 35 कमरे वाले इस म्यूज़ियम में मूर्तिकला, चित्रकारी,चित्रकला और नक्काशी के अद्भुत उदाहरण देखने को मिले। यहाँ ज्ञानोदय काल से लेकर मध्य 20वीं शताब्दी तक के फर्नीचर तथा अन्य अनमोल कलात्मक वस्तुएं प्रदर्शित हैं।

यहां एक ओर लुई चौदह की मूर्ति है तो दूसरी ओर फ्रांसीसी क्रांति के प्रेरकों— वॉल्टर और रूसो की भी शानदार प्रतिमाएं हैं। इन मूर्तियों का निर्माण अनेक विख्यात फ्रांसीसी कलाकारों द्वारा किया गया। वारसा के इतिहास और फ्रांसीसी क्रांति को समर्पित यह म्यूज़ियम पर्यटकों और स्थानीय निवासियों के आकर्षण का केंद्र है। विशेषकर दूसरी मंजिल में तो जैसे फ्रांसीसी क्रांति का इतिहास जीवंत होकर आपके सामने आ जाता है। फ्रांसीसी क्रांति और वारसा के इतिहास से संबंधित अनेक वस्तुएं आपको यहां देखने को मिलती हैं।

लौटते समय मुस्कुराते हुए मेरी पत्नी ने टिप्पणी की कि इस तरह से इतिहास को सुरक्षित रखने और उसे घर की वस्तु बनाने का क्या कारण हो सकता है। समधीजी एकदम से गंभीर हो गए, बोले 'नहीं, यदि इतिहास को याद न रखा जाए तो वह अपने आपको दोहराता है, अपनी याद दिलाने के लिए वह वापस आता है और फिर मानवता को अपार कष्ट झेलने पड़ते हैं, इसका अंदाजा पहले और दूसरे विश्व युद्ध में मरने वाले लोगों की संख्या से लगाया जा सकता है। हैं। लाखों मारे गए, लाखों बेघर हुए। सही में ये बात केवल युद्ध के दौरान ही समझ आती है और इतिहास बारम्बार दस्तक देता रहता है।

पेरिस की आम जिंदगी अनुशासित होती है, हालांकि नियमों के उल्लंघन भी होते रहते हैं। बसें और ट्रेन सब समय पर चलते हैं। बस स्टैंड में इलेक्ट्रॉनिक बैनर लगा होता है, जिसमें बस कितने मिनट में पहुंचेगी, लिखा होता है और उसके अनुसार बस बसस्टैंड में पहुंचती है। बस में कोई कंडक्टर नहीं होता। ठीक रेलवे स्टेशनों व कई अन्य जगहों पर उपलब्ध होती है। आप बस पास भी ले सकते हैं। बस पर चढ़ते ही मशीनों से पास को छूना होता है। सब स्वचालित व्यवस्था है। कुछ चालक के पास टिकटें होती हैं। लेकिन ये भी संभव है कि उसके पास टिकट न हो। यदि टिकट उसके पास है तो बस तभी चलेगी, जब टिकट लेन-देन का काम पूरा हो जाये। एक बार हम वारसा से अपने अपार्टमेंट की ओर आ रहे थे, बस पास कमरे में ही छूट गया था। मैंने टिकट खरीदना चाहा, बस चालक के पास टिकट नहीं थी। उसने इशारा किया कि मैं अंदर चला जाऊं। ऐसा एक बार और हुआ। टिकट न लेने पर जुर्माना देना पड़ता है,लेकिन मैं जब भी पेरिस गया तो बस में खूब घूमा,लेकिन कभी टिकट जांचने वाले को नहीं देखा, क्योंकि आमतौर पर फ्रांसीसी टिकट लेते हैं। ऐसा ही ट्रेन में भी देखा, हां रेलवे स्टेशन में कई बार टिकट जांचने वाले मिले। लाल बत्ती पर आमतौर पर गाड़ियां रुकती हैं और भले ही आधी रात हो, लोग यातायात के नियमों का उल्लंघन नहीं करते। इसका एक कारण यह भी है कि यातायात के नियम बहुत सख्त,ज़ुर्माना अधिक है और अधिक नियम तोड़ने की स्थिति में लाइसेंस भी निरस्त हो सकता है। यह भी उल्लेखनीय है कि फ्रांस में लाइसेंस बनवाना आसान नहीं है। एक खास बात ये भी है कि सामान्यतः सड़कों में यातायात पुलिस दिखाई नहीं देती। यह विचार भी है कि लोग कार कम चलाएं। पार्किंग बहुत महंगी है और यातायात के अनेक साधन यहाँ उपलब्ध हैं। गाड़ी पार्क करने के लिए टिकट लेना पड़ता है,

अमेरिकी चित्रकार मार्कोथको, जिनके चित्रों की प्रदर्शनी फाउंडेशन लुईसवियूटन (Foundation Louis Vuitton) में हुई। मार्कोथको कहा करते थे कि' कला संचार का शक्तिशाली रूप है। जब मेरे चित्रों को देख लोग रोने लगते हैं ,तो इससे पता चलता है कि उनमें मानवीय संवेदनाओं का संचार मैं करवा सकता हूँ।' एक बार उन्होंने न्यूयॉर्क के एक बड़े रेस्तरां से भित्ति चित्र बनाने का वित्तीय समझौता किया। उन्हें इसके लिए एक बड़ी रकम पेशगी में मिली। इस कार्य के लिए उन्हें बहुत बड़ी राशि मिलनी थी। उन्होंने नौ पेंटिंग बनाई लेकिन रेस्त्रां को नहीं दीं ,उसका पैसा वापस कर दिया। वैसे उन्होंने ये पेंटिंग इस उद्देश्य को सामने रखकर बनाई थी कि उसको देखने वाले की भूख खत्म हो जाए।

जो पार्किंग क्षेत्र में होती है और जितने समय के लिए गाड़ी पार्क करनी है, उसके अनुसार पार्किंग फीस पहले ही भरनी होती है। इससे ज़्यादा समय तक गाड़ी पार्क करने पर जुर्माना है और वो भी बहुत भारी। इसके लिए यातायात पुलिस कर्मचारी हैं जो कि गाड़ी पर ही जुर्माने की राशि का स्टिकर लगाकर चले जाते हैं।

वैसे मैंने ये भी महसूस किया कि फ्रांस के लोग निजी स्वतंत्रता के प्रेमी हैं। वे अपनी स्वतंत्रता का हनन बर्दाश्त नहीं कर सकते। फ्रांसीसी क्रांति का उद्देश्य—स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व यहां जगह-जगह पर अंकित है। यहां कैमरे है, लेकिन उतना खुल्लमखुल्ला तरीके से नहीं जैसे कि हमें दिल्ली में देखने को मिलते हैं। प्रकट तौर पर रेलवे स्टेशनों में प्रवेश द्वार में दिखाई देते है। हम यहां के अनेक म्यूज़ियम में गए लेकिन केवल एक जगह कैमरा दिखाई दिया, वह भी उस कमरे में जो कि हमेशा बंद रहता है, जहां दरवाजा खोलकर अंदर जाना पड़ता है। हमें पता चला कि आप अपने घरों में सुरक्षा के लिए कैमरे लगा सकते हैं, लेकिन कैमरा सार्वजनिक सड़क की गतिविधियों को कैद नहीं कर सकता। इस खुले समाज में रहने का अपना मज़ा है,लेकिन अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग भी फ्रांस वासी नहीं करते। सब की अनुमति है। लेकिन हमने आमतौर पर लोगों को शालीन कपड़ों में देखा। बेमतलब का शरीर प्रदर्शन यहां नहीं होता। एक दो बार को छोड़कर हमने खुली सड़क या सार्वजनिक स्थल पर युवक-युवतियों को चुंबन लेते नहीं देखा। इतने सारे बाग बगीचों में हम लोग गए, लेकिन जिस प्रकार से दिल्ली में आपको प्रेमी युगल दिखाई देते हैं, ऐसे दृश्य खुले में यहां नजर नहीं आते। हालांकि यहां प्रतिबंध जैसा कहीं कुछ नहीं है। फ्रांस के समुद्री तटों में खुली छाती के साथ स्नान करने की अनुमति है, लेकिन अब वह भी कम लोकप्रिय होता जा रहा है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि फ्रांसीसी समाज पारंपरिक तौर पर निश्चित संस्कृति का संवाहक ह।

पारिवारिक मूल्य यहां बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। युवा होने के बाद माता-पिता का घर छोड़कर अपना घर बसाना होता है। लेकिन समान भाव से प्यार रहता है, बच्चों के प्रति लगाव और अपने जीवनसाथी के प्रति वफादारी यहां आमतौर पर देखने को मिलती है, हालांकि तलाक भी होते हैं। बच्चे माँ बाप का सम्मान करते हैं और माँ बाप भी अपने बच्चों को पूरा स्नेह और सहयोग देते हैं। अपने प्यारे दुलारे नाती-नातिन और बच्चों के साथ खेलने और प्यार करने में दादा-दादी भी पीछे नहीं बल्कि अव्वल रहते हैं। मेरे समधी अपने नातियों से विशेष तौर पर मिलने जाते हैं और उन्हें कहानियां आदि सुनाते हैं। उन्होंने मुझे भारत से कुछ बाल कहानियां भेजने को कहा।

दिल्ली में जिस प्रकार से साप्ताहिक बाजार लगते हैं, उसी तरह यहां भी बाजार लगते हैं। यहां खेतों से सीधे लाए गए ताजे फल और सब्जियां तो मिलते ही हैं, मछली तथा अन्य मांसाहारी उत्पाद भी मिलते हैं। सिले सिलाए रेडीमेड कपड़े भी यहां होते हैं,हालांकि फ्रांस के इन बाजारों में भारत के ग्राहकों की तुलना में संख्या कम ही दिखाई पड़ती है। अपने अपार्टमेंट के पास भी इसी प्रकार का एक बाजार लगता है। हमारी रुचि के यहां दो केंद्र थे—एक श्रीलंकाई परिवार द्वारा संचालित तैयार भोज्य पदार्थ का स्टॉल। इस स्टॉल में तरह-तरह की तैयार शाकाहारी व मांसाहारी चीजें मिलीं। इनमें समोसा भी एक था, भारत के समोसे से थोड़ा छोटा, लेकिन समोसा तो समोसा ही है। हमें वह बहुत स्वादिष्ट लगा और हमने इसे कई बार खाया। शुरू में लगा कि ये परिवार भारतीय है,क्योंकि वे

शक्ल सूरत से दक्षिण भारतीय जैसे लग रहे थे, लेकिन फिर पता चला कि वे तो श्रीलंका से आए हैं।

दूसरा रुचिकर मामला हमारे लिए यह था कि यहीं पर हमें पहली बार एक भारतीय नजर आए जो कि दुकानदार थे। अमीरचन्द जी नामक ये सज्जन गुजरात से आए थे और पता लगा कि वे यहां साढ़े तीन दशक पहले आये थे। संयोग से उन्हें यहां भारतीय मूल की महिला भी मिल गई, जिसके साथ उन्होंने यहीं घर बसा लिया था। अब पत्नी भी उनके साथ ही काम करती हैं, लेकिन भाषा के मामले में टूटी-फूटी हिन्दी ही बोल पाती हैं। वे दोनों गर्मियों के रेडीमेड कपड़े बेच रहे थे । मैंने पूछा कि आप लोगों का व्यवसाय कैसा चलता है? उन्होंने बताया कि 'बहुत बढ़िया,हम होलसेल में पांच यूरो में एक उत्पाद खरीदते हैं और उसे 20 यूरो में बेच देते हैं,लेकिन अभी क्योंकि गर्मी खत्म हो रही है, मौसम जा रहा है इसलिए अब इसे 10 यूरो में बेच रहे हैं'। उस दंपत्ति के साथ गौरव नामक एक युवा था। उन्होंने बताया कि पिछली बार जब वे गुजरात गए थे तो गौरव ने उनके साथ चलने की जिद की और हम उसे ले आए। मैंने गौरव से पूछा कि क्या यहाँ मन लग गया? मेरे पूछने पर उसने कहा कि 'बहुत अच्छा लगता है, साहब।' मैंने पूछा कि घर की याद आती है क्या? तो मुस्कराते हुए गौरव बोला कि 'याद तो आती है लेकिन जिंदगी भी तो बनानी है,गुजरात में वो बनेगी ही नहीं। यहां रहूंगा तो एक दिन अपने माता-पिता को भी साथ लेकर आऊंगा'।

इसी प्रकार एक दिन गुरविन्दर मिले। गुरविन्दर लुधियाना से हैं और वे पीआईओ यानी पर्सन ऑफ इंडियन ओरिजिन हैं। गर्मियों में दो महीने के लिए आते हैं और फिर लुधियाना वापस चले जाते हैं। उनके साथ एक हरियाणवी सहायक भी था जो कि अधिक बोलता नहीं था। इसके बाद एक और दुकानदार मिला जो अपने साथी के साथ पंजाबी में बात कर रहा था। मैंने पूछा 'आप क्या हिन्दुस्तानी हैं ?' वह बोला—'नहीं जी हम पाकिस्तान से हैं।' वास्तव में यहां हिंदुस्तानी, पाकिस्तानी,बांग्लादेशी और श्रीलंकावासियों में भेद करना मुश्किल होता है,सब एक जैसे लगते हैं। इस पाकिस्तानी दुकानदार का नाम अहमद अली था। अहमद अली पाकिस्तानी पंजाब से हैं, वे भी मुल्क के बाहर हिन्दुस्तानी या पाकिस्तानी में किसी प्रकार का कोई अंतर नहीं करते। बोले—'सब एक हैं।' मैंने उनसे तीन बनियान खरीदीं। उन्होंने बिना मांगे मुझे कीमत में छूट दे दी। मैंने कहा-आपने तो बिना मांगे ही डिस्काउंट दे दिया तो मुस्कुराते हुए वे बोले—'हाँ जी, अपने बन्दों का तो ख्याल रखना ही पड़ता है।' हमारे दो महीने के प्रवास काल में इन सभी दुकानदारों से लगातार मुलाकात होती रही। कारण भी स्पष्ट रहा कि उस इलाके में इनके अलावा कोई भारतीय कभी नहीं मिला। हां,यदि आप पेरिस के मुख्य क्षेत्रों में पहुंच जाते हैं तो वहां भारतीय घूमते हुए मिल जाएंगे। कई तो वहां बस चुके हैं।

एक दिन श्रीमती जी ने कहा कि एफिलटावर घूमने चला जाये। फ्रांस की आन, बान और शान है—एफिल टावर। एफिलटावर का निर्माण 1879 के पेरिस विश्व मेले के अवसर हुआ था। 300 मीटर ऊंची ये मीनार टीवी ऐन्टेना इत्यादि लगाकर 330 मीटर हो जाती है। यह

मीनार 1779 की फ्रांसीसी क्रांति को याद करने के लिए बनाई गई थी। इसकी ऊँचाई के महत्त्व को इस बात से भी आंका जा सकता है कि हमारी कुतुब मीनार की उंचाई 72 मीटर है। प्रतिदिन औसतन 25,000 दर्शक इस एफिलटॉवर की इस मीनार को देखने आते हैं। वे मीनार के ऊपर जाकर पेरिस के विहंगम दृश्य का आनंद लेते हैं। दर्शकों के लिए इस मीनार में तीन मंजिलें हैं। पहली और दूसरी मंजिल में रेस्तरां भी है। ये मीनार केवल देखने के लिए ही नहीं बनायी गयी थी,यह बहुउद्देशीय मीनार है। इसकी दूसरी मंजिल में फ्रांस के एक प्रसिद्ध समाचार पत्र का कार्यालय और प्रिंटिंग प्रेस थी तो सबसे ऊपर की मंजिल में एक डाकखाना था। आज भी इस मीनार का व्यावसायिक उपयोग होता है। अनेक वैज्ञानिक प्रयोग भी इसमें किए जाते हैं। रेडियो और टेलीविजन ऐन्टेना भी इसमें है। इसे 300 मीटर मीनार का नाम दिया गया था। लेकिन बाद में इसके निर्माता गुस्ताव एफिल के नाम पर इसका नामकरण एफिल टावर हो गया। जब एफिल इस टावर के निर्माण की तैयारी कर रहे थे तब अनेक लोगों ने इसके निर्माण का विरोध किया। जहाँ गुश्तावाएफिलने इस मीनार को 1789 की फ्रांसीसी क्रांति और 18वीं शताब्दी के वैज्ञानिक आंदोलन का प्रतीक कहा तो दूसरी ओर अनेक लेखकों, वास्तुकारों और बुद्धिजीवियों ने इस प्रस्तावित टावर को बेकार और भयानक बताते हुए उसके निर्माण का विरोध किया था। 1890 में विश्व मेले के अवसर पर महात्मा गांधी भी एफिल टावर देखने गए थे। उन्होंने पहली मंजिल में दिन का भोजन भी किया था, जिसके लिए उन्होंने साथ सीलिंग खर्च किए थे। इसमें वे दो तीन बार चढ़े भी थे, लेकिन उन्होंने भी एफिलटावर की आलोचना की थी। अपनी आत्मकथा में उन्होंने याद दिलाया कि टॉलस्टॉय ने इसे मनुष्य के विवेक की नहीं, बल्कि उसकी मूर्खता की इमारत कहा था जो कि तंबाकू के नशे में बनाई गई थी। गांधीजी के अनुसार यह मीनार विश्व मेले का खिलौना थी। बच्चे खिलौनों से आकर्षित होते हैं और टावर इस तथ्य को प्रदर्शित करता है कि हम सब कुछ वक्त तो खिलौने से आकर्षित होने वाले बच्चे जैसे ही हैं। गांधी जी के अनुसार टावर इसी उद्देश्य को पूरा करता था। टावर के बन जाने के बाद बहुत से आलोचक उसके प्रशंसक बन गए,लेकिन अनेकों ने अपनी राय में परिवर्तन नहीं किया। इस सबके बावजूद यह भी सच है कि आज यह टावर फ्रांस की,विशेषकर पेरिस की सांस्कृतिक पहचान है। मूल तौर पर इसे 20 वर्षों के लिए बनाया गया था और 1909 में इस को नष्ट करना था, लेकिन रेडियो प्रसारण के लिए इसे बहुत महत्वपूर्ण माना गया और अब ये इमारत अनंत काल के लिए है । समय-समय पर इसमें मरम्मत और नवीनीकरण के कार्य होते रहते हैं।

पेरिस एक पुराना शहर है, उसकी विरासत बिखरी पड़ी है, लेकिन अधिकांश का उपयोग हो रहा है। इस दृष्टि से यह आधुनिक और पुरातन की अनोखी मिसाल भी है। इसके साथ ही यहाँ के मुस्कुराते लोग हैं जिनका बहुसांस्कृतिकवाद पर अगाध विश्वास है और उन्होंने इसे अपनी सामाजिक पद्धति का एक अनिवार्य अंग बना लिया है । वे आपका स्वागत करने के लिए बेकरार से प्रतीत होते है।

एफिल टावर घूमने के पश्चात हम बाहर आये, सामने ही सेन नदी है। पानी से लबालब लगभग 485 मील लंबी इस नदी में बड़े-बड़े भारी जहाज चलते हैं। बहुत ही चौड़ा पाट है,पानी में लहरें उठती हैं। पहले लोग इसमें स्नान करते थे, लेकिन अब प्रदूषण के चलते ऐसा नहीं करते। पेरिस को पेयजल इसी नदी से मिलता है। भारत की किसी भी नदी की अपेक्षा यह नदी बहुत ही स्वच्छ है। कोई फूलमाला नहीं, कोई प्लास्टिक नहीं, आंख से दिखने वाली कोई गंदगी इसमें नजर नहीं आती। पानी हरा, लेकिन साफ है। नदी में नौका विहार की सुविधा है और बड़े-बड़े जहाजों में आप नौका विहार का आनंद ले सकते हैं। आसपास का दृश्य बहुत ही मनोहारी है, जिसका हमने आनंद लिया। आनंद की उस परम अनुभूति के मध्य समधी जी का फ़ोन आता है। 'पूछते हैं कहाँ हो?' मैंने कहा 'एफिलटावर के पास सेन नदी के किनारे यहाँ का मज़ा लूट रहे हैं।'

वह बताते हैं कि 'पेरिस के लिए यह नदी बहुत महत्वपूर्ण है और पेरिस की नगर योजना इसी नदी के किनारे बनी है। पेरिस की सभी महत्वपूर्ण इमारतें इसी नदी के किनारे हैं।' फ़ोन कटता है और नदी किनारे बैठे हमारे सामने से एक क्रूज़ निकलता है। क्रूज़ में सवार बच्चे उत्साहित हो नदी किनारे बैठे हमें और अन्य लोगों को हाथ हिलाकर अभिवादन कर रहे हैं। हम लोग भी उनके अभिवादन का जवाब देते हैं। हमारे साथ में दो महिलाएं बैठी हैं, एक प्रौढ़ और एक नवयुवती, दोनों आपस में कुछ कह रही हैं। मेरा ध्यान तो क्रूज़ में बैठे हाथ हिलाते बच्चों की ओर है, पत्नी को याद आता है कि काफी देर से कुछ नहीं खाया। पूछती हैं 'भूख लगी है क्या?' मैं कहता हूँ 'अभी तो नहीं', फिर कुछ याद आता है, मैं कहता हूँ—'सुबह निकलने के पहले आलू के परांठे खाकर निकलना चाहिए था, ताकि पेट भरा रहे।' 'बिल्कुल ठीक कहा आपने, लेकिन आजकल के बच्चे आलू के परांठों की कीमत क्या जानें', हम चौंक पड़ते हैं। ये साथ में बैठी प्रौढ़ महिला की आवाज थी, अच्छा भी लगा। परदेश में अपनी भाषा बोलने वाला मिल जाए तो लगता है कि विदेश में रहते हुए भी देश मिल गया। लेकिन ये महिला पंजाबी में बोल रही थी, मिली जुली पंजाबी और हिंदी में। हिंदी और पंजाबी के बोलचाल में कोई अंतर नहीं है। मैं पंजाबी बोल नहीं पाता, लेकिन समझ लेता हूँ। वो पंजाबी बोल रही थीं,लेकिन हिंदी भी समझ रही थीं । उनसे बातचीत शुरू हो गई। पता चला कि वे पंजाब से हैं और नाम है हरविंदर। 30-35 वर्ष पहले वे परिवार सहित जर्मनी जाकर बस गईं, वहीं उनके दो बच्चे हुए। साथ में जो नवयुवती थी,वह उनकी ही पुत्री थी। थोड़ी ही देर में हरविंदर जी के पति और बेटे भी आ गए। मैं पूछता हूं 'आप भारत जाती हैं', हामी भरते हुए वह कहती हैं -'पहले तो हर साल जाते थे,क्योंकि तब माता-पिता जिंदा थे, लेकिन उनके जाने के बाद अब जाना कम हो गया।' अपने दोनों बच्चों पर उन्हें गर्व है। बेटी ने भौतिक विज्ञान में एमएससी किया है और उसे 1300 यूरो की छात्रवृत्ति मिल रही है। वो कहीं भी जाएं, चाहे वो अमेरिका भी चले जाएं लेकिन तब भी बिटिया को यह छात्रवृत्ति मिलती रहेगी। भारत को लेकर वो दुखी भी हैं। 'जी बच्चों को नौकरियां नहीं मिलती, इसलिए सब देश छोड़ बाहर जा रहे हैं। पंजाब तो खाली हो गया है।' वे जालंधर से हैं और उनकी पहचान के सभी परिवारों के युवक युवतिया विदेश में हैं, कोई जर्मनी में तो कोई कनाडा या अमेरिका में। वे कहते हैं कि—"हिन्दुस्तानी सरकारें गैर जिम्मेदार रही हैं,वो युवक-युवतियों को नौकरियां नहीं दे पाती। सरकार अच्छी हो तो क्यों कोई भी अपना देश छोड़कर बाहर जाए।" उनके पतिदेव सरदारजी कम बोलते है लेकिन वे भी अपनी पत्नी की हाँ में हाँ मिलाते हैं। पूरा परिवार अत्यंत ही सौम्य और सांस्कृतिक, पंजाबियत जिसे कहते हैं,वो यहाँ नजर आती है। बच्चे बड़े हो गए हैं, लेकिन माँ बाप का सम्मान करना जानते हैं। सब खुश हैं। किसी के चेहरे में कोई तनाव नहीं, हरविंदर को लगता है कि जैसे बोलने की आदत है, ये बोलती रहती है। हमें बताती है कि वह जर्मनी के बॉन से आई हैं। 5 घंटे का सफर, 100 यूरो का पेट्रोल लगा और 100 यूरो का ही पेट्रोल वापसी में लगेगा। एक जगह उन्होंने कार पार्क कर रखी है, क्योंकि शहर में पार्क करना बहुत ही महंगा है।

एक बात हमें अच्छी लगी । सभी आपस में पंजाबी बोल रहे थे,उसमें अंग्रेजी या विदेशी भाषा का कोई शब्द नहीं था। वैसे भी परिवार में मातृभाषा में बातचीत हो तो सहजता और सौम्यता नजर आती है, जो कि हमारे यहाँ नहीं है। सामने से गुज़रते स्टीमर को देखकर मैं पूछता हूँ, 'आप स्टीमर में नहीं जा रहे?' तो बोले "हमें तो अच्छा नहीं लगता, बस बच्चों को शौक है इसलिए टिकट ले लिया है । शाम को 7:00 बजे हमारा नंबर है अभी 3:00 बज रहे हैं।" इससे अंदाजा लग सकता है कि स्टीमर में सैर करने वाले शौकीन लोग कितने सारे हैं, जबकि आज रविवार या शनिवार नहीं है। हमने सभी स्टीमरों को सवारियों से भरा देखा।

साहित्य और कला फ्रांसीसियों के डीएनए में मिलता है। चित्रकला तो उनकी विशेष पसंद है, इसलिए यहाँ बहुत सारे म्यूज़ियम हैं जहाँ फ्रांस व अन्य देशों के चित्रकारों की चित्रकारी की प्रदर्शनी लगी रहती है और फ्रांसीसी उन्हें बड़ी चाव से देखते-निहारते हैं। इसके लिए वो टिकट भी खरीदते हैं जो कि काफी महंगी है हालांकि 18 वर्ष से कम आयु के बच्चों और छात्रों के लिए भी प्रवेश निशुल्क है। इनमें से एक सेन नदी किनारे स्थित लूव्रा म्यूजियम प्रमुख हैं जहाँ पर अनेक चित्रकारों की चित्रकारी के कमाल देखने को मिलते हैं। इनमें लियोनार्डविन्सी की

प्रसिद्ध मोनालीसा पेन्टिंग भी शामिल है। हमारी समधीजी भी अन्य फ्रांसीसी की तरह से चित्रकला प्रेमी हैं। उन्होंने एक दिन फ़ोन किया और बताया कि उन्होंने ओरसेम्यूज़ियम में ऑनलाइन टिकट बुक करवा ली है । ओरसेम्यूज़ियम भी पेरिस का एक विख्यात म्यूजियम है। इसमें फ्रांस के अनेक विख्यात चित्रकारों के चित्र हैं, जो कि 1848 से 1941 के बीच हुए थे। इस म्यूजियम में प्रभाववादी (इंप्रेशनिस्ट) और प्रभावादोत्तर (पोस्ट इंप्रेशनिस्ट) चित्रकारी सुरक्षित है। समधीजी ने वॉनगोघ (Van Gogh) चित्रकार की पेंटिंग दिखाने के लिए टिकट बुक कराई थी। उन्होंने कहा कि म्यूजियम के बाहर मिल जाएंगे और हमें ट्रेन से वहाँ पहुंचना होगा। हम ओरसेम्यूज़ियम (Orsay Museum) के लिए चल पड़े। ट्रेन में एक बांग्लादेशी और दूसरे पाकिस्तानी मिले। दोनों बातचीत कर रहे थे हिन्दुस्तानी में, मुझे लगा कि वे भारतीय हैं। मैंने पूछा तो पता चला कि वे बांग्लादेशी और पाकिस्तानी थे। बहुत बात करने का वक्त तो नहीं था, मैंने पूछा कि वे क्या काम करते हैं ,तो पता चला कि वे इलेक्ट्रिशियन हैं। बोले,'यदि अपने देश में सारी सुविधा मिलती तो हम यहाँ कभी नहीं आते।' उनके दर्द के साथ मैं भी शरीक हो जाता हूँ कि भारत में भी युवाओं के लिए नौकरी नहीं हैं, तो वे बोले —आप हम से बेहतर हैं। हमारे यहाँ तो कुछ भी नहीं है, यदि कुछ है तो भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी।' वे भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के प्रशंसक निकले, बोले ऐसा नेता हमें मिल जाए तो हम बहुत तरक्की करेंगे। वे दुखी हैं कि 115 बांग्लादेशी और 264 पाकिस्तानी मुद्रा के बदले एक यूरो मिलते हैं, जबकि 91 भारतीय रुपये के बदले एक यूरो मिलता है। दूसरे शब्दों में भारतीय मुद्रा पाकिस्तानी और बांग्लादेशी मुद्रा से अधिक मजबूत है।

स्टेशन नीचे था। हम ऊपर आये और सामने ही ओर से म्यूजियम था। समधीजीम्यूज़ियम के बाहर प्रतीक्षा करते मिले। समधीजी ने बताया की एक जमाने में यह रेलवे स्टेशन था जोकि बाद में म्यूजियम हो गया। हमने वॉनगोघ के चित्रों को देखा उनके साथ साथक्लॉड़ेमोने जैसे महान चित्रकारों की कलाकृत्यों को भी देखने का सौभाग्य मिला, लेकिन वॉनगोघ की तो बात ही अलग थी। यह वह चित्रकार था, जिसने कहा था कि 'एक सबसे गरीब के छोटे से घर के सबसे गंदे कोने में मैं पेंटिंग या रेखाचित्र के लिए विषय देखता हूँ।' वे जीवन भर मानसिक अवसाद से पीड़ित रहे। एक बार स्वयं पागलखाने में भर्ती हुए और 37 वर्ष की उम्र में उन्होंने आत्महत्या कर ली थी। एक चित्रकार जिसने अपनी पेन्टिंग के व्यावसायिक मूल्य की कभी चिंता नहीं की और आज उनकी पेंटिंग की कीमत लाखों में बिकती है।

एक और चित्रकार जो कि मानसिक अवसाद के शिकार हुए और उन्होंने 66 वर्ष की उम्र में आत्महत्या की, ये थे अमेरिकी चित्रकार मार्करोथको, जिनके चित्रों की प्रदर्शनी फाउंडेशन लुईसवियूटन (Foundation Louis Vuitton) में हुई। मार्करोथको कहा करते थे कि' कला संचार का शक्तिशाली रूप है। जब मेरे चित्रों को देख लोग रोने लगते हैं, तो इससे पता चलता है कि उनमें मानवीय संवेदनाओं का संचार मैं करवा सकता हूँ।' एक बार उन्होंने न्यूयॉर्क के एक बड़े रेस्तरां से भित्ति चित्र बनाने का वित्तीय समझौता किया। उन्हें इसके लिए एक बड़ी रकम पेशगी में मिली। इस कार्य के लिए उन्हें बहुत बड़ी राशि मिलनी थी। उन्होंने नौ पेंटिंग बनाईं लेकिन रेस्त्रां को नहीं दीं ,उसका पैसा वापस कर दिया। वैसे उन्होंने ये पेंटिंग इस उद्देश्य को सामने रखकर बनाई थी कि उसको देखने वाले की भूख खत्म हो जाए। उन्होंने कहा कि उन्हें आशा थी कि रेस्त्रां के कमरे में बैठे सभी ग्राहक उनकी पेंटिंग को देखकर ऐसा महसूस करेंगे कि वे एक ऐसे कमरे में फंस गए हैं जिसके सभी दरवाजे और खिड़कियों को ईटों से बंद कर दिया गया है, वो उसमें सिर्फ यही कर सकते हैं कि दीवारों से अपने सर को टकराएं। 2012 में मार्करोथको का एक चित्र 82.5 मिलियन डॉलर में बिका था। विश्व के सबसे महंगे चित्रकारों में उनका नाम है।

फाउंडेशन लुईसवियूटन (Foundation Louis Vuitton) के साथ खास बात ये है कि यह बच्चों को चित्रकारी और संस्कृति समझाने की यहां व्यवस्था है। बच्चों के लिए कहानी सुनाने की भी व्यवस्था है, जिसमें तीन से पांच वर्ष के बच्चों को उनके परिवार सहित कलाकार की चित्रकारी को सरल और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। इस तरह से छः से 10 वर्ष के बच्चों के लिए भी बाल कार्यशाला का आयोजन होता है। इस प्रदर्शनी में हमने मार्करोथको की 115 कृतियों को देखा। यहाँ भीड़भाड़ भी थी, जिससे पेरिस के लोगों के कलाप्रेमी होने का पता लगता था। इस फाउंडेशन

लुईसयूटर्न का संबंध अनायास मेरे साथ जुड़ गया। पता चला कि ये महात्मा गाँधी मार्ग में स्थित है। गाँधीजी की याद में पेरिस में और कुछ नहीं है। गाँधीजी पहली बार 1890 में आये थे और फिर दूसरी बार 1942 में। जिस पार्क में उन्होंने भाषण दिया था, वो खत्म हो गया है। तब नमक सत्याग्रह की गूंज फ्रांस में भी पहुंची थी और फ्रांसीसी उनसे मिलना भी चाहते थे। वहाँ गाँधी जी ने 2500 फ्रांसीसियों को संबोधित किया और अपने भाषण में सत्याग्रह की वकालत करते हुए कहा कि इस पद्धति का उपयोग भारत में विश्व की एक तिहाई जनता ने किया है और इसे विश्व स्तर पर भी लागू किया जा सकता है। भले ही केवल एक सड़क ही महात्मा गाँधी की याद दिलाती है, लेकिन उनके विचारों को यहाँ समझा जाता है। समधीजी ने बताया कि 2013 में फ्रांसीसी संसद ने एक कानून पास करके अहिंसक संघर्ष द्वारा समाधान शिक्षण को अध्यापकों के लिए शिक्षण कार्यक्रम में शामिल किया।

पेरिस में बरसात शुरू हो गई थी और वापसी की तारीख भी निकट आ गई थी। मेरी इच्छा नेपोलियन की समाधि देखने की थी। पिछली बार भी हम लोग चाहकर भी नहीं जा पाए थे। इसलिए इस बार जाने के लिए मैं दृढ़ संकल्प था, मैंने अपनी इच्छा समधीजी से ज़ाहिर की तो एक दिन वे कार के साथ आ गए। आम तौर पर वे कार का उपयोग नहीं करते हैं क्योंकि परिवहन के बहुत सारे साधन मौजूद हैं। लेकिन मौसम को देखते हुए कार में जाना बेहतर था। नेपोलियन की समाधि लेस इनवैलिडस (Les invalids) में स्थित है। लेस इनवैलिडस को फ्रांस के राजा लुईस चौदह ने घायल और अपाहिज सैनिकों को आश्रय देने के लिए बनाया था। लेकिन इसके साथ ही अन्य उपयोगों में भी इसे लाया गया। नेपोलियन की मृत्यु तो सेंट हेलेना द्वीप में हुई थी और वहीं उसको दफन किया गया था,लेकिन फिर उसके मृत शरीर को यहाँ लाकर लाल पत्थर के एक विशाल ताबूत में रखा गया है। साथ ही यहीं परम शांति के बीच उसके भाई, बेटा और बहुत सारे अधिकारी आराम कर रहे हैं। इस भवन में प्रवेश करने के पहले ही प्रवेश द्वार में दोनों तरफ दो विशाल प्रतिमाएं हैं। एक ओर मंगल है, जिसे रोमन पौराणिक कथाओं में युद्ध का देवता माना गया है जो कि शांति स्थापित करने के उद्देश्य से सैन्य शक्ति का प्रतीक है। दूसरी ओर मिनर्वा की मूर्ति है जो कि विजय का देवता है। नेपोलियन की इच्छा थी कि उसे सेन नदी के किनारे फ्रांस के लोगों के बीच दफनाया जाय, जिनसे वो बहुत प्यार करता था। फ्रांसीसी भी नेपोलियन की याद करते रहे क्योंकि उसने फ्रांस की पूरी सामाजिकऔर क़ानूनी व्यवस्था ही बदल दी थी। यहां उसके योगदान को अलग-अलग करके स्पष्ट तौर पर गैलरी में दिखाया गया है। एक समय था जबकि नेपोलियन को बहुत सराहा जाता था,उसकी प्रशंसा होती थी, लेकिन अब ऐसा नहीं है। समधीजी बताते हैं कि आम फ्रांसीसी यह मानते हैं कि उसने बेकार ही युद्धों में समय बर्बाद किया। यदि वह युद्धों में नहीं पड़ता तो फ्रांस विश्व का सबसे बड़ा साम्राज्यवादी देश होता,जबकि यह श्रेय ब्रिटेन को मिला।

पेरिस जाएं और बैले न देखें, तो समझिए यात्रा अधूरी रही और यदि यह बैले वर्साय के किले में ओपेरा रॉयल में देखें तो आप फ्रांस के इतिहास से मिलन कर रहे होंगे। हम इसी ओपेरा रॉयल में बैले देखने गए। बैले फ्रांसीसी भाषा में था, इसलिए समझने में कठिनाई हुई हालांकि ऊपर इलेक्ट्रॉनिक बैनर में अंग्रेजी में लिखा आ रहा था। बैले बहुत ही आकर्षक था। यहाँ पर हम पेरिस के संभ्रांत परिवारों के साथ बैठकर बैले देख रहे थे जो कि बहुत ही सज संवरकर आए थे। समधीजी बता रहे थे कि फ्रांसीसी इतिहास की बहुत सारी घटनाओं का यह ओपेरा रॉयल साक्षी है। इसको बनाने का सपना लुईस चौदह ने देखा था लेकिन बनाया इसे लुईस पंद्रह ने। बहुत ही खूबसूरत इमारत है ये। दूसरे महायुद्ध में बर्बाद हो गई थी, लेकिन अब यह फ्रांसीसी संस्कृति का अंग है और यहाँ बहुत सारे सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं।

पेरिस एक पुराना शहर है, उसकी विरासत बिखरी पड़ी है, लेकिन अधिकांश का उपयोग हो रहा है। इस दृष्टि से यह आधुनिक और पुरातन की अनोखी मिसाल भी है। इसके साथ ही यहाँ के मुस्कुराते लोग हैं जिनका बहुसांस्कृतिकवाद पर अगाध विश्वास है और उन्होंने इसे अपनी सामाजिक पद्धति का एक अनिवार्य अंग बना लिया है। वे आपका स्वागत करने के लिए बेकरार से प्रतीत होते है।

———•••———

महासचिव,
ऑथर्स गिल्ड ऑफ इंडिया

वैश्विक संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा का उद्देश्य और प्रासंगिकता

— डॉ. अनुपमा तिवारी

सर्वतोभद्र, सार्वजनीन और सनातन धर्म के सद्गुण से संपन्न भारत देश सर्वांगपूर्ण देश है, जहां वसुधैव कुटुंबकम की संकल्पना सदियों पूर्व ही अधिष्ठित थी। परिवर्तित परिवेश में कुसमय के कुठाराघात एवं अपने ही देश में पैठे बहुमतवादियों के प्रक्षेप के कारण निर्धारित संकल्पना की सतहें धूल-धूसरित हो गयीं। 'एक तो तीत लौकी, दूजे नीम चढ़ी' लोकोक्ति के संदर्भ में देखें तो अपने समृद्ध और गौरवपूर्ण संस्कृति से संपन्न इस देश को कई निकष पार करने पड़े यथा-प्राकृतिक आपदा, निरक्षरता, परस्पर वैमनस्यता एवं परागम चुनौतियाँ आदि। इस प्रकार के अनेक विषम परिस्थितियों से बाहर निकलने के उपरांत यह आभास हुआ कि यह देश, जो मौलिक, पारंपरिक, गूढ और समृद्ध परंपरा से निष्णात है, उस पर जमी धूलिका के परतों को साफ किया जाये और उसकी प्रासंगिकता, वैशिष्टता, महनीयता, और सतत विश्वकल्याणकारी ज्ञान परंपरा का सदुपयोग किया जाये।

मानसपटल पर ऐसे विचार का उदगम भी स्वाभाविक हो सकता है कि—21वीं सदी के विकसित दौर में जहां मनुष्य ने चाँद तक की यात्रा पूर्ण कर ली है और विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में अद्भुत सफलता अर्जित की है, तकनीकी का चतुर्दिक विस्तार व्यापक ढंग से हो रहा है ऐसे में **"भारतीय ज्ञान परंपरा"** के अध्ययन का औचित्य क्या है? सगर्व और सहर्ष सुनिश्चित करना चाहूंगी कि, क) प्राकृतिक और ख) जैविक दोनों ही धरातल पर भारतीय ज्ञान परंपरा को आत्मसात करने की वैश्विक स्तर पर नितांत आवश्यकता है। हम सब जानते हैं कि-प्रकृति और जीव के मध्य का तादात्म्य चिरंतन है। ***भागवत पुराण के अनुसार—"जब संसार अंधकार से उबरा तो जल में प्रारंभिक मूल प्रकृति से वनस्पति का***

वर्तमान समय में व्यक्ति अर्थ के खोज में सही अर्थ को परखने में अक्षम होता जा रहा है। संवेदना शून्य होता जा रहा है, इंद्रिय-निग्रह में विफल है, हृदय का मशीनीकरण होता जा रहा है। जिस वैज्ञानिक और तकनीकि उपलब्धियों पर इतराता है वह उसे कुछ क्षण, घंटे, वर्ष की प्रसन्नता तो दे देते हैं परंतु स्थायी आनंद के अभाव में वह आक्रोश, जघन्य, विचार, अमानवीय दुर्वृत्ति की ओर उन्मुख हो रहा है। यह समस्या समस्त मानव जाति की समस्या है। इन तमाम सामाजिक, प्राकृतिक विसंगतियों से तथा दिग्भ्रमित मानव को शांति का पाठ पढाने के लिए भारत के शिक्षा मंत्रालय की ओर से "Indian Knowledge System IKS Division" (भारतीय ज्ञान प्रणाली) की स्थापना 2020 में हुयी।

बीज उत्पन्न हुआ, जिससे पौधों को जीवन मिला। पौधों से किटाणु उत्पन्न हुये जो जीव अनुक्रम में—कीड़े, साँप, कछुआ, पक्षी, पशु आदि अवस्थाओं से होते हुये मानव रूप प्राप्त किये। पौधों व जीवों की उत्पत्ति का यह विशुद्ध वैदिक ज्ञान है।"[1] (सं.—डॉ.मनोदत्त पाठक, वैदिक ज्ञान-विज्ञान कोश आधुनिक परिप्रेक्ष्य में, पृ. 553, वर्ष-2011, प्रकाशक- राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, भारत) इसी प्रक्रिया को बहुत बाद में सोलहवीं सदी के वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने 'विकासवाद' प्रणाली का नाम दिया। प्रकृति और मानव के मध्य का तादात्म्य दैविक अभीप्सा है। प्रकृति और जीव के मध्य के सन्निकटता और अन्योन्याश्रिता के संदर्भ में Kimon Hadjibiros ने लिखा कि -

"Every living organism is an open system that exchanges matter and energy with the environment. In various ways the organism takes all the chemical substances it needs for the composition of its body from the environment and casts off into the environment the substances that are no longer useful for its functions. In addition, the organism takes from the environment energy in appropriate forms, which it uses to carry out the chemical reactions of synthesis, to move about, and to regulate its temperature; it casts off energy into the environment, mainly in the form of heat."[2]

(Kimon Hadjibiros, Ecology and Applied Environmental Science, Page No.-13, year–2014, Publisher—CRC PressTaylor & Francis Group, Landon, New York)

जीव और प्रकृति दोनों एक दूसरे के पूरक हैं परंतु वर्तमान परिप्रेक्ष्य के विद्रूपताओं के सर्वेक्षण में प्रकृति और मानव के मध्य एक बिखराव, क्षय और विघटन का दुर्योग परिलक्षित है। प्रकृति में जैव विविधता, जलवायु परिवर्तन, वैश्विक समुद्र स्तर की समस्याएँ, भूस्खलन, ओज़ोन-परत, पर्यावरण आदि का दोहन शोषण होने के कारण ये विसंगतियाँ चिंता के विषय हैं। इन समस्याओं के निदान का स्रोत मात्र वैदिक और पौराणिक ग्रन्थों में भरपूर मात्रा में उपलब्ध है। इस संदर्भ में-भारत के आर्ष, मनीषियों द्वारा विरचित सामग्री प्रासंगिक और अभिनंदनीय है। यह भी विदित है कि मनीषियों की विचारधारा और उनकी पाण्डुलिपियों का स्रोत वैदिक ज्ञान परंपरा ही है। ध्रुव सत्य है कि मानव और प्रकृति के एकनिष्ठता को अलक्षित, अलौकिक सत्ता संचालित करती है जो सदैव दोनों के मध्य योजक बनी रहती है। प्रकृति के प्रशस्त कर्म से ही मानव की पूर्णता है अत: वह उसका आभारी रहता है। 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर'से ही धरती पर जीवों का अस्तित्व है। प्राणी जगत को जीवनदान देने का कार्य वायु

का है। ऋग्वेद में वायु के गुण के संदर्भ में लक्षित है कि-

"वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे।
प्रण आयूँषि तारिषत्॥"[2]

(ऋग्वेद, 10.186.1)

वैसे भी वायु की महता कितनी और कैसी है, कोरोना के कहर में सबने इसे समझा है। इसी क्रम में अग्नि, जल, आकाश, पृथ्वी का वैदिक महत्व है और इनकी स्तुति की गयी है। पंचभूतों के वैशिष्ट्य की ही तरह, वैश्विक एकीकरण के लिए **" भारतीय ज्ञान प्रणाली"** अध्ययन के पाँच मुख्य आयाम हैं—

शिक्षा: (वैदिक मंत्रों एवं भारतीय ज्ञान परंपरा के अध्ययन से आंतरिक ऊर्जा को संचालित करना और सत् चित्त की प्रसन्नता को प्राथमिकता देना)

योग एवं स्वास्थ्य: (ध्यान और योग के द्वारा विश्वभर में निरोग काया का उद्देश्य)

लोक संस्कृति का संरक्षण: (लोक संस्कृति में परिव्याप्त ज्ञान संपदा का अध्ययन और संरक्षण का संकल्प)

अर्थव्यवस्था: स्वस्थ्य समाज, लोक ज्ञान, वैदिक तकनीकी और वैदिक विज्ञान के माध्यम व अध्ययन से अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करना)

पर्यावरण: वैदिक परंपरा के सिद्धांतों द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा।

प्रकृति के दोहन के कारण होने वाले दुष्प्रभाव के भुक्तभोगी विश्वभर में लोग हैं। अत:प्रकृति, समाज और मानव को संरक्षित करने के लिए भारतीय ज्ञान परंपरा के जो भी माध्यम व स्रोत हैं उन सबको लोगों के मध्य पहुंचाना और जागरूकता लाने के लिए भारत में" भारतीय ज्ञान परंपरा का सूत्रपात किया गया।

प्रकृति में जैव विविधता, जलवायु परिवर्तन, वैश्विक समुद्र स्तर की समस्याएँ, भूस्खलन, ओज़ोन-परत, पर्यावरण आदि का दोहन शोषण होने के कारण ये विसंगतियाँ चिंता के विषय हैं। इन समस्याओं के निदान का स्रोत मात्र वैदिक और पौराणिक ग्रन्थों में भरपूर मात्रा में उपलब्ध है। इस संदर्भ में-भारत के आर्ष, मनीषियों द्वारा विरचित सामग्री प्रासंगिक और अभिनंदनीय है।

मनुष्य का जन्म ईश्वर की सदिच्छा से एक सार्थक उद्देश्य लिए होता है। माँ के गर्भ में आते ही आत्मा और परमात्मा का संबंध जुड़ जाता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में इसे संस्कार के नाम से जाना जाता है। कई प्रकार के संस्कार इसके अंतर्गत आते हैं यथा-जात कर्म, नामकरण, चूड़ाकरण, कर्णवेध, उपनयन संस्कार, शिखा धारण करना आदि। प्रत्येक संस्कार का वैज्ञानिक दृष्टिकोण और महत्व है। सभी संस्कारों का वैज्ञानिक तथ्य विश्लेषित करना लेख में पृष्ठों का विस्तार करना होगा, इस दृष्टि से दो संस्कार-शिखा धारण और उपनयन संस्कार का विश्लेषण करना समीचीन होगा। कात्यायन स्मृति में कहा गया है कि-

"सदोपवीतना भाव्यं
सदा बद्ध शिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्
करोति न तत् कृतम॥"

(कात्यायन स्मृति, १। १४)

अर्थात सर्वदा यज्ञोपवीत पहने रहें और शिखा में गांठ बंधी रहनी चाहिए। बिना यज्ञोपवीत और बिना शिखा में गांठ लगाये जो कर्म किया जाता है वह न करने के समान होता है। इन संस्कारों के वैज्ञानिक दृष्टि को इस प्रकार जाना जा सकता है कि मुंडन संस्कार के दौरान शिशु के बालों को निकाल दिया जाता है लेकिन शिखा को छोड़ दिया जाता है। यह शिखा ब्रह्मरंध्र के ठीक ऊपर रखी जाती है। ब्रह्मरंध्र के द्वारा सूर्य से प्राण शक्ति तथा अन्य शक्ति आती रहती है। बंधी हुई शिखा विद्युत शक्ति को बाहर जाने से रोकती है। अतएव संध्या वंदनादि कर्म, उपासना तथा योग साधना के समय ग्रंथि-बद्ध शिखा ब्रह्मरंध्र पर रहने से भीतर का अतिशय तत्व निकलकर बाहर न जा सकेगा।

इस तरह साधना तथा उपासना की शक्ति, व्यक्ति के अंदर ही संचित रहती है जिससे वे कांतिवान, प्रतिभाशाली और तर्कपूर्ण बुद्धि के धनी होते हैं। ***"शिखा जहां पर होती है वह स्थान तो बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है, सम्पूर्ण नाड़ियों का पुंज वहाँ पर रहता है। वह स्थान शक्ति का एक प्रधान केंद्र है। योगी लोग इसी स्थान पर सहस्रदल कमाल अथवा सहस्रार नामक चक्र बताते हैं।***

ब्रह्मरंध्र के इस स्थान पर शिखा के द्वारा केंद्र की रक्षा होती है और बाहर से शक्ति खींचने की सहायता मिलती है। जिस प्रकार रेडियो के एरियल में (खंभे या लोहे की सलाख) से आवाज पकड़ी या खींची जाती है उसी प्रकार शक्ति का आकर्षण शिखा से होता है और जिस प्रकार साइकल के वालट्यूब से हवा भरी तो जाती है परंतु बाहर नहीं निकाल पाती उसी प्रकार शिखा की गांठ से शक्ति बाहर नहीं निकाल पाती।"[3] (श्री बाबूलाल गुप्त "श्याम", सनातन-धर्म का वैज्ञानिक-रहस्य, पृ. 146, वर्ष-1966, प्रकाशक-हिन्दी प्रचारक मण्डल, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत)

इस प्रकार इन संस्कारों का विशेष महत्व है। संस्कारों को अपनाने के पीछे के विधान में जो मुख्य तथ्य है वह यह कि-चित्त की प्रसन्नता, आत्मतोष और कल्याण की भावना का विकास। भारत की ज्ञान परंपरा के अन्तरंग, अधिक से अधिक पुस्तकों का अध्ययन करना नहीं अपितु उससे पूर्व आत्म अध्ययन, अनुभव और ध्यान के द्वारा सीखे हुये ज्ञान का आत्मसात करना और सही दिशा में उसका अनुपालन करना है। दुर्भाग्य है कि जीवन के मूल उद्देश्य से विमुख होता मानव निरंतर स्वार्थी और दिग्भ्रमित हो रहा है जिसके चलते स्वास्थ्य, समाज और पर्यावरण के वैशिष्ट्य को बहुत ही कम आँकने के कारण दुष्परिणाम को भुगतना पड़ रहा है। मानव जीवन का सबसे मुख्य उद्देश्य है-चित्त की प्रसन्नता। सत् चित आनंद इसके उदाहरण हैं। चित्त की सच्ची प्रसन्नता से ही आनंद की अनुभूति होती है।

मनःप्रसादःसौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।।

(भागवत गीता—17/16)

इन ऋचाओं के अध्ययन और अनुपालन से आत्मा की शुद्धि होती है। मन में स्थिरता होती है और स्थिर मन में ही शांति और आनंद की प्राप्ति होती है। वर्तमान समय में व्यक्ति अर्थ के खोज में सही अर्थ को परखने में अक्षम होता जा रहा है। संवेदना शून्य होता जा रहा है, इंद्रिय-निग्रह में विफल है, हृदय का मशीनीकरण होता जा रहा है। जिस वैज्ञानिक और तकनीकि उपलब्धियों पर इतराता है वह उसे कुछ क्षण, घंटे, वर्ष की प्रसन्नता तो दे देते हैं परंतु स्थायी आनंद के अभाव में वह आक्रोश, जघन्य, विचार, अमानवीय दुर्वृत्ति की ओर उन्मुख हो रहा है। यह समस्या समस्त मानव जाति की समस्या है। इन तमाम सामाजिक, प्राकृतिक विसंगतियों से तथा दिग्भ्रमित मानव को शांति का पाठ पढाने के लिए भारत के शिक्षा मंत्रालय की ओर से "Indian Knowledge System IKS Division" (भारतीय ज्ञान प्रणाली) की स्थापना 2020 में हुयी। 2021 में प्रो. गंटी एस मूर्ति जी इसके राष्ट्रीय संयोजक बने और यह सुनिश्चित किया गया कि शैक्षिक पाठ्यक्रम में भारतीय ज्ञान प्रणाली को विषय के तौर पर जोड़ा जाये।

नई शिक्षा नीति 2020 ने भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति को बढ़ावा देने पर जोर दिया है और शिक्षा के सभी स्तरों पर पाठ्यक्रम में" भारतीय ज्ञान प्रणाली" (आईकेएस) के एकीकरण की भी बात रखी है। आधुनिक विषयों के साथ भारतीय पारंपरिक ज्ञान में शिक्षकों के प्रशिक्षण की सुविधा के लिए, यूजीसी ने जुलाई-अक्टूबर, 2023 के दौरान शिक्षा मंत्रालय के आईकेएस डिवीजन के सहयोग से भारत के छह स्थानों पर लगभग1000 शिक्षकों के लिए छह दिवसीय अल्पकालिक भौतिकी प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया। इसका मुख्य उद्देश्य शिक्षकों को शैक्षणिक वर्ष 2023-2024 में मूलभूत आईकेएस पाठ्यक्रम

(यूजीसी के यूजी/पीजी दिशानिर्देशों के अनुसार) पढ़ाना शुरू करने के लिए सशक्त बनाने में मदद करना था। देश भर के लगभग एक हजार विश्वविद्यालय के शिक्षकों को भारतीय परंपराओं, संस्कृति और जीवन के सैद्धान्तिक रहस्यों को सटीक और तकनीकीपरक ढंग से प्रशिक्षित किया गया, ताकि वे शैक्षणिक सत्र 2023-24 से स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर आईकेएस पर प्रासंगिक पाठ्यक्रम पढ़ा सकें। यह प्रशिक्षण विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) की देश भर के विश्वविद्यालयों में यूजी और पीजी कार्यक्रमों के पहले वर्षों में भारतीय संस्कृति और परंपराओं के संदर्भ में दो क्रेडिट के पाठ्यक्रम शुरू करने की योजना को ध्यान में रखते हुए दिया गया था।

प्रशिक्षण कार्यक्रम तीन बिंदुओं पर आधारित था—परंपरा, दृष्टि (परिप्रेक्ष्य), और पारंपरिक भारतीय ज्ञान प्रणालियों की लौकिक प्रयोजन (आधुनिक प्रासंगिकता)। विभिन्न पृष्ठभूमि वाले विभिन्न उच्च शिक्षा संस्थानों के औसतन 156 प्रतिभागियों ने अंतःविषय भारतीय ज्ञान प्रणाली प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लिया। इसके कई सुखद और सकारात्मक परिणाम भी निकलकर आये। चेन्नई में, जहां उत्तर बनाम दक्षिण के सतही विभाजन का अनुमान लगाया जाता है, आईकेएस द्वारा आपसी सम्मान और समझ का एक विशिष्ट सूत्र स्थापित हुआ। श्रीनगर में मुस्लिम शिक्षकों द्वारा यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया था कि शुरू में उन्हें आईकेएस प्रशिक्षण के उद्देश्य के बारे में संदेह था और सोचा था कि यह कुछ धार्मिक विश्वासों को थोपना होगा, लेकिन प्रतिभागियों ने खुशी से स्वीकार किया कि आईकेएस का धर्म और उपासना पद्धति (भगवान की पूजा करने के दृष्टिकोण) से कोई लेना-देना नहीं है, और आगे सहमति व्यक्त की, कि जीवन के सभी क्षेत्रों में हमारे पूर्वजों के ज्ञान को युवा पीढ़ी तक पहुंचाया जाना चाहिए।

कई प्रतिभागियों ने उदाहरण दिया कि कैसे कश्मीरी संतों और कवियों ने स्थानीय भाषा में जीवन की सच्चाइयों को मिश्रित किया। उत्तर-पूर्व क्षेत्र प्राकृतिक सुंदरता और विविधता से भरा हुआ है। इस विविधता के बावजूद, आईकेएस अंतर्निहित एकता का सेतु सिद्ध हुआ। सभी प्रतिभागियों ने प्रशिक्षण में जो कुछ साझा किया गया था, वह परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध रहे। इसमें औषधीय पौधों, ग्रामीण प्रबंधन, भाषाई समृद्धि आदि में प्राचीन ज्ञान का होना चाहिए आदि बिन्दु निहित थे। बीएचयू, वाराणसी के साथ-साथ दिल्ली में प्रतिभागियों को प्रशिक्षण के माध्यम से प्राप्त दृष्टि से प्रेरित किया गया। कई प्रतिभागियों ने आभास किया कि उन्हें भारतीय ज्ञान परंपरा की समृद्धि का पता इतनी देर से चला और वे अब इसके विस्तार हेतु समय नहीं गवायेंगे।

देश भर में आईकेएस के प्रति शिक्षकों की प्रतिक्रिया और स्टाफरूम से छात्रों और सहयोगियों के बीच इसे आगे ले जाने की उनकी प्रतिबद्धता तथा भारतीय ज्ञान प्रणाली में सन्निहित वैश्विक कल्याण का कोश सर्वजन को प्रभावित करने वाला है। इसके भावी प्रभाव को दृष्टि में रखते हुये, यूजीसी शिक्षा मंत्रालय के साथ मिलकर पूरे भारत में दस हजार शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए इसे अधिक व्यापक बनाने की योजना बना रहा है। 75 केंद्रों में भौतिकी कार्यक्रम की योजना बनाई जा रही है और इन दस हजार शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए पहले से प्रशिक्षित शिक्षकों में से 200 शिक्षकों का चयन किया जाएगा। यूजीसी पूर्णरूपेण आश्वस्त है कि इस शुभ संकल्पना को देश ही नहीं अपितु विदेश में भी सराहना की जाएगी और विदेश में जो भी विद्वान इस विषय पर अधिकार रखते हैं वे भी इसमें अपनी सहभागिता अवश्य देंगे। यूजीसी में उनके विचार और ज्ञान का स्वागत है। ***आईकेएस शिक्षक प्रशिक्षण प्रोग्राम के साथ ही साथ यूजीसी ने कई और चीजों की पहल की है यथा, आईकेएस में नेट, पीएचडी, फ़ेलोशिप प्रोग्राम, इंटर्नशिप प्रोग्राम, परियोजना प्रोग्राम आदि।***

इसी क्रम में इंटर मिडियट, स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर भारतीय ज्ञान परंपरा संबंधी पाठ्यक्रम बनाया जा चुका है। भारत में अब तक तकरीबन 2000 से अधिक अलग-अलग विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में भारतीय ज्ञान प्रणाली के अध्ययन-अध्यापन और केंद्र की स्थापना की जा चुकी है। जैसा कि ऊपर विवेचित किया गया है कि—भारतीय ज्ञान परंपरा का लक्ष्य वैश्विक कल्याण का है।

———•••———

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी
अलायंस विश्वविद्यालय, बंगलूरू
कर्नाटक, भारत

कैरो, मिस्र में मनाई गई दीपावली

मौलाना आजाद सेंटर फॉर इंडियन कल्चर (एमएसीआईसी), कैरो, मिश्र द्वारा नवंबर, 2023 में कई सांस्कृतिक गतिविधियों का सफल आयोजन किया गया। इनमें से कुछ प्रमुख गतिविधियां यहाँ प्रस्तुत हैं।

1. एमएसीआईसी, कैरो द्वारा एक नवम्बर, 2023 को 13वाँ वैश्विक संगीत सम्मेलन इजिप्ट एकतान-V का आयोजन केंद्र के परिसर में किया गया। इसमें भारतीय कलाकारों के एक समूह के द्वारा भरतनाट्यम, कत्थक, कुचिपुड़ी, और भारत के समकालीन तथा लोक नृत्यों को प्रस्तुत किया गया।
2. 08 नवम्बर, 2023 को एमएसीआईसी के परिसर में आयुर्वेद दिवस का आयोजन हुआ, जिसमें भारतीय राजदूत अजित गुप्ते ने आयुर्वेद के महत्त्व को रेखांकित करते हुए कोविड महामारी के दौरान आयुर्वेद द्वारा निभाई गई महत्त्वपूर्ण भूमिका का उल्लेख किया। इस अवसर पर विभिन्न मोटे अनाजों का प्रदर्शन भी किया गया और कत्थक के छात्रों ने नृत्य भी प्रस्तुत किया।
3. एमएसीआईसी के अनेक छात्रों ने मिल कर दीपावली का त्योहार 08 नवंबर, 2023 को मनाया। इस अवसर पर दीपावली का गीत और कत्थक भी प्रस्तुत किया गया।
4. शार्किया क्लब में शिक्षा मंत्रालय के संयुक्त तत्त्वाधान में गत 29 नवम्बर, 2023 को भारत की झलक विषय पर एक चित्र प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। बड़ी संख्या में छात्रों तथा उनके शिक्षकों एवं अभिभावकों ने इसमें सहभागिता की।
5. एमएसीआईसी ने रॉयल ज्यूलरी संग्रहालय, एलेक्जेंड्रिया में भारतीय संस्कृति दिवस का आयोजन किया। इसमें पर्यटन के पोस्टर, प्रसार साहित्य, पुस्तकें, भारतीय कलाओं आदि की एक प्रदर्शनी लगाई गयी। इस अवसर पर योग-नृत्य तथा बॉलिबुड के गानों पर नृत्य प्रस्तुत किये गए।

EGYP
Embassy at Cairo

AYURVEDA

भूटान में मना भारतीय गणतंत्र दिवस

भूटान में भारतीय गणतंत्र दिवस धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम हुए। भूटान के स्थानीय लोगों ने भी इसमें बड़ी संख्या में सहभागिता की। यहाँ इस कार्यक्रम के कुछ प्रमुख चित्र प्रस्तुत हैं।

कजाखस्तान में मची भारतीय संस्कृति की धूम

कजाखस्तान की राजधानी अस्ताना में गत कुछ माह में कई सांस्कृतिक कार्यक्रम संपन्न हुए। इनमें से एक प्रमुख कार्यक्रम था भारतीय गणतंत्र दिवस का समारोह। इस समारोह में नृत्य तथा संगीत की प्रस्तुतियां हुईं। फरवरी माह में अस्ताना विश्वविद्यालय में सांस्कृतिक दिवस मनाया गया। मार्च में नारी दिवस पर नारी वंदन कार्यक्रम संपन्न हुआ। यहाँ इनकी झलकियां प्रस्तुत हैं।

Әл-Фараби атындағы Қазақ ұлттық университетінің 90 жылдығына
және шығыстану факультетіндегі хинди бөлімінің 25 жылдығына арналған

नीदरलैंड फैली भारतीय संस्कृति की छटा

नीदरलैंड के हेग शहर में भारतीय दूतावास के अंतर्गत "गाँधी सेंटर" के द्वारा निम्नांकित कार्यक्रमों के आयोजन किए गए।

दिनांक 10 जनवरी, 2024 को "विश्व हिंदी दिवस समारोह" के उपलक्ष्य पर आयोजित कार्यक्रम के अन्तर्गत हिन्दी साहित्यिक परिचर्चा एवम् कवि सम्मेलन आयोजित की गई। सभी प्रतिभागियों के द्वारा उनकी प्रवाहमयी,ओजस्वी एवम् जीवंत कविताओं को सुनकर लोग भाव- विभोर हो उठे और उपस्थित सभी दर्शकों में आनंद और उत्साह का वातावरण दिख रहा था। विशेष रुप से गाँधी सेंटर की हिंदी शिक्षिका डॉ. सोनी वर्मा के डच एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय विद्यार्थियों ने अपनी शैली में कविता पाठ कर लोगो को मंत्र-मुग्ध कर दिया। इस अवसर पर भारतीय राजदूत महोदया श्रीमती रिनत सन्धु जी की उपस्थिति और उनके द्वारा रखे गये सुविचार और प्रधान मंत्री जी का संदेश ने इस कार्यक्रम को महत्वपूर्ण बना दिया। गाँधी केंद्र के निदेशक श्री कृष गुप्ता ने हिंदी भाषा के महत्व पर बहुमूल्य विचार साझा किए और हिंदी भाषा को सीखने के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया, जिससे वे भारत की सांस्कृतिक विरासत को समझ सकें।

नीदरलैंड के हेग शहर में वाहोन स्कूल के सहयोग से दिनांक 16 जनवरी को "अंतर्राष्ट्रीय हिंदी दिवस" मनाया गया। गाँधी सेंटर की हिंदी शिक्षिका डॉ सोनी वर्मा ने वाहोन स्कूल के विद्यार्थियों के लिए सुलेख प्रतियोगिता,कहानी लेखन प्रतियोगिता और कविता पाठ का आयोजन किया। जिसमें छात्रों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। इस अवसर पर Shri. Gince Kuruvilla Mattam (Deputy Chief of Mission) ने विजेताओं को पारितोषिक देकर सम्मानित किया और भारतीय संस्कृति को समझने के लिए हिंदी सीखने के महत्व पर विशेष जोर दिया। इस अवसर पर गाँधी केंद्र के निदेशक श्री कृष गुप्ता ने स्कूल के विद्यार्थियों की भागीदारी के लिए बहुत सराहना की।

दिनांक 12 जनवरी, 2024 को भारतीय राजदूत महोदया श्रीमती रिनत सन्धु जी और यूट्रेक्ट के उप महापौर श्री एल्को ईरेनबर्ग ने नीदरलैंड में स्वामी विवेकानन्द की पहली प्रतिमा का अनावरण किया। जो भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (आईसीसीआर) के समुचित प्रयास द्वारा संभव हुई। इस महत्वपूर्ण घटना ने भारत-नीदरलैंड के राजनयिक संबंधों में एक ऐतिहासिक और सार्थक आयाम जोड़ा है। यह समारोह एक सांस्कृतिक समन्वय का प्रतीक है, जो दोनों देशों के बीच एक सार्थक सम्बन्ध को भविष्य में भी स्थापित करेगा।

मकर संक्रांति एक ऐसा पर्व है जो सम्पूर्ण भारत के प्रान्तों में विभिन्न रूपों में अलग – अलग नामों से मनाया जाता है। वस्तुत: नए फसल के आगमन पर यह उत्सव मनाया जाता है और इसी अवसर के प्रतिरूप दिनांक 14 जनवरी को, गाँधी केंद्र में भी मकर संक्रांति का उत्सव हर्ष और उल्लास के साथ मनाया गया। जिसमें भारत की विविध सांस्कृतिक छवि का मिश्रण प्रस्तुत किया गया। इस कार्यक्रम में उत्तराखंड, बंगाल और राजस्थान के मनमोहक नृत्यों के साथ-साथ ओडिसी, बिहू और भांगड़ा नृत्य भी शामिल थे। यह कार्यक्रम न सिर्फ एक त्योहार की परिचायक थी अपितु भारतीय, डच एवं अन्य देशों के उपस्थित दर्शकों के लिए भारतीय संस्कृति को परिभाषित करती एक अमुक अभिव्यक्ति थी। गाँधी केंद्र के निदेशक श्री कृष गुप्ता ने कार्यक्रम में योगदान देने के लिए प्रतिभागियों और उपस्थित लोगों के प्रति आभार व्यक्त किया।

दिनांक 23 जनवरी को गाँधी केंद्र में नेताजी सुभाष चंद्र बोस की जयंती मनाई गयी। इस कार्यक्रम के अंतर्गत संगीत, देशभक्ति के गीत पर आधारित नृत्य और नेताजी के आदर्शों के साथ गुंजायमान भरतनाट्यम प्रस्तुत किया गया। इस कार्यक्रम के द्वारा भारत की एकता और एकजुटता के साथ-ही-साथ भारत के सांस्कृतिक पक्ष को भी दर्शाया गया। इस कार्यक्रम के माध्यम से नेताजी सुभाष चंद्र बोस को याद किया गया तथा श्रद्धांजलि अर्पित की गयी।

गाँधी केंद्र के निदेशक, श्री कृष गुप्ता ने नेता जी के दिए गए बलिदान को याद किया तथा देश के प्रति नेताजी के आदर्शों को दर्शाते हुए, सभा में उपस्थित सभी अतिथियों को धन्यवाद ज्ञापित किये।

आज के भाग-दौड़ भरी जिन्दगी में योग-विद्या द्वारा, जीवन को संचारित करना अति आवश्यक है और इसी उद्देश्य से 29 जनवरी को, गाँधी केंद्र के सहयोग से एगॉन मैनेजमेंट कंपनी ने डॉ. अंकेश सिंह भदोरिया के नेतृत्व में "कायाकल्प योग सत्र" नामक कार्यक्रम का आयोजन किया।

इस कार्यक्रम में कर्मचारियों की उत्पादकता , मानसिक एवं शारीरिक थकान और तनाव से लड़ने की शक्ति बढ़ाने की विधा पर योग के महत्व पर जानकारी दी गई और अभ्यास किया गया।एगॉन टीम ने सहयोगात्मक प्रयासों के लिए गाँधी सेंटर का आभार व्यक्त किया।

नीदरलैंड फैली भारतीय संस्कृति की छटा

नीदरलैंड के "द हेग" शहर में भारतीय दूतावास के अंतर्गत "गाँधी सेंटर" के द्वारा निम्नांकित कार्यक्रमों के आयोजन किए गए–

दिनांक 10 फरवरी 2024, को गाँधी केंद्र के द्वारा भारत के प्रसिद्ध कला "मधुबनी आर्ट" की वर्कशॉप आयोजित की गई |इस कार्य शाला का मार्गदर्शन प्रतिभाशाली कलाकार श्रीमती जयिता दत्ता ने किया। सत्र के दौरान, प्रतिभागियों ने मधुबनी के जीवंत चित्रों और रंगों भरी डिजाइनों की आकर्षक रूप को बड़े चाव से बनाने का प्रयत्न किया | "मधुबनी आर्ट" मुख्यतया पौराणिक कथाओं और रोजमर्रा के दृश्यों जैसे- अल्पना, कोहबर आदि पर आधारित होते हैं| दर्शकों की अभिरूचि इस विशेष आर्ट को बनाने में प्रत्यक्षत: दिख रही थी|

कार्यक्रम के समापन पर गाँधी सेंटर के निदेशक श्री कृष गुप्ता जी ने कलाकार एवं दर्शकों को धन्यवाद ज्ञापन देते हुए भारतीय परम्परा को कायम रखने के लिए उनकी "मधुबनी आर्ट" के सीखने के प्रति उनकी भावना की सराहना की|

दिनांक 12 फरवरी को गाँधी केंद्र में वसंत पंचमी के शुभ अवसर पर गाँधी केंद्र के विद्यार्थियों द्वारा माँ सरस्वती की आराधना पुष्प अर्पण कर की गयी , जिसमें सभी विद्यार्थी एकजुट हो कर माँ सरस्वती की आराधना किये। इस शुभ अवसर पर गाँधी केंद्र की शिक्षिका डॉ. सोनी वर्मा और शिक्षक श्री संदीप भट्टाचार्य ने छात्रों को भजन सिखाया और प्रस्तुत किया।

दिनांक 17 फरवरी को गाँधी केंद्र में छत्रपति शिवा जी महाराज की जयंती के उपलक्ष्य पर एक श्रद्धांजलि कार्यक्रम का आयोजन किया गया |जिसके अंतर्गत नीदरलैंड में स्थित महाराष्ट्रीय समुदाय, नीदरलैंड मराठी मंडल, महाराष्ट्र मंडल नीदरलैंड और अलमेरे महाराष्ट्र मंडल के सदस्य एकजुट होकर कार्यक्रम प्रस्तुत किये| जो कि अपने-आप में "अनेकता में एकता" प्रतिबिम्बित करता, एक अनूठा प्रदर्शन था | कार्यक्रम का प्रारंभ बच्चों द्वारा देशभक्ति गीत "जयोस्तुते" के प्रदर्शन के साथ प्रारंभ हुई और इसमें भरतनाट्यम नृत्य, युवाओं द्वारा देशभक्ति का प्रदर्शन, भाव-संगीत, लावनी नृत्य , शिवाजी महाराज के जीवन को दर्शाने वाला एक सम्मोहक नाटक और विविध प्रस्तुतियाँ शामिल थीं। ढोल-ताशा इत्यादि की गुंजायमान होती ताल; पूरी सभा में उपस्थित दर्शक-दीर्घा को एक जीवंतता के साथ गहरी श्रद्धा से परिपूर्ण छत्रपति शिवा जी महाराज के स्मरण में एक सम्मानपूर्ण माहौल बना दिया।

इसके साथ ही, दिनांक 24 फरवरी को, गाँधी केंद्र द्वारा सुश्री उद्दीपना दास के नेतृत्व में "बिहू नृत्य वर्कशॉप" आयोजित की गयी, जिसमें सभी उम्र के प्रतिभागियों ने भाग लिया। हर्ष और उल्लास का प्रतीक यह आसाम का लोक-नृत्य पूर्णत: पारंपरिक वेशभूषा में किया जाता है, जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों ही पुरे उत्साह से नृत्य करते हैं। इस वर्कशॉप में बच्चें, महिलाओं और पुरुषों सभी ने उत्सुकता से बिहू नृत्य के मधुर सुर, लय और ताल के साथ एकीकार हो तल्लीन हो गए | इसके साथ ही लोग, इस पारंपरिक असमिया सामूहिक नृत्य के समृद्ध संस्कृति और इतिहास के विषय में भी जान पायें। सुश्री उद्दीपना के इस वर्कशॉप के माध्यम से सांस्कृतिक परंपराओं को संरक्षित करने और ज्ञान का प्रसार करने के प्रति उनके समर्पण की भावना को बहुत सराहा गया।

"वर्कशॉप"के समापन पर गाँधी सेंटर के निदेशक श्री कृष गुप्ता जी ने कलाकार एवं दर्शकों को धन्यवाद ज्ञापन देते हुए भारतीय लोक नृत्य को सीखने और संरक्षित रखने के प्रति उनकी भावना की सराहना की| जो लोगों के लिए प्रेरणा दायक थी |

वियतनाम

वियतनाम में जनवरी का महीना सांस्कृतिक गतिविधियों से भरा रहा। इस माह में वियतनाम में विश्व हिंदी दिवस, स्वामी विवेकानंद जयंती, पोंगल उत्सव, नेताजी सुभाष चंद्र बोस की जयंती और वसंत पंचमी जैसे दिवस तथा उत्सव धूमधाम से मनाए गए। भारतीय गणतंत्र दिवस का भी विवेकानंद सांस्कृतिक, हनोई द्वारा आयोजन किया गया। फरवरी माह में वसंत पंचमी का त्योहार मनाया गया। इन भारतीय त्योहारों तथा दिवसों के अतिरिक्त वियतनामी नववर्ष का भी आयोजन किया गया। इन सभी कार्यक्रमों में वियतनाम के गण्यमान्य जन बड़ी संख्या में उपस्थित रहे।

TRUNG TÂM VĂN HÓA SWAMI VIVEKANANDA, HÀ NỘI
SWAMI VIVEKANANDA CULTURAL CENTRE, HANOI
स्वामी विवेकानंद सांस्कृतिक केंद्र, हानोई
HAPPY Swami Vivekananda JAYANTI
Kỷ niệm ngày sinh của

COMMEMORATING
NETAJI SUBHAS CHANDRA BOSE'S

Vasant Panchami
Celebration

TRUNG TÂM VĂN HÓA SWAMI VIVEKANANDA, HÀ NỘI
SWAMI VIVEKANANDA CULTURAL CENTRE, HANOI
Vasant Panchami
Celebration

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....

.....

.....

.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....

.....

.....

.....

विवरण	शुल्क				प्रतियों की सं.	रुपये/US$
गगनांचल वर्ष	एक वर्ष	₹	500	(भारत)		
		US$	100	(विदेश)		
	तीन वर्षीय	₹	1200	(भारत)		
		US$	250	(विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय		10%			
	पुस्तक विक्रेता		25%			

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक .....

रु./US$ ..... बैंक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....

नाम .....

पद .....

दिनांक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 47 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य, विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों जैसे महात्मा गाँधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन-योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य और नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिलकर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान - शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

महानिदेशक	**23378103, 23370471**
उप-महानिदेशक (प्रशासन)	**23370784, 23379315**
उप-महानिदेशक (संस्कृति)	**23379249, 23370794**
हिंदी अनुभाग	**23370237, 23379309–10** **एक्स. 2256/2272**

गगनांचल

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

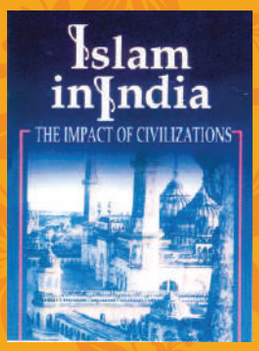

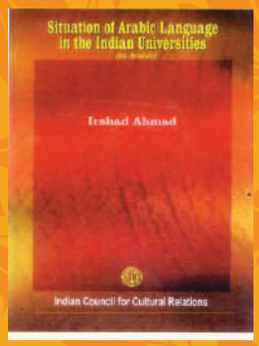

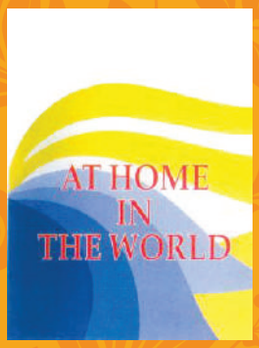

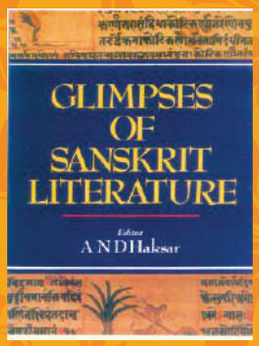

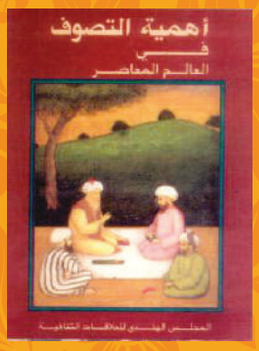

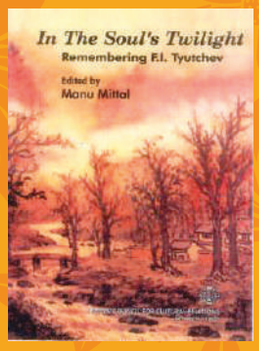

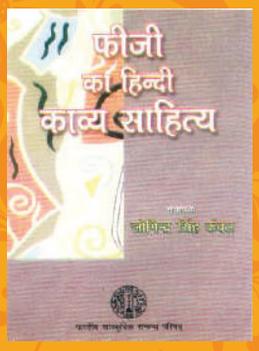

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
फोन : 91-11-23379309, 23379310
ईमेल : spd-hindi@iccr.gov.in pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट : www.iccr.gov.in